महाभारत सूक्ति-सुधा



सुभाष विद्यालंकार

महाभारत सूक्ति सुधा में 250 से अधिक विषयों से सम्बद्ध सुभाषित महाभारत के एक लाख श्लोकों में से संगृहीत किये गये हैं। महाभारत को रत्नों की खान कहा जाता है। उन्हीं रत्नों में से चुने हुए रत्नरूपी सुभाषित इस ग्रन्थ में एकत्र कर प्रस्तुत किया गया है।

23cm, XXXL+782, दो भाग, 2008 1500 (सेट)

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

महाभारत सूक्तिसुधा

द्वितीय भाग

संकलन–सम्पादन
सुभाष विद्यालंकार

प्रतिभा प्रकाशन
दिल्ली : : भा

प्रथम संस्करण 2009

ISBN : 978-81-7702-193-1(सेट)
978-81-7702-193-8 (द्वितीय भाग)

मूल्य : 1500.00

प्रकाशक :
डॉ० राधेश्याम शुक्ल
एम.ए., एम. फ़िल्., पी-एच.डी.
प्रतिभा प्रकाशन
(प्राच्यविद्या-प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता)
7259/20, अजेन्द्र मार्केट, प्रेमनगर
शक्तिनगर, दिल्ली-110007
दूरभाष : (O) 47084852 (R) 23848485, 09350884277
e-mail : info@pratibhabooks.com
Web : www.pratibhabooks.com

टाईप सेटिंग : एस० के० ग्राफिक्स
दिल्ली-84

मुद्रक : रुचिका ऑफसेट, दिल्ली

Mahābhārata Sūktisudhā

Volume - II

Compiled & Edited by

Subhash Vidyalankar

PRATIBHA PRAKASHAN
DELHI

First Edition : 2009

ISBN : 978-81-7702-193-1 (Set)
978-81-7702-194-8 (Vol. II)

Rs. : 1500.00 (Set)

Published by :
Dr. Radhey Shyam Shukla
M.A., Ph.D.
PRATIBHA PRAKASHAN
(Oriental Publishers & Booksellers)
7259/20. Ajendra Market, Premnagar,
Shakti Nagar, Delhi-110007
Ph. : (O) 47084852 (R) 23848485
09350884227
e-mail : info@pratibhabooks.com
Web : www.pratibhabooks.com

Laser Type Setting :
S.K. Graphics, Delhi

Printed at : **Ruchika Printers,** Delhi

पुण्य

पुण्यस्य लोको मधुमान् घृतार्चिर्हिरण्यज्योतिरमृतस्य नाभिः।
तत्र प्रेत्य मोदते ब्रह्मचारी न तत्र मृत्युर्न जरा नोत दुःखम्।।

शान्ति 73/26

पुण्य-लोक मधुर सुखों से भरा हुआ है। वहां घी के दीप जलते हैं और स्वर्णिम प्रकाश फैला रहता है। पुण्यलोक अमृत का केन्द्र हैं। वहाँ न मृत्यु है, न बुढ़ापा है और न दुःख है। ब्रह्मचारी मनुष्य मृत्यु के बाद वहां पहुँच कर सुख भोगता है।

निरालम्भोऽप्ययमिह यथालब्धोपजीवनः।
पुण्यं पुण्येषु विमलं पापं पापेषु चाप्नुयात्।। शान्ति 287/38

किसी कर्म का आरम्भ न करने वाला और जो कुछ मिल जाये उसी से जीवन निर्वाह करने वाला व्यक्ति यदि पुण्यात्माओं के साथ रहता है तो उसे निर्मल पुण्य प्राप्त होता है। यदि वह पापियों की संगति में रहता है तो वह पाप का भागी होता है।

अपामग्नेस्तथेन्दोश्च स्पर्शं वेदयते यथा।
तथा पश्यामहे स्पर्शमुभयोः पापपुण्ययोः।। शान्ति 287/39

मनुष्य जल, अग्नि और चन्द्रमा की किरणों के संसर्ग में आने पर जिस प्रकार ठण्डा, गर्म और सुखदायी स्पर्श अनुभव करता है उसी प्रकार हम पुण्यात्माओं और पापियों की संगति का प्रभाव प्रत्यक्ष देखते हैं।

आयुर्न सुलभं लब्ध्वा नावकर्षेद् विशाम्यते।
उत्कर्षार्थं प्रयतेत नरः पुण्येन कर्मणा।। शान्ति 291/3

राजन्! मनुष्य शरीर की आयु सरलता से नहीं मिलती। मनुष्य योनि पाकर अपनी आत्मा को गिराना नहीं चाहिये अपितु पुण्यकर्मों से अपनी उन्नति करनी चाहिये।

शकुनीनामिवाकाशे मत्स्यानामिवोदके।
पदं यथा न दृश्यन्ते तथा पुण्य कृतां गतिः।। शान्ति 322/19

जैसे आकाश में पक्षियों के और पानी में मछलियों के पैर नहीं दिखाई देते, वैसे ही पुण्यात्माओं की गति का भी पता नहीं चलता।

यज्ञदानतपःशीला नरा वै पुण्यकर्मिणः।
येऽभिद्रुह्यन्ति भूतानि ते वै पापकृतो जनाः।। अनु 120/25

यज्ञ, दान और तपस्या करने वाले मनुष्य पुण्य के काम करते हैं। जो लोग प्राणियों से वैर करते हैं वे पाप करते हैं।

बुद्धिमायुष्यमारोग्यं बलं भाग्यं तथाऽऽगमम्।
रूपेण सप्तधा भूत्वा मानुष्यं फलति ध्रुवम्।। अनु 145 दा० पा०

मनुष्य का पुण्य; बुद्धि, दीर्घायु, आरोग्य, बल, भाग्य, शास्त्र ज्ञान और रूप इन सात भागों में प्रकट होकर फल देता है।

पुत्र

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा।। आदि 74/39

पुत्र 'पुत्' नाम के नरक से पिता की रक्षा करता है इसीलिये स्वयं ब्रह्मा ने उसे 'पुत्र' कहा है।

अन्तरात्मैव सर्वस्य पुत्रनाम्नोच्यते सदा।
गती रूपं च चेष्टा च आवर्ता लक्षणानि च।
पितॄणां यानि दृश्यन्ते पुत्राणां सन्ति तानि च।
तेषां शीलाचारगुणास्तत्सम्पर्काच्छुभाशुभाः। आदि 74/48/ 49 दाक्षिणात्य

पुत्र सभी मनुष्यों का हृदय ही कहा जाता है। मनुष्य का जैसा रूप, चाल-ढाल, आदतें और व्यवहार होता है पुत्र में भी वैसा ही रूप, चाल-ढाल, और व्यवहार दिखाई देता है। पुत्र अपने पिता के सम्पर्क से उसका स्वभाव, आचार-विचार और भली-बुरी बातें सीखता है।

भार्यायां जनितं पुत्रमादर्शेष्विव चाननम्।
ह्लादते जनिता प्रेक्ष्य स्वर्गं प्राप्येव पुण्यकृत्।। आदि 74/49

मनुष्य को दर्पण में अपना चेहरा देखकर जैसी प्रसन्नता होती है वैसा ही आनन्द उसे अपनी पत्नी से उत्पन्न पुत्र को देखकर होता है। यह आनन्द स्वर्ग लोक प्राप्त होने जैसे सुख के समान होता है।

रेतोधाः पुत्र उन्नयति नरदेव यमक्षयात्।। आदि 95/31

गर्भाधान करने वाला पिता ही पुत्र के रूप में जन्म लेता है। हे राजन्! पुत्र ही यमलोक में पिता का उद्धार करता है।

प्रतिपद्य यदा सूनुर्धरणीरेणुगुण्ठितः।
पितुराश्लिष्यतेऽङ्गानि किमस्त्यभ्यधिकं ततः।। आदि 74/53

जब पुत्र पृथिवी की धूल में सना हुआ पिता के पास आकर उससे लिपट जाता है, तब पिता को जो सुख मिलता है उससे बढ़कर और क्या है?

शिशोरालिङ्ग्यमानस्य चन्दनादधिकं भवेत्।। आदि 74/दा० पा० 55-56

गोद में बैठे हुए अपने पुत्र का आलिंगन चन्दन की शीतलता से भी अधिक सुखदायी होता है।

त्वदङ्गेभ्यः प्रसूतोऽयं पुरुषात् पुरुषोऽपरः ।
सरसीवामलेऽऽत्मानं द्वितीयं पश्य वै सुतम्।। आदि 74/65

यह बालक आपके अंगों से उत्पन्न हुआ है। मानो एक पुरुष से दूसरा पुरुष बना है। तुम निर्मल सरोवर में अपने प्रतिबिम्ब की भाँति अपने इस द्वितीय रूप पुत्र को देखो।

प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः।। आदि 85/24

जो पुत्र, पिता के विरुद्ध हो उसे सज्जन पुत्र नहीं मानते।

मातापित्रोर्वचनकृद्धितः पथ्यश्च यः सुतः।
स पुत्रः पुत्रवद् यश्च वर्तते पितृमातृषु।। आदि 85/25

जो माता-पिता की आज्ञा मानता है, उनका हित चाहता है और उनके अनुकूल रहता है तथा माता-पिता के प्रति पुत्रोचित व्यवहार करता है वही वस्तुतः पुत्र होता है।

यः पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हितः सदा।
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि सत्तमः।। आदि 85/30

जो पुत्र गुणसम्पन्न हो, सदा माता-पिता का भला करता हो, वह छोटा होने पर भी श्रेष्ठतम है। उसे ही सारे कल्याण का भाग मिलना चाहिये।

मातापित्रोः प्रजायन्ते पुत्राः साधारणाः कवे।। आदि 104/31
तेषां पिता यथा स्वामी तथा माता न संशयः।। आदि 104/32

हे विद्वान्! माता और पिता दोनों ही मिलकर पुत्र उत्पन्न करते हैं अतः पुत्र पर पिता का जैसा अधिकार है वैसा ही अधिकार माता का भी होता है।

स्वयंजातः प्रणीतश्च तत्समः पुत्रिकासुतः।
पौनर्भवश्च कानीनः भगिन्यां यश्च जायते।। आदि 119/33

छह प्रकार के पुत्रों में पहला वह होता है जो विवाहित पत्नी से स्वयं उत्पन्न किया गया हो। दूसरा पुत्र वह है जो अपनी ही पत्नी के गर्भ से किसी श्रेष्ठ पुरुष द्वारा उत्पन्न हो, तीसरा पुत्र अपनी पुत्री का पुत्र होता है, चौथा पुत्र वह होता है जो दूसरी बार ब्याही हुई स्त्री से उत्पन्न हो। पाँचवें प्रकार का पुत्र 'कानीन' कहलाता है अर्थात् जो विवाह से पहले किसी कन्या के गर्भ से इस शर्त के साथ उत्पन्न पुत्र कि इसे मेरा पुत्र माना जायेगा और बहन का पुत्र भानजा छठा पुत्र होता है।

इह वा तारयेद् दुर्गादुत वा प्रेत्य भारत।
सर्वथा तारयेत् पुत्रः पुत्र इत्युच्यते बुधैः।। आदि 158/5

जो पुत्र इस संसार में दुर्गम संकट से पार लगाता है या परलोक में अपने माता-पिता को तार देता है उसे ही विद्वान् सच्चा पुत्र मानते हैं।

दृढं विद्म परं पुत्रं परं पुत्रान्न विद्यते।। वन 9/4

हम अच्छी तरह जानते हैं कि पुत्र बहुत प्यारा होता है। पुत्र से बढ़कर संसार में और कुछ नहीं होता।

सुतेषु राजन् सर्वेषु हीनेष्वभ्यधिका कृपा।। वन 9/19

राजन्! सब पुत्रों में जिसकी हालत अच्छी नहीं होती उसी पर सबसे अधिक कृपा होनी चाहिये।

एको हि बहुभिः श्रेयान् विद्वान् साधुरसाधुभिः।। वन 99/22

अनेक दुष्ट पुत्रों के बदले विद्वान् और सदाचारी एक पुत्र ही अच्छा है।

सुखिनो वै नरा येषां जात्या पुत्रो न विद्यते।
ते पुत्रशोकमप्राप्य विचरन्ति यथासुखम्।। वन 137/16

वे मनुष्य ही सुखी हैं जिनके पुत्र पैदा नहीं हुआ क्योंकि वे पुत्र शोक का अनुभव न करके सदा सुखी रहते हैं।

पुत्रः प्रसवतां वरः।। वन 313/56

सन्तान उत्पन्न करने वालों के लिये पुत्र श्रेष्ठ होता है।

पुत्र आत्मा मनुष्यस्य।। वन 313/72

पुत्र ही मनुष्य की आत्मा होता है।

पुत्र प्रियाणामधिकः।। विराट 2/17

मनुष्य को अपना पुत्र सबसे अधिक प्रिय होता है।

आत्मजेषु परं स्नेहं सर्वभूतानि कुर्वते।
प्रियाणि चैषां कुर्वन्ति यथाशक्ति हितानि च।। उद्योग 60/6

सभी प्राणी अपने पुत्रों से अत्यधिक स्नेह करते हैं। वे यथाशक्ति अपने पुत्रों की भलाई और उन्हें अच्छे लगने वाले कार्य करते हैं।

न हि पुत्रेण हैडिम्बे पिता न्याय्यः प्रबाधितुम्।। द्रोण 156/94

घटोत्कच! पुत्र के लिये यह ठीक नहीं कि वह पिता को दुःख दे।

एकमेव हि लोकेऽस्मिन्नात्मनो गुणवत्तरम्।
इच्छन्ति पुरुषाः पुत्रं लोके नान्यं कथंचन।। द्रोण 194/5

इस संसार में लोग केवल अपने पुत्र को अपने से अधिक योग्य बनाना चाहते हैं।

बहुकल्याणमिच्छन्ति ईहन्ते पितरः सुतान्।
तपसा दैवतेज्याभिर्वन्दनेन तितिक्षया।। शान्ति 150/14

माता-पिता; तपस्या, देवपूजा, वन्दना और सहनशीलता को अपनाकर पुत्र की कामना इसीलिये करते हैं कि पुत्र हमारा कल्याण करेगा।

लुब्धेभ्यो जायते लुब्धः समेभ्यो जायते समः।
यजमाना यथाऽऽत्मानमृत्विजश्च तथा प्रजाः।। शान्ति 263/10

लोभी पुरुषों से लोभी सन्तान उत्पन्न होती है और समदर्शी पुरुषों से समदर्शी पुत्र उत्पन्न होता है। यजमान और ऋत्विज जैसे होते हैं उनकी प्रजा भी वैसी होती है।

पिता ह्यात्मानमाधत्ते जायायां जाज्ञिवानिति।
शीलचारित्रगोत्रस्य धारणार्थं कुलस्य च।। शान्ति 266/14

पिता अपने आचार, चरित्र, गोत्र और कुल की रक्षा करने के लिये अपनी पत्नी के गर्भ में अपने को ही रखता है और पुत्र रूप में पैदा होता है।

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्।। अनुशासन 45/11

पुत्र अपनी आत्मा ही होता है। कन्या भी पुत्र के समान ही है किन्तु अपने आत्मा के स्वरूप पुत्र के रहते हुए दूसरा कोई उसका धन कैसे ले सकता है।

मातुश्च यौतुकं यत् स्यात् कुमारीभाग एव सः।
दौहित्र एव तद् रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत्।। अनुशासन 45/12

माता को दहेज में जो धन मिलता है उस पर कन्या का ही अधिकार होता है। जिसके कोई पुत्र नहीं है उसका धन पाने का अधिकारी दौहित्र ही है।

ददाति हि स पिण्डान् वै पितुर्मातामहस्य च।
पुत्रदौहित्रयोरेव विशेषो नास्ति धर्मतः।। अनुशासन 45/13

दौहित्र (लड़की का पुत्र, नाती) अपने पिता और नाना को भी पिण्ड देता है। धर्म की दृष्टि से पुत्र और दौहित्र (नाती) में कोई अन्तर नहीं है।

अन्यत्र जामया सार्धं प्रजानां पुत्र ईहते ।
दुहितान्यत्र जातेन पुत्रेणापि विशिष्यते।। अनुशासन 45/14

यदि कन्या पहले उत्पन्न हुई हो और उसे पुत्र मान लिया गया हो तथा बाद में पुत्र भी पैदा हुआ हो तो वह पुत्र उस कन्या (बहन) के साथ ही अपने पिता के धन का अधिकारी होता है। यदि दूसरे का पुत्र गोद लिया गया हो तो उस दत्तक पुत्र की अपेक्षा अपनी सगी बेटी ही श्रेष्ठ मानी जाती है अर्थात् बेटी ही पिता की सम्पत्ति की अधिकारिणी भी होती है।

दौहित्रकेण धर्मेण नात्र पश्यामि कारणम्।
विक्रीतासु हि ये पुत्रा भवन्ति पितुरेव ते।। अनुशासन 45/15

जो कन्याएँ बेच दी गई हों उनसे उत्पन्न पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति का ही उत्तराधिकारी होता है। उसका नाना के धन का अधिकारी बनने का कोई कारण नहीं है।

आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत्।
अल्पो वा बहु वा राजन् विक्रयस्तावदेव सः।। अनुशासन 45/20

राजन्! कुछ लोग आर्ष विवाह में एक गाय और एक बैल कन्या के मूल्य के रूप में लेने की बात करते हैं किन्तु यह गलत है। क्योंकि मूल्य थोड़ा लिया जाय या बहुत उससे कन्या को बेच ही दिया जाता है।

निदेशवर्ती च पितुः पुत्रो भवति धर्मतः।। आश्रमवास 4/8

धर्म के अनुसार पुत्र ही पिता की आज्ञा का पालन करता है इसलिये वह पिता को कैसे आज्ञा दे सकता है?

पुत्री

आत्मा पुत्रः सखा भार्या कृच्छ्रं तु दुहिता किल।। आदि 158/11

पुत्र को अपनी आत्मा और स्त्री को मित्र तथा लड़की को संकट कहा जाता है।

धिक् खल्वलघुशीलानामुच्छ्रितानां यशस्विनाम् ।
नराणां मृदुसत्त्वानां कुले कन्याप्ररोहणम्।। उद्योग 91/15

श्रेष्ठ स्वभाव वाले, कुलीन, यशस्वी और कोमल अन्तःकरण वाले पुरुषों के कुल में कन्या का जन्म लेना दुःख की बात होती है।

मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव प्रदीयते।
कुलत्रयं संशयितं कुरुते कन्यका सताम्।। उद्योग 97/16

कन्या; माता के कुल को, पिता के कुल को तथा अपनी ससुराल को–सज्जनों के इन तीनों कुलों को संशय में डाल देती है।

पुरुषार्थ

अस्थिरत्वं च संचिन्त्य पुरुषार्थस्य नित्यदा।
तस्योदये व्यये चापि न चिन्तयितुमर्हसि।। वन 79/12

पुरुष को मिलने वाली सम्पत्ति और ऐश्वर्य आदि सभी अस्थिर होते हैं अतः उनके मिलने या नष्ट होने पर चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च।
महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चात्यन्तमश्नुते।। उद्योग 39/57

पुरुषार्थ करते रहने से लक्ष्मी, लाभ और शुभ की प्राप्ति होती है। पुरुषार्थी व्यक्ति महान् बनता है और खूब सुख भोगता है।

लोकस्य नान्यतो वृत्तिः पाण्डवान्यत्र कर्मणः।
एवं बुद्धि प्रवर्तेत फलं स्यादुभयान्वये।। उद्योग 77/11

पाण्डुपुत्र! पुरुषार्थ के अतिरिक्त इस संसार में भाग्य के भरोसे जीवित नहीं रहा जा सकता। यह सोचकर काम में लगना चाहिये। पुरुषार्थ और प्रारब्ध इन दोनों के मिलने से सफलता होगी।

दैवं हि मानुषोपेतं भृशं सिद्ध्यति पार्थिव।। उद्योग 191/15

राजन्! पुरुषार्थ से मिलकर भाग्य बहुत कल्याणकारी होता है।

हीनं पुरुषकारेण कर्म त्विह न सिद्ध्यति।। सौप्तिक 2/20

पुरुषार्थ के बिना इस संसार में कोई काम पूरा नहीं होता।

पौरुषं हि परं मन्ये दैवं निश्चितमुच्यते।। शान्ति 56/15

मैं पुरुकार्थ को ही प्रधान मानता है। प्रारब्ध तो पहिले से ही निश्चित है।

उत्थानवीरः पुरुषो वाग्वीरानधितिष्ठति।।शान्ति 58/ 15

उद्यमशील पुरुष बातें बनाने वाले लोगों पर अपना प्रभाव जमा लेता है।

विद्या तपो वा विपुलं धनं वा सर्वं ह्येतद् व्यवसायेन शक्यम्।
बुद्ध्यायत्तं तन्निवसेद् देहवत्सु तस्माद् विद्याद् व्यवसायं प्रभूतम्।।

शा० 120/45

विद्या, तप और बहुत धन ये सब पुरुषार्थ से मिल सकते हैं। पुरुषार्थ प्राणियों में बुद्धि के अधीन होकर रहता है अतः पुरुषार्थ को ही सफलता का साधन मानो।

दैवं पुरुषकारश्च स्थितावन्योन्यसंश्रयात्।
उदाराणां तु सत्कर्म दैवं क्लीबा उपासते।। शान्ति 139/82

भाग्य और पुरुषार्थ ये दोनों एक-दूसरे के सहारे रहते हैं। उदार विचार वाले पुरुष सदा अच्छे काम करते हैं और नपुंसक भाग्य के भरोसे रहते हैं।

यथा बीजं विना क्षेत्रमुप्तं भवति निष्फलम्।
तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति।। अनुशासन 6/7

जिस प्रकार खेत में बीज बोये कुछ नहीं पैदा होता वैसे ही पुरुषार्थ किये बिना भाग्य या प्रारब्ध फल नहीं देता।

क्षेत्रं पुरुषकारस्तु दैवं बीजमुदाहृतम्।
क्षेत्रबीजसमायोगात् ततः सस्यं समृद्ध्यते।। अनुशासन 6/8

पुरुषार्थ खेत है और भाग्य बीज। खेत और बीज के मिलने से ही अन्न पैदा होता है।

कृती सर्वत्र लभते प्रतिष्ठां भाग्यसंयुताम्।
अकृती लभते भ्रष्टः क्षते क्षारावसेचनम्।। अनुशासन 6/11

पुरुषार्थी मनुष्य भाग्य के अनुसार सब जगह सम्मान पाता है। पुरुषार्थ न करने वाला मनुष्य सम्मान से भ्रष्ट होकर घाव पर नमक छिड़कने के समान दुःख भोगता है।

प्राप्यते कर्मणा सर्वं न दैवादकृतात्मन।। अनुशासन 6/12

कर्म करने से सब कुछ मिल सकता है किन्तु कर्म न कर भाग्य के भरोसे रहने से कुछ नहीं मिलता।

यत्नवान् सुखमेधते।। अनु 104/146

प्रयत्न करने वाला पुरुष सरलता से उन्नति करता है।

न याचेत् परान् धीरः स्वबाहुबलमाश्रयेत्।। अनु 145 दा० पा०

धीर पुरुष को दूसरों से कुछ नहीं मांगना चाहिये और अपने बाहुबल पर निर्भर रहना चाहिये।

केवलं फलनिष्पत्तिरेकेन तु न शक्यते।
पौरुषेणैव दैवेन युगपद् ग्रथितं प्रिये।। अनु 145 दा० पा०

प्रिये! केवल भाग्य से या पुरुषार्थ से सफलता नहीं मिलती। प्रत्येक कार्य की सफलता भाग्य और पुरुषार्थ के संयोग से होती है।

खननान्मथनाल्लोके जलाग्नि प्रापणं तथा।
तथा पुरुषकारे तु दैवसम्पत् समाहिता।। अनु 145 दा० पा०

जैसे संसार में भूमि खोदने से पानी और अरणि को मथने से अग्नि पैदा हो जाती है वैसे ही पुरुषार्थ करने पर दैव का सहयोग अपने आप मिल जाता है।

नरस्याकुर्वतः कर्म दैवसम्पन्न लभ्यते।
तस्मात् सर्वसमारम्भो दैवमानुषनिर्मितम्।। अनु 145 दा० पा०

जो मनुष्य काम नहीं करना उसे दैवी सहायता नहीं मिलती। इसलिये सभी काम पुरुषार्थ और दैवी सहायता से प्रारम्भ होते हैं।

पुरोहित

आचार्या वै कारुणिका प्राज्ञाश्च पापदर्शिनः।
नैते महाभये प्राप्ते सम्प्रष्टव्याः कथंचन।। विराट 47/28

गुरु और आचार्य बड़े दयालु, बुद्धिमान और पाप के दोष देखने वाले होते हैं। कोई बड़ा संकट आ पड़ने पर इनसे कोई सलाह नहीं लेनी चाहिये।

प्रासादेषु विचित्रेषु गोष्ठीषूपवनेषु च।
कथा विचित्राः कुर्वाणाः पण्डितास्तत्रशोभनाः।। विराट 47/29

पण्डित लोग सुन्दर महलों में, मन्दिरों में, सभाओं में और बगीचों में बैठकर तरह-तरह की कथाएँ सुनाते हुए अच्छे लगते हैं।

बहून्याश्चर्यरूपाणि कुर्वाणा जनसंसदि।
इज्यास्त्रे चोपसंधाने पण्डितास्तत्र शोभनाः।। विराट 47/30

लोगों के बीच आश्चर्यजनक काम करने तथा यज्ञ पात्रों को ठीक स्थान पर रखने तथा यज्ञ सम्बन्धी क्रियाएँ करने में भी पण्डितों की शोभा होती है।

प्रकृति

तमो व्यक्तं शिवं धाम रजो योनिः सनातनः।
प्रकृतिर्विकारः प्रलयः प्रधानं प्रभवाप्ययौ।। आश्व 39/23
अनुद्रिक्तमनूनं वाप्यकम्पमचलं ध्रुवम्।
सदसच्चैव तत् सर्वमव्यक्तं त्रिगुणं स्मृतम्।
ज्ञेयानि नामधेयानि नरैरध्यात्मचिन्तकैः।। आश्व 39/24

प्रकृति को तम, व्यक्त, शिव, धाम, रज, योनि, सनातन, प्रकृति, विकार, प्रलय, प्रधान, प्रभव (उत्पत्ति), अप्यय (विनाश), अनुद्रक्त, अनून, अकम्प, अचल, ध्रुव, सत्, असत्, अव्यक्त और त्रिगुणात्मक कहते हैं। अध्यात्मज्ञान का चिन्तन करने वालों को इन नामों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

लोकानामादिरव्यक्तं सर्वस्यान्तस्तदेव च।। आश्व 44/17

सारे संसार का आदि और अन्त अव्यक्त प्रकृति है।

प्रकृति और पुरुष

अनाद्यन्तावुभावेतावलिङ्गौ चाप्युभावपि।। शान्ति 217/7
उभौ नित्यावविचलौ महदभ्यश्च महत्तरौ।
सामान्यमेतदुभयोरेवं ह्यन्यद्विशेषणम्।। शान्ति 217/8

प्रकृति और पुरुष (जीवात्मा) दोनों ही अनादि और अनन्त हैं। दोनों ही अलिङ्ग अर्थात् निराकार हैं। दोनों ही नित्य, अविचल और महान से भी महान हैं। इन दोनों में जो भिन्नता या अन्तर है वह इस प्रकार है।

प्रकृत्या सर्गधर्मिण्या तथा त्रिगुणधर्ममया।
विपरीतमतो विद्यात् क्षेत्रज्ञस्य स्वलक्षणम्।। शान्ति 217/9

प्रकृति त्रिगुणमयी है अर्थात् इसमें सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण हैं। ब्रह्म के पास आने पर प्रकृति का सृष्टि उत्पन्न करना स्वाभाविक धर्म है। किन्तु क्षेत्रज्ञ पुरुष का स्वरूप प्रकृति से अलग है।

प्रकृतेश्चविकाराणां द्रष्टारमगुणान्वितम्।
अग्राह्यौ पुरुषावेतावलिङ्गत्वादसंहतौ।। शान्ति 217/10

क्षेत्रज्ञ; स्वयं तीनों गुणों से रहित तथा प्रकृति के कार्यों (विकारों) का द्रष्य है। प्रकृति और पुरुष दोनों को ही इन्द्रियाँ नहीं देख सकतीं। प्रकृति और पुरुष आकार रहित और एक-दूसरे से विलक्षण हैं।

संयोग लक्षणोत्पत्तिः कर्मणा गृह्यते यथा।
करणैः कर्मनिर्वृत्तिः कर्ता यद् यद् विचेष्टते।।
कीर्त्यते शब्दसंज्ञाभिः कोऽहमेषो ऽप्यसाविति।। शान्ति 217/11

प्रकृति और पुरुष के संयोग से चल और अचल जगत उत्पन्न होता है। जगत की उत्पत्ति कर्म से ही जानी जाती है। जीव, मन और इन्द्रियों से कर्म करता है इसलिये वह कर्ता (करने वाला) कहलाता है। वह जो-जो कर्म करता है उसका कर्ता कहलाता है। 'कौन' 'मैं' 'वह' और 'यह' इन शब्दों से उसी कर्त्ता जीव का वर्णन किया जाता है।

संवृत्तोऽयं तथा देही सत्त्वराजसतामसैः।। शान्ति 217/12

इस देह में रहने वाला जीव सत्त्व, रजस् और तमस् गुणों से युक्त होता है।

प्रकृत्यास्तु विकारा ये क्षेत्रज्ञस्तैरधिष्ठितः।
न चैनं ते प्रजानन्ति स तु जानाति तानपि।। शान्ति 246/1

देह, इन्द्रिय, मन आदि जो प्रकृति के विकार हैं वे क्षेत्रज्ञ (आत्मा) के सहारे ही रहते हैं। ये विकार जड़ हैं इसलिये वे चेतन क्षेत्रज्ञ को नहीं जानते किन्तु क्षेत्रज्ञ इन विकारों को जानता है।

तैश्चैवं कुरुते कार्यं मनःषष्ठैरिहेन्द्रियैः।
सुदान्तैरिव संयन्ता दृढैः परमवाजिभिः।। शान्ति 246/2

जैसे सारथि अपने वश में किये हुए उत्तम घोड़ों से काम लेता है वैसे ही क्षेत्रज्ञ भी अपने वश में की हुई मन और इन्द्रियों से काम लेता है।

इन्द्रियेभ्यः परे ह्यर्थाः अर्थेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः।। शान्ति 246/3

इन्द्रियों की अपेक्षा उनके विषय अधिक बलवान हैं। विषयों से अधिक बलवान मन है। मन से अधिक शक्तिशाली बुद्धि है और बुद्धि से अधिक शक्तिशाली आत्मा है।

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् परतोऽमृतम्।
अमृतान्न परं किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः।। शान्ति 246/4

जीवात्मा से बलवान् अव्यक्त अर्थात् मूल प्रकृति है। और अव्यक्त से शक्तिशाली और श्रेष्ठ अमृत स्वरूप परमात्मा है। उससे बढ़कर श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। वही श्रेष्ठता की चरम सीमा और परम गति है।

एवं सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्‌या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।। शान्ति 246/5

सभी प्राणियों के भीतर हृदय की गुफा में छिपा हुआ वह परमात्मा इन्द्रियों द्वारा नहीं दिखाई देता। सूक्ष्मदर्शी ज्ञानी महात्मा ही अपनी सूक्ष्म और श्रेष्ठ बुद्धि से उसका साक्षात् करते हैं।

अन्तरात्मनि संलीय मनः षष्ठानि मेधया।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च बहुचिन्त्यमचिन्तयन्।। शान्ति 246/6
ध्यानेनोपरमं कृत्वा विद्यासम्पादितं मनः।
अनीश्वरः प्रशान्तात्मा ततोऽर्च्छत्यमृतं पदम्।। शान्ति 246/7

योगी बुद्धि के द्वारा मन सहित छहों इन्द्रियों और उनके विषयों को अन्तरात्मा में लीन करने इन तरह-तरह के चिन्तनीय विषयों के बारे में न सोचता हुआ विवेक द्वारा शुद्ध किये हुए मन को ध्यान के द्वारा सब ओर से रोक करके कुछ भी करने में असमर्थ बना लेता है अर्थात् कर्त्तापन के अभिमान से जब योगी का मन अलग हो जाता है तब उसका मन अत्यधिक शान्त हो जाता है और वह अमृत स्वरूप परमात्मा को देख लेता है।

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां वश्यात्मा चलितस्मृतिः।
आत्मनः सम्प्रदानेन मर्त्यो मृत्युमुपाश्नुते।। शान्ति 246/8

जिसका मन सभी इन्द्रियों के वश में हो जाता है। वह मनुष्य अपना विवेक खो देता है। वह अपने आप को काम, क्रोध आदि शत्रुओं के हाथ में सौंप कर मृत्यु का कष्ट भोगता है।

आहत्य सर्वसंकल्पान् सत्त्वे चित्तं निवेशयेत्।
सत्त्वे चित्तं समावेश्य ततः कालंजरो भवेत्।। शान्ति 246/9

इसलिये सब तरह के संकल्पों को नष्ट करके चित्त को सूक्ष्म बुद्धि में लीन करना चाहिये। बुद्धि में चित्त का लय करके योगी काल पर विजय प्राप्त कर लेता है।

चित्तप्रसादेन यतिर्जहातीह शुभाशुभम्।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमत्यन्तमश्नुते।। शान्ति 246/10

चित्त की सम्पूर्ण शुद्धि से युक्त योगी इस संसार के शुभ और अशुभ कर्मों को छोड़ देता है। वह प्रसन्नचित्त और आत्मनिष्ठ होकर अक्षय सुख भोगता है।

लक्षणं तु प्रसादस्य यथा स्वप्ने सुखं स्वपेत्।
निवाते वा यथा दीपो दीप्यमानो न कम्पते।। शान्ति 246/11

मनुष्य नींद में जैसे सुख से सोता है या जैसे वायु रहित स्थान में दीपक एकतार जलता है उसी तरह जब मन चंचल नहीं होता तब वह प्रसन्न या प्रसाद गुण वाला होता है।

एवं पूर्वापरे काले युञ्जन्नात्मानमात्मनि।
लघ्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि।। शान्ति 246/12

जो व्यक्ति रात के पहले और पिछले पहर में आत्म को परमात्मा के ध्यान में लगाता है। जो मिताहार करता है और अपने मन को शुद्ध पवित्र रखता है। वह अपने अन्तःकरण में परमात्मा को देखता है।

प्राण और योग

मूर्धानमाश्रितो वह्निः शरीरं परिपालयन्।
प्राणो मूर्धनि चाग्नौ च वर्तमानो विचेष्टते।। वन 213/3

अग्नि स्वरूप उदान वायु मस्तक का सहारा लेकर रहता है और शरीर की रक्षा करता है। प्राणवायु मस्तक और उदान वायु में रहकर सारे शरीर में जीवन का संचार करता है। तेजो ह वै उदानः- (प्रश्नोप० 3/9)

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं प्राणे प्रतिष्ठितम्।
श्रेष्ठं तदेव भूतानां ब्रह्मयोनिमुपास्महे।। वन 213/4

भूत, वर्त्तमान और भविष्य सब कुछ प्राण वायु पर ही आश्रित है। प्राणवायु समस्त भूतों में श्रेष्ठ है। ब्रह्म से उत्पन्न प्राण की हम उपासना करते हैं।

प्रयत्ने कर्मणि बले स एष त्रिषु वर्तते।
उदानमिति तं प्राहुरध्यात्म विदुषो जनाः।। वन 213/8

जब प्राण वायु काम करता है (प्रयत्न) आना जाना आदि कोई क्रिया करता है (कर्म) तथा भार उठाने आदि शक्ति (बल) के काम करता है तो उदान कहलाता है। यह बात अध्यात्म के ज्ञानी बतलाते हैं।

संधौ संधौ संनिविष्टः सर्वेष्वपि तथानिलः।
शरीरेषु मनुष्याणां व्यान इत्युपदिश्यते।। वन 213/9

मनुष्य शरीर के प्रत्येक जोड़ में रहने वाला प्राणवायु, व्यान कहलाता है।

प्राणानां संनिपातात् तु संनिपातः प्रजायते।
ऊष्मा चाग्निरिति ज्ञेयो योऽन्नं पचति देहिनाम्।। वन 213/11

प्राण, अपान आदि वायुओं के आपस में मिलने से टकराहट पैदा होती है। इससे पैदा हुई गर्मी जठराग्नि होती है जो अन्न को पचाती है।

समानोदानयोर्मध्ये प्राणापानौ समाहितौ।
समर्थितस्त्वधिष्ठानं सम्यक् पचति पावकः।। वन 213/12

समान और उदान वायुओं के बीच में प्राण और अपान वायु रहती हैं। (प्राण वायु हृदय में रहती है, समान वायु नाभि में, अपान वायु गुदा में और उदान वायु कण्ठ में)। प्राण वायु के समान से मिलने पर और अपान वायु के उदान से मिलने पर तथा प्राण और अपान वायु का नाभि में समान वायु से संघर्ष होने से जो अग्नि उत्पन्न होती है वह जठराग्नि होती है। जठराग्नि अन्न को पचाती है और शरीर को पुष्ट करती है।

अस्यापि पायुपर्यन्तस्तथा स्याद् गुदसंज्ञितः।
स्त्रोतांसि तस्माज्जायन्ते सर्वप्राणेषु देहिनाम्।। वन 213/13

जठराग्नि, नाभि से गुदा तक गति करती है। गुदा के पास से देह धारियों के सभी प्राणों के स्त्रोत (नाड़ी मार्ग) निकलते हैं।

पक्वाशयस्त्वधो नाभ्यामूर्ध्वमामाशयः स्थितः।
नाभिमध्ये शरीरस्य प्राणाः सर्वे प्रतिष्ठिताः।। वन 213/15

नाभि से नीचे पक्वाशय होता है (पचे हुए अन्न का स्थान) तथा नाभि से ऊपर आमाशय (खाये हुए बिना पके भोजन का स्थान)। नाभि के मध्य में शरीर के सभी प्राण रहते हैं।

प्रवृत्ता हृदयात् सर्वे तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा।
वहन्त्यन्नरसान् नाड्यो दशप्राणप्रचोदिताः।। वन 213/16

शरीर में ऊपर-नीचे, दांये-बांये जितनी भी नाड़ियाँ फैली हुई हैं उनका केन्द्र स्थान हृदय है। ये नाड़ियाँ दस वायुओं से प्रेरित होकर सारे शरीर में अन्न और रसों को पहुँचाती हैं।

पूर्वरात्रे परे चैव युञ्जानः सततं मनः।
लघ्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यन्नात्मानमात्मनि।। वन 213/26
प्रदीप्तेनेव दीपेन मनोदीपेन पश्यति।
दृष्ट्वाऽऽत्मानं निरात्मानं स तदा विप्रमुच्यते।। वन 213/27

मनुष्य को हल्का भोजन करना चाहिये और अन्तःकरण में पवित्र विचार रखने चाहियें। उसे रात के पहले और अन्तिम पहरों में मन को सदा परमात्मा के चिन्तन में लगाना चाहिये। जो व्यक्ति इस प्रकार अपने हृदय में परमात्म चिन्तन का निरन्तर अभ्यास करता है वह प्रज्वलित दीपक की भाँति प्रकाशित मन के दीपक से निराकार परमात्मा का साक्षात्कार कर मुक्त हो जाता है।

सुखप्रिये सेवमानोऽतिवेलं योगाभ्यासे यो न करोति कर्म।
वित्तक्षये हीनसुखोऽतिवेलं दुःखं शेते कामवेग प्रणुन्नः।। उद्योग 27/8

जो मनुष्य भोगों और पुत्र आदि प्रिय वस्तुओं का निरन्तर सेवन करते हुए योगाभ्यास नहीं करता वह पैसा नष्ट हो जाने पर सुखों से वंचित हो जाता है और कामनाओं के प्रबल वेग से क्षुब्ध रहकर सुख से नहीं सो पाता।

प्राणस्यान्नमिदं सर्वमिति वै कवयो विदुः।
स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम्।। शान्ति 10/6

विद्वानों का कहना है कि संसार में सब कुछ प्राणों का ही भोजन है। स्थावर (वृक्ष आदि) जंगम (पशु-पक्षी आदि) सभी प्राण का भोजन है।

प्राणस्यान्नमिदं सर्वं जङ्गमं स्थावरं च यत्।। शान्ति 15/22

इस संसार में जो भी चल और अचल प्राणी या पदार्थ हैं वे सब प्राण के भोजन हैं।

यस्य वाङ्मनसी स्यातां सम्यक् प्रणिहिते सदा।
तपस्त्यागश्च सत्यं च स वै सर्वमवाप्नुयात्।। शान्ति 175/34

जिसकी वाणी और मन दोनों ही सदा भली-भाँति एकाग्र रहते हैं। जो तप, त्याग और सत्य का पालन करता है वह निश्चय ही सब कुछ पा लेता है।

प्राणिनां सर्वतो वायुश्चेष्टां वर्तयते पृथक्।
प्राणनाच्चैव भूतानां प्राण इत्यभिधीयते।। शान्ति 328/35

वायु देवता प्राणियों की सारी अलग-अलग चेष्याएँ करते हैं तथा सभी प्राणियों को जीवित रखते हैं इसलिये इन्हें प्राण कहा जाता है।

प्राणत्यागं सुदुष्करम्।। अनु 117/2

प्राणों को छोड़ना अर्थात् मरना बहुत कठिन और कष्टप्रद होता है।

दुःखं हि मृत्युर्भूतानां जीवितं च सुदुर्लभम्।। अनु० 117/16

प्राणियों को मृत्यु बहुत दुःख देती है और सबको अपना जीवन बहुत कठिनाई से मिलने वाला दिखाई देता है।

सर्वत्र निरतो जीव इतश्चापि सुखं मम।
चिन्तयामि महाप्राज्ञ तस्मादिच्छामि जीवितुम्।। अनु 117/17

हे महान् बुद्धिमान् ऋषि! जीव सभी योनियों में सुख अनुभव करते हैं। मुझे भी इस कीड़े की योनि में सुख मिलेगा यही सोच कर मैं जीवित रहना चाहता हूँ।

इहापि विषयः सर्वो यथादेहं प्रवर्तितः।
मानुषाः स्थैर्यजाश्चैव पृथग्भोगा विशेषतः।। अनु 117/18

कीड़े की इस योनि में भी कीड़े के शरीर के अनुसार सारे विषय भोग मिलते हैं। मनुष्यों और स्थावर प्राणियों (वृक्ष आदि) के भोग अलग-अलग है।

न हि प्राणैः प्रियतरं लोके किंचन विद्यते।
तस्मात् प्राणिदया कार्या यथाऽऽत्मनि तथापरे।। अनु 145 दा०पा०अ०XI

इस संसार में अपने प्राणों से बढ़कर और कोई वस्तु प्रिय नहीं है। इसलिये हम जैसे अपने ऊपर किसी की दया चाहते हैं उसी प्रकार हमें भी दूसरे प्राणियों पर दया करनी चाहिये।

प्राणो हि परमो धर्मः स्थितो देहेषु देहिनाम्।। आश्व 90/59

शरीरधारियों की देह में रहने वाला प्राण ही शरीर का परम धर्म अर्थात् आधार है।

प्राणी

स्थावरं जङ्गमं चेति जगत् द्विविधिमुच्यते।
चतस्त्रो योनयस्तत्र प्रजानां क्रमशो यथा।। अनु 145 दा०पा०अ० IX

यह संसार स्थावर अर्थात् एक ही जगह रहने वाले वृक्ष, पर्वत आदि और जंगम अर्थात् चलने फिरने और उड़ने वाले प्राणी, चल और अचल दो तरह का है। संसार में चार योनियों के प्राणी हैं जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज।

तेषामुद्भिजा वृक्षा लतावल्लयश्च वीरुधः।
दशंयूकादयश्चान्ये स्वेदजाः कृमिजातयः।। अनु 145 दा०पा०अ० IX

इनमें पेड़, बेल, झाड़ियाँ और घास-पात आदि उद्भिज कहलाते हैं। डांस, जूं और कीट-पतंग आदि स्वेदज होते हैं।

पक्षिणश्छिद्रकर्णाश्च प्राणिनस्त्वण्डजा मताः।
मृगव्याल मनुष्यांश्च विद्धि तेषां जरायुजान्।। अनु 145 दा०पा०अ० IX

पंखों वाले और कान की जगह छेद वाले प्राणी अण्डज अर्थात् अण्डे से पैदा होते हैं। हरिण, शेर-चीते और मनुष्य जरायुज होते हैं।

तथा भूम्यम्बु संयोगाद् भवन्त्युद्भिजाः प्रिये।
शीतोष्णयोस्तु संयोगाज्जायन्ते स्वेदजाः प्रिये।। अनु 145 दा० पा० IX

प्रिये ! भूमि और पानी के संयोग से जमीन फोड़ कर निकलने वाले वृक्ष-वनस्पति आदि उद्भिज कहलाते हैं। गर्मी, सर्दी के संयोग से जूँ, कीड़े, आदि स्वेदज प्राणी पैदा होते हैं।

अण्डजाश्चापि जायन्ते संयोगात् क्लेदबीजयोः।
शुक्रशोणितसंयोगात् सम्भवन्ति जरायुजाः
जरायुजानां सर्वेषां मानुषं पदमुत्तमम्।। अनु 145 दा० पा० IX

क्लेद (गीलापन-आर्द्रता) और बीज के संयोग से अण्डज अर्थात् अण्डे से उत्पन्न होने वाले प्राणी जन्म लेते हैं। वीर्य और रज के संयोग से जरायुज अर्थात् जेर में लिपटे प्राणी पैदा होते हैं। जरायुज प्राणियों में मनुष्य का स्थान सब प्राणियों से ऊँचा है।

ब्रह्मघाती

यः प्रवृत्तां श्रुतिं सम्यक्छास्त्रं वा मुनिभि कृतम्।
दूषयन्त्यनभिज्ञाय तमाहुर्ब्रह्मघातकम्।। आश्व 92 दा० पा० अ XII

जो व्यक्ति परम्परागत वैदिक श्रुतियों और शास्त्रों तथा मुनियों द्वारा प्रणीत शास्त्रों को समझे बिना इन शास्त्रों की निन्दा करता है उसे ब्रह्महत्यारा कहा जाता है।

आश्रमे वाऽऽलये वापि ग्रामे वा नगरेऽपि वा।
अग्निं यः प्रक्षिपेत् क्रुद्धस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्।। आश्व 92 दा०पा० अ XII

जो व्यक्ति क्रोध में आकर किसी आश्रम, घर, गाँव या शहर में आग लगा देता है। वह ब्रह्महत्या का दोषी माना जाता है।

चक्षुषा वापि हीनस्य पङ्गोर्वापि जडस्य वा।
हरेद्वै यस्तु सर्वस्वं तमाहुर्ब्रह्मघातकम्।। आश्व 92 दा० पा० अ XII

जो व्यक्ति, अन्धे, लंगड़े और गूँगे मनुष्य की सम्पत्ति छीन लेता है वह ब्रह्महत्या का दोषी होता है।

ब्रह्मचर्य आश्रम

आहूताध्यायी गुरुकर्मस्वचोद्यः पूर्वोत्थायी चरमं चोपशायी।
मृदुर्दान्तो धृतिमानप्रमत्तः स्वाध्यायशीलः सिध्यति ब्रह्मचारी।।

आदि 91/2

शिष्य को गुरुजी के बुलाने पर उनके पास बैठकर पढ़ना चाहिये। बिना कहे गुरु की सेवा करनी चाहिये। गुरु के उठने से पहले जाग जाना चाहिये और गुरुजी के सोने के बाद सोना चाहिये। शिष्य का व्यवहार नम्र होना चाहिये, उसे जितेन्द्रिय, जागरूक और स्वाध्यायशील होना चाहिये। ऐसा शिष्य जीवन में सफल रहता है।

नावर्तते व्रतं स्वप्ने शुक्रमोक्षे कथंचन।
आज्यहोमः समिद्धेऽग्नौ प्रायश्चित्तं विधीयते।। शान्ति 34/26

यदि किसी ब्रह्मचारी का सोते हुए वीर्य स्खलित हो जाय तो उसे दुबारा उपनयन संस्कार कराने की आवश्यकता नहीं है। इसके लिये प्रज्वलित अग्नि में घी से यज्ञ करना प्रायश्चित्त है।

स्मरन्नेको जपन्नेकः सर्वानेको युधिष्ठिरः।
एकस्मिन्नेव चाचार्ये शुश्रूषुर्मलपङ्कवान्।। शान्ति 61/18

युधिष्ठिर! ब्रह्मचारी को अकेले ही वेदमन्त्रों का चिन्तन और जप करते हुए सभी कार्य करने चाहियें। अपने शरीर में मैल और कीचड़ लगी होने पर भी अपने गुरु की सेवा में लगे रहना चाहिये।

ब्रह्मचारी व्रती नित्यं नित्यं दीक्षापरो वशी।
परिचार्य तथा वेदं कृत्यं कुर्वन् वसेत् सदा।। शान्ति 61/19

ब्रह्मचारी सदा मन और इन्द्रियों को वश में रखकर व्रत और दीक्षा का पालन करे। वेदों का स्वाध्याय तथा कर्त्तव्य कर्मों को करता हुआ रहे।

यदिदं ब्रह्मणो रूपं ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम्।
परं तत् सर्वधर्मेभ्यस्तेन यान्ति परां गतिम्।। शान्ति 214/7

ब्रह्मचर्य को शास्त्रों में ब्रह्म का स्वरूप ही बताया गया है। यह सब धर्मों में श्रेष्ठ है। ब्रह्मचर्य पालन से मनुष्य परमपद पा लेता है।

सुदुष्करं ब्रह्मचर्यमुपायं तत्र मे शृणु।
सम्प्रदीप्तमुदीर्णं च निगृह्णीयात् द्विजो रजः।। शा० 214/11

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना बहुत कठिन है। इसको पालन करने का उपाय यही है कि जब रजोगुण की प्रवृत्ति प्रकट होने लगे और बढ़ने लगे तब बुद्धिमान पुरुष को रजोगुण की प्रवृत्ति रोक देनी चाहिये।

योषितां न कथा श्राव्या न निरीक्ष्या निरम्बराः।
कथञ्चिद् दर्शनादासां दुर्बलानां विशेद्रजः।। शान्ति 214/12

स्त्रियों की चर्चा नहीं सुननी चाहिये। उन्हें नंगी अवस्था में नहीं देखना चाहिये। यदि दुर्बल हृदय वाले मनुष्य किसी प्रकार नग्न स्त्रियों को देख लेते हैं तो उनके मन में रजोगुण–राग या काम का भाव आ जाता है।

रागोत्पन्नश्चरेत् कृच्छ्रं महार्तिं प्रविशेदपः।
मग्नः स्वप्ने च मनसा त्रिर्जपेदघमर्षणम्।। शान्ति 214/13

यदि ब्रह्मचारी के मन में राग या काम विकार आ जाये तो उसे कृच्छ्र व्रत रखना चाहिये। यदि उसे कामवेदना अधिक परेशान करे तो वह नदी में खड़ा रहे। यदि स्वप्नावस्था में वीर्यपात हो जाय तो वह तीन बार अघमर्षण सूक्त का जाप करे।

पाप्मानं निर्दहेदेवमन्तर्भूतरजोमयम्।
ज्ञानयुक्तेन मनसा संततेन विचक्षणः।। शान्ति 214/14

विवेकी पुरुष को ज्ञानयुक्त और संयमशील मन के द्वारा हृदय में प्रकट हुए पापमय काम विकार को जला देना चाहिये।

मध्ये च हृदयस्यैका शिरा तत्र मनोवहा।
शुक्रं संकल्पजं नृणां सर्वगात्रैर्विमुञ्चति।। शान्ति 214/19

हृदय के बीच में मनोवहा नाम की एक नाड़ी है जो पुरुषों के काम सम्बन्धी चिन्तन से सारे शरीर से वीर्य को निकाल देती है।

स्वप्नेऽप्येवं यथाभ्येति मनःसंकल्पजं रजः।
शुक्रं संकल्पजं देहात् सृजत्यस्य मनोवहा।। शान्ति 214/22।

स्वप्न में भी मन के संकल्प के कारण स्त्री के बारे में राग उत्पन्न हो जाता है। मनोवहा नाड़ी संकल्प से उत्पन्न वीर्य को पुरुष के शरीर से निकाल देती है।

तस्मात् तद्भिघाताय कर्म कुर्यादकल्मषम्।
रजस्तमश्च हित्वेह यथेष्टां गतिमाप्नुयात्।। शान्ति 214/27

अतः मन को वश में रखने के लिये पुरुष को पापरहित कर्म करने चाहियें। मन को वश में रखने वाला पुरुष रजोगुण और तमोगुण से छूटकर इच्छानुसार गति प्राप्त कर लेता है।

भार्यां गच्छन् ब्रह्मचारी ऋतौ भवति वै द्विजः।
ऋतवादी भवेन्नित्यं ज्ञाननित्यश्च यो नरः।। शान्ति 221/11

जो ब्राह्मण केवल ऋतुकाल के समय ही पत्नी से समागम करता है, सदा सत्य बोलता है और सदा ज्ञान में स्थित रहता है वह ब्रह्मचारी होता है।

ब्रह्मचर्येण वै लोकान् जयन्ति परमर्षयः।
आत्मनश्च ततः श्रेयांस्यन्विच्छन् मनसाऽऽत्मनि।। शान्ति 242/6

श्रेष्ठ ऋषियों ने ब्रह्मचर्य से उत्तम लोकों पर विजय पायी है। अतः मन ही मन अपने कल्याण की इच्छा रखकर ब्रह्मचर्य पालन करे।

गन्धान् रसान् नानुरुन्ध्यात् सुखं वा नालंकारांश्चाप्नुयात् तस्य तस्य।
मानं च कीर्तिं च यशश्च नेच्छेत् स वै प्रचारः पश्यतो ब्राह्मणस्य।।
शान्ति 251/1

साधक और ब्रह्मचारी को गन्ध और रस आदि विषयों का सेवन नहीं करना चाहिये। उसे सुख पाने की इच्छा नहीं करनी चाहिये। उसे गहने भी नहीं पहनने चाहिये। उसे मान, बड़ाई और यश की इच्छा नहीं करनी चाहिये। ज्ञानवान ब्राह्मण या ब्रह्मचारी का यही आचार या आचरण है।

भावितैः करणैश्चायं बहुसंसार योनिषु।
आसादति शुद्धात्मा मोक्षं वै प्रथमाश्रमे।। शा० 326/26

अनेक जन्मों में कर्म करते करते जब सारी इन्द्रियां पवित्र हो जाती हैं तब पहले आश्रम में अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम में ही मोक्ष मिल सकता है।

धनं लभते दानेन मौनेनाज्ञां विशाम्पते।
उपभोगांश्च तपसा ब्रह्मचर्येण जीवितम्।। अनुशासन 7/14

राजन्! दान देने से मनुष्य धन पाता है। मौन व्रत का पालन करने से दूसरों के द्वारा अपनी आज्ञा पालन कराने की शक्ति प्राप्त करता है। तप से भोग और ब्रह्मचर्य पालन करने से दीर्घायु मिलती है।

रहस्य श्रवणं धर्मो वेदव्रतनिषेवणम्।
अग्निकार्यं तथा धर्मो गुरुकार्यप्रसाधनम्।। अनु 141/35

धर्म का रहस्य सुनना, वेदों और शास्त्रों के अनुसार व्रतों का पालन करना, यज्ञ और गुरु की सेवा करना ब्रह्मचारी का धर्म है।

भैक्षचर्या परोधर्मो नित्ययज्ञोपवीतता।
नित्यं स्वाध्यायिता धर्मो ब्रह्मचर्याश्रमस्तथा।। अनु 141/36

ब्रह्मचारी को भिक्षा मांग कर गुजारा करना चाहिये। उसे यज्ञोपवीत सदा धारण करना चाहिये। स्वाध्याय में लगे रहना चाहिये और ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमों का पूरी तरह पालन करना चाहिये।

ब्रह्मचर्यं परं शौचं ब्रह्मचर्यं परं तपः।
केवलं ब्रह्मचर्येण प्राप्यते परमं पदम्।। अनु 145 दा०पा०अ०XI

ब्रह्मचर्य पालन सर्वोत्तम शौच अर्थात् पवित्रता का कार्य है। ब्रह्मचर्य से बढ़कर कोई तप नहीं है। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने मात्र से ही मनुष्य मोक्ष पद पा लेता है।

तदिष्यते गृहस्थानां कालमुद्दिश्य कारणम्।
जन्मनक्षत्र योगेषु पुण्यवासेषु पर्वसु ।
देवता धर्म कार्येषु ब्रह्मचर्यव्रतं चरेत्।। अनु 145 दा० पा० अ० XI

गृहस्थियों को भी ब्रह्मचर्य का पालन कुछ विशेष अवसरों पर अवश्य करना चाहिये। जन्म नक्षत्र का योग आने पर, पवित्र स्थानों में, पर्वों के अवसरों पर और देवता सम्बन्धी धार्मिक अनुष्ठानों के अवसरों पर ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये।

ब्रह्मचर्य व्रतफलं लभेद् दाराव्रती सदा।
शौचमायुस्तथाऽऽरोग्यं लभ्यते ब्रह्मचारिभिः।। अनु 145 दा०पा०अ०XI

जो गृहस्थी अपनी पत्नी से ही समागम करता है उसे ब्रह्मचर्य पालन का लाभ मिलता है। ब्रह्मचारी पवित्र, नीरोग, तथा लम्बी आयु वाले होते हैं।

ब्रह्मचारी सदैवैष य इन्द्रियजये रतः।। आश्व 26/15

इन्द्रियों पर सदा नियंत्रण रखने का प्रयत्न करने वाला व्यक्ति ब्रह्मचारी होता है।

अपेतव्रतकर्मा तु केवलं ब्रह्मणि स्थितः।
ब्रह्मभूतश्चरंल्लोके ब्रह्मचारी भवत्ययम्।। आश्व 26/16

जो व्यक्ति व्रतों और कर्मों का त्याग करके केवल ब्रह्म का चिन्तन करता रहता है और ब्रह्मस्वरूप होकर संसार में विचरता है वही ब्रह्मचारी है।

ब्रह्मज्ञानी

धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्।। आदि 174/45

क्षत्रिय बल को धिक्कार है। वास्तविक बल तो ब्रह्मतेज से उत्पन्न बल है।

प्रच्छन्ना हि महात्मानश्चरन्ति पृथिवीमिमाम्।
दैवेन विधिना युक्ताः शास्त्रोक्तैश्च निरूपणैः।। वन 71/31

बहुत से महात्मा गुप्तरूप धारण करके दैवीय विधि और शास्त्रोक्त नियमों का पालन करते हुए पृथिवी पर घूमते रहते हैं।

येन पूर्णमिवाकाशं भवत्येकेन सर्वदा।
शून्यं येन जनाकीर्णं तं देवा ब्राह्मणं विदुः।। शान्ति 245/11

जो अपने सर्वव्यापी स्वरूप से स्थित होने के कारण अकेले ही सारे आकाश में परिपूर्ण सा हो रहा है तथा जो असंग होने के कारण लोगों से भरे हुए स्थान को भी सूना समझता है उसे देवता या श्रेष्ठ पुरुष ब्रह्मज्ञानी मानते है।

येन केनचिदाच्छन्नो येन केनचिदाशितः।
यत्र क्वचनशायी च तं देवा ब्राह्मणं विदुः।। शान्ति 245/12

जो किसी भी वस्तु (वस्त्र, वल्कल आदि) से अपना तन ढक लेता है। जो रूखा-सूखा कुछ भी खा लेता है और जहाँ कहीं सो जाता है उसे श्रेष्ठ पुरुष ब्रह्मज्ञानी समझते हैं।

अहेरिव गणाद् भीतः सौहित्यान्नरकादिव।
कुणपादिव च स्त्रीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः।। शान्ति 245/13

जो जनसमुदाय को साँप जैसा समझकर उसके पास जाने से डरता है। स्वादिष्ट भोजन को नरक जैसा मानता है और स्त्रियों को मुर्दे के समान समझकर उनकी ओर से विरक्त रहता है उसे श्रेष्ठ पुरुष ब्रह्मज्ञानी कहते हैं।

न क्रुद्ध्येन्न प्रहृष्येच्च मानितोऽमानितश्च यः।
सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मण विदुः।। शान्ति 245/14

जो सम्मान पाकर प्रसन्न और अपमानित होकर नाराज नहीं होता और सभी प्राणियों को अभय दान देता है उसे सज्जन ब्रह्मज्ञानी मानते हैं।

विमुक्तं सर्वसङ्गेभ्यो मुनिमाकाशवत् स्थितम्।
अस्वमेकचरं शान्तं तं देवा ब्राह्मणं विदुः।। शान्ति 245/22

जो सब तरह की आसक्तियों और सम्बन्धों को त्याग कर मुनि की तरह रहता है। आकाश की तरह निर्लेप और स्थिर है। जो किसी भी वस्तु को अपनी नहीं मानता। अकेला शान्त भाव से रहता है उसे देवता ब्रह्मज्ञानी कहते हैं।

जीवितं यस्य धर्मार्थं धर्मो हर्यर्थमेव च।
अहोरात्राश्च पुण्यार्थं तं देवा ब्राह्मणं विदुः।। शान्ति 245/23

जिसका जीवन धर्म के लिये है और धर्म श्रीहरि के लिये होता है। जिसके दिन-रात भला करने में बीतते हैं उसे श्रेष्ठ पुरुष ब्रह्मज्ञानी कहते हैं।

निराशिषमनारम्भं निर्नमस्कारमस्तुतिम्।
निर्मुक्तं बन्धनैः सर्वैस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः।। शान्ति 245/24

जो सभी कामनाओं से रहित और सब तरह के कार्यों से अलग है। जो नमस्कार, स्तुति और सभी बन्धनों से मुक्त है उसे देवता ब्रह्मज्ञानी कहते हैं।

प्रादेशमात्रे हृदि निःसृतं यत् तस्मिन् प्राणानात्मयाजी जुहोति।
तस्याग्निहोत्रं हुतमात्मसंस्थं सर्वेषु लोकेषु सदेवकेषु।।

शा० 245/28

आत्मयज्ञ करने वाला ज्ञानी पुरुष नाभि से लेकर हृदय तक का जो प्रादेशमात्र स्थान है उसमें प्रकट हुई चैतन्य ज्योति में समस्त प्राणों की अर्थात् इन्द्रिय, मन आदि

की आहुति देता है अर्थात् अपने प्राण आदि को आत्मा में लीन कर देता है। उसका प्राणाग्नि होत्र यद्यपि अपने शरीर में ही होता है फिर भी ब्रह्मज्ञानी सर्वात्मा होने के कारण उसका यह यज्ञ देवताओं सहित सम्पूर्ण लोकों में सम्पन्न हो जाता है अर्थात् उसके प्राणों की तृप्ति से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्राण तृप्त होते हैं।

अगर्हणीय न च गर्हतेऽन्यान् स वै विप्रः परमात्मनमीक्षेत्।
विनीतमोहो व्यपनीतकल्मषो न चेह नामुत्र च सोऽऽन्नमृच्छति।।
शा० 245/35

जो न तो स्वयं निन्दनीय है और न ही दूसरों की निन्दा करता है। ऐसा ब्रह्मज्ञानी ही परमात्मा को साक्षात् करता है। जिसके मोह और पाप नष्ट हो गये हैं वह इस लोक के और परलोक के भोगों में आसक्त नहीं होता।

ज्ञातिवत् सर्वभूतानां सर्ववित् सर्ववेदवित्।
नाकामो म्रियते जातु न तेन न च वै द्विजः।। शान्ति 251/3

जो समस्त प्राणियों को अपने परिवार का सदस्य मानता है। जानने योग्य तत्त्व को जानता है। वेदों का विद्वान है और कामनारहित है। ऐसा ज्ञानी जन्म-मरण के बन्धन से सदा के लिये मुक्त हो जाता है। इन लक्षणों वाला पुरुष ब्राह्मण नहीं है ऐसी बात नहीं है अपितु वही सच्चा ब्राह्मण है।

यदा चायं न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति। शा० 326/33
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा।। शान्ति 251/5

जब वह दूसरे प्राणियों से नहीं डरता और अन्य प्राणी भी उससे नहीं डरते। जब वह इच्छा और द्वेष का त्याग कर देता है तब उसे ब्रह्मभाव की प्राप्ति हो जाती है।

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम्। शान्ति 326/34
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा।। शान्ति 251/6

जब वह मन,वचन और कर्म से किसी भी प्राणी की बुराई करने का विचार अपने मन में नहीं लाता तब वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है।

कामबन्धनमेवैकं नान्यदस्तीह बन्धनम्।
कामबन्धनमुक्तो हि ब्रह्मभूयाय कल्पते।। शान्ति 251/7

इस संसार में कामनाएँ ही एकमात्र बन्धन का कारण हैं इनके सिवाय कोई

दूसरा बन्धन नहीं है। कामनाओं के बन्धन से छूट कर मनुष्य ब्रह्मभाव को प्राप्त कर लेता है।

कामतो मुच्यमानस्तु धूम्राभ्रादिव चन्द्रमाः।
विरजाः कालमाकाङ्क्षन् धीरो धैर्येण वर्तते।। शान्ति 251/8

कामनाओं से मुक्त हुआ और रजोगुण से रहित धीर पुरुष काले बादल में से निकले हुए चन्द्रमा की भाँति निर्मल होक़र धैर्यपूर्वक काल की प्रतीक्षा करता है।

स कामकान्तो न हि कामकामः।
स वै कामात् स्वर्गमुपैति देही।। शान्ति 251/10

ऐसे पुरुष के पास ही भोग आना चाहते हैं परन्तु वह भोगों की कामना नहीं करता। काम भोग चाहने वाला पुरुष स्वर्ग में जाता है।

वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषद् दानं दानस्योपनिषत् तपः।। शान्ति 251/11

वेदों का सार है सत्यवचन। सत्य का सार है इन्द्रिय संयम। इन्द्रिय संयम का सार है दान और दान का सार है तपस्या।

तपसोपनिषत् त्यागस्त्यागस्योपनिषत् सुखम्।
सुखस्योपनिषत् स्वर्गः स्वर्गस्योपनिषच्छमः।। शान्ति 251/12

तपस्या का सार है त्याग। त्याग का सार है सुख। सुख का सार है स्वर्ग और स्वर्ग का सार है शान्ति।

क्लेदनं शोकमनसो संतापं तृष्णाया सह।
सत्त्वमिच्छसि संतोषाच्छान्तिलक्षणमुत्तमम्।। शान्ति 251/13

मनुष्य को सन्तोष से रहकर, शान्ति के उत्तम उपाय सत्त्व गुण को अपनाने की इच्छा करनी चाहिये। सत्त्वगुण मन की तृष्णा, शोक और संकल्पों को उसी तरह जला देता है जैसे गरम पानी चावल को गला देता है।

विशोको निर्ममः शान्तः प्रसन्नात्मा विमत्सरः।
षड्भिर्लक्षणवानेतैः समग्रः पुनरेष्यति।। शान्ति 251/14

शोकरहित, ममतारहित, शान्त, प्रसन्नचित्त, ईर्ष्यारहित और सन्तोषयुक्त इन छह लक्षणों वाला मनुष्य ज्ञान से पूरी तरह तृप्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

षड्भिः सत्त्वगुणोपेतैः प्राज्ञैरधिगतं त्रिभिः।
ये विदुः प्रेत्य चात्मानमिहस्थं तं गुणं विदुः।। शान्ति 251/15

जो व्यक्ति अपनी देह के अभिमान से मुक्त होकर सत्त्वगुण प्रधान सत्य, दम, दान, तप, त्याग और शम इन छह गुणों तथा श्रवण, मनन और निदिध्यासन इन तीन साधनों से प्राप्त होने वाले आत्मा को इस शरीर के रहते हुए ही जान लेते हैं वे देह छोड़ने के बाद परमशान्ति प्राप्त करते हैं।

अकृत्रिममसंहार्यं प्राकृतं निरुपस्कृतम्।
अध्यात्मं सुकृतं प्राप्तः सुखमव्ययमश्नुते।। शान्ति 251/16

जो जन्म-मरण से रहित, स्वभावसिद्ध, संस्कारशून्य तथा हमारे शरीर के अन्दर विराजमान सुकृत नाम से प्रसिद्ध ब्रह्म को पा लेता है वह अक्षय सुख प्राप्त करता है।

निष्प्रचारं मनः कृत्वा प्रतिष्ठाप्य च सर्वशः।
यामयं लभते तुष्टिं सा न शक्याऽऽत्मनोऽन्यथा।। शान्ति 251/17

अपने मन को इधर-उधर भटकने से रोककर आत्मा में पूरी तरह लगा देने पर पुरुष को जिस सन्तोष और सुख की प्राप्ति होती है वह किसी और उपाय से नहीं मिल सकता।

येन तृप्यत्यभुञ्जानो येन तृप्यत्यवित्तवान्।
येनास्नेहो बलं धत्ते यस्तं वेद स वेदवित्।। शान्ति 251/18

भोजन के बिना भी मनुष्य जिससे तृप्त हो जाता है। जिससे निर्धन भी सन्तुष्ट रहता है और जिसका सहारा मिलने पर घी आदि खाये बिना भी मनुष्य बल का अनुभव करता है उस ब्रह्म को जो जानता है वही ब्रह्मज्ञानी है।

संगुप्तान्यात्मनो द्वाराण्यपिधाय विचिन्तयन्।
यो ह्यास्ते ब्राह्मणः शिष्टः स आत्मरतिरुच्यते।। शान्ति 251/19

जो अपनी इन्द्रियों के द्वारों को अच्छी तरह बन्द करके नित्य ब्रह्म का चिन्तन करता रहता है। वही श्रेष्ठ ब्राह्मण आत्माराम कहलाता है।

समाहितं परे तत्त्वे क्षीणकाममवस्थितम्।
सर्वतः सुखमन्वेति वपुश्चान्द्रमसं यथा।। शान्ति 251/20

जो अपनी कामनाओं को नष्ट करके परम तत्त्व परमात्मा का एकाग्र मन से

चिन्तन करता है उसका सुख शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति निरन्तर सब ओर से बढ़ता रहता है।

अविशेषाणि भूतानि गुणांश्च जहतो मुनेः।
सुखेनापोह्यते दुःखं भास्करेण तमो यथा।। शा० 251/21

जो सम्पूर्ण भूतों और गुणों का त्याग कर देता है। ऐसे मननशील व्यक्ति का दुःख उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे सूर्य से अन्धकार।

तमतिक्रान्तकर्माणमतिक्रान्तगुणाक्षयम्।
ब्राह्मणं विषयाश्लिष्टं जरामृत्यू न विन्दतः।। शान्ति 251/22

सकाम कर्मों और गुणों के भोगों का त्याग करके विषयों की वासना से रहित हुए ब्रह्मज्ञानी पुरुष को बुढ़ापा और मृत्यु नहीं सताती है।

स यदा सर्वतो मुक्तः समः पर्यवतिष्ठते।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च शरीरस्थोऽतिवर्तते।। शा० 251/23

जब मनुष्य सारे बन्धनों से छूटकर समता में स्थित हो जाता है तब वह इस शरीर में रहकर भी इन्द्रियों और उनके विषयों की पहुँच से बाहर हो जाता है।

कारणं परमं प्राप्य अतिक्रान्तस्य कार्यताम्।
पुनरावर्तनं नास्ति सम्प्राप्तस्य परं पदम्।। शान्ति 251/24

इस प्रकार जो मनुष्य परम (अन्तिम-चरम) कारण स्वरूप ब्रह्म को पाकर कार्यरूप प्रकृति की सीमा को लांघ जाता है ऐसा ज्ञानी पुरुष परम पद को पा लेता है। उसे फिर इस संसार में लौटना नहीं होता।

आनृशंस्यं क्षमा शान्तिरहिंसा सत्यमार्जवम्।
अद्रोहोऽनभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा शमस्तथा।। शान्ति 270/39
पन्थानो ब्रह्मणस्त्वेते एतैः प्राप्नोति यत्परम्।। शान्ति 270/40

सभी प्राणियों पर दया, क्षमा, शान्ति, अहिंसा, सत्य, सरल व्यवहार, अद्रोह, अभिमान न करना, लज्जा, तितिक्षा और शम- ये परब्रह्म की प्राप्ति के मार्ग हैं। इनसे पुरुष परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

वेदांश्च वेदितव्यं च विदित्वा च यथास्थितिम्।
एवं वेदविदित्याहुरतोऽन्यो वातरेचकः।। शान्ति 270/42

जो वेदों को और उनके द्वारा जानने योग्य परब्रह्म को ठीक तरह से जानता है

उसी को वेदों का जानकार कहते हैं। उससे भिन्न जो लोग हैं वे मुँह से वेद नहीं पढ़ते अपितु धौंकनी की तरह मुँह से हवा छोड़ते हैं।

सर्वं विदुर्वेदविदो वेदे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
वेदे हि निष्ठा सर्वस्य यद् यदस्ति च नास्ति च।। शा० 270/43

वेदज्ञानी पुरुष सभी विषयों को जानते हैं। क्योंकि वेद में सब कुछ प्रतिष्ठित है। जो वस्तु है और जो नहीं है उन सबकी स्थिति वेद में बतायी गयी है।

एतदन्तं च मध्यं च सच्चासच्च विजानतः।। शान्ति 270/44

ज्ञानी पुरुष की दृष्टि में सत्-असत् स्वरूप ब्रह्म ही इस जगत् का आदि, मध्य और अन्त है।

न वृत्तं मन्यते तस्य मन्यते न च पातकम्।
तथा स्वकर्म निर्वृत्तं न पुण्यं न च पापकम्।। अनु 120/24

ब्रह्मज्ञानी पुरुष में कर्तापन का अभिमान नहीं होता इसलिये उसके कर्मों को न तो पुण्य माना जाता है और न ही पाप। उसे अपने कर्मों से पुण्य या पाप नहीं मिलता।

एकधा बहुधा चैव विकुर्वाणस्ततस्ततः।। आश्व 42/60
ध्रुवं पश्यति रूपाणि दीपाद् दीपशतं यथा।

जैसे एक दीप से सैंकड़ों दीप जला लिये जाते हैं वैसे ही एक ही परमात्मा अनेक रूपों में दीखता है यह समझकर ज्ञानी पुरुष निस्सन्देह सब रूपों को एक ही परमात्मा से उत्पन्न देखता है।

ब्रह्मविद्या

नैतद् ब्रह्म त्वरमाणेन लभ्यं यन्मां पृच्छन्नतिहृष्यतीव।
बुद्धौ विलीने मनसि प्रचिन्त्या विद्या हि सा ब्रह्मचर्येण लभ्या।।

उद्योग 44/2

धृतराष्ट्र! तुम मुझसे बार-बार प्रश्न करके प्रसन्न हो जाते हो किन्तु ऐसी जल्दबाजी से ब्रह्मतत्त्व को कोई नहीं पा सकता। मन के बुद्धि में विलीन हो जाने पर मन की सभी वृत्तियों के निरोध की स्थिति ही ब्रह्मविद्या है। यह विद्या ब्रह्मचर्य पालन से प्राप्त होती है।

अव्यक्तविद्यामभिधास्ये पुराणीं बुद्ध्या च तेषां ब्रह्मचर्येण सिद्धाम्।
यां प्राप्यैनां मर्त्यलोकं त्यजन्ति या वै विद्या गुरुवृद्धेषु नित्या।।

उद्योग 44/4

अव्यक्त ब्रह्म से सम्बद्ध प्राचीन ब्रह्मविद्या को मैं बताता हूँ। यह बुद्धि और ब्रह्मचर्य पालन से मिलती है। इस विद्या को प्राप्त कर मनुष्य इस मरणधर्मा शरीर को सदा के लिये छोड़ देता है। यह विद्या ज्ञान से वृद्ध गुरुओं के पास सदा रहती है।

अस्मिँल्लोके वै जयन्तीह कामान् ब्राह्मी स्थितिं ह्यनुतितिक्षमाणाः।
त आत्मानं निर्हरन्तीह देहान्मुञ्जादिषीकामिव सत्त्वसंस्थाः।।

उद्योग 44/7

जो इस जगत् में सभी कामनाओं को जीत लेते हैं और ब्राह्मी स्थिति पाने के लिये सुख-दुःख, गर्मी-सर्दी आदि द्वन्द्वों को सहन करते हैं। वे सत्त्वगुण में स्थित होकर इस देह के अन्दर बैठे आत्मतत्त्व का प्रयत्न पूर्वक वैसे ही साक्षात् कर लेते हैं जैसे प्रयत्न करके मूंज में से सींक निकाली जाती है।

कालेन पादं तथार्थं ततश्च पादं गुरुयोगतश्च।
उत्साहयोगेन च पादमृच्छेच्छास्त्रेण पादं च ततोऽभियाति।। उद्योग 44/16

इस ब्रह्मविद्या का कुछ भाग समय बीतने के साथ अनुभव से मिलता है, कुछ अंश गुरु की कृपा से। कुछ विद्या अपने उत्साह से प्राप्त करनी पड़ती है और इस विद्या का शेष भाग शास्त्र चर्चा से मिलता है।

सा प्रतिष्ठा तदमृतं लोकास्तद् ब्रह्म तद् यशः।
भूतानि जज्ञिरे तस्मात् प्रलयं यान्ति तत्र हि।। उद्योग 44/30

वही सबका आधार है, वही अमृतरूप है, वही लोक, वही यश और ब्रह्म है। समस्त प्राणी उसी से उत्पन्न होते हैं और उसी में विलीन हो जाते हैं।

एष एकायनः पन्था येन यान्ति मनीषिणः।
तं दृष्ट्वा मृत्युमत्येति महांस्तत्र न सज्जति।। उद्योग 69/15

यह ज्ञानमार्ग परमात्मा की प्राप्ति कराने वाला एकमात्र मार्ग है जिस पर ज्ञानी पुरुष चलते हैं। यह मार्ग देखकर मनुष्य मृत्यु के पार हो जाता हैं। महात्मा इस संसार में नहीं फंसते।

इन्द्रियाणामुदीर्णानां कामत्यागोऽप्रमादतः।
अप्रमादोऽविहिंसा च ज्ञानयोनिरसंशयम्।। उद्योग 69/18

विषयों की ओर दौड़ने वाली इन्द्रियों की भोगेच्छाओं को सावधानी से छोड़ देना, प्रमाद और हिंसा न करना इनसे निश्चय ही तत्त्वज्ञान होता है।

एतज्ज्ञानं विदुर्विप्रा ध्रुवमिन्द्रियधारणम्।
एतज्ज्ञानं च पन्थाश्च येन यान्ति मनीषिणः।। उद्योग 69/20

इन्द्रियों को दृढ़ता से संयम में रखना चाहिये। विद्वान् ब्राह्मण इसी को ज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान ही वह रास्ता है जिसपर मनीषी पुरुष चलते हैं।

आगमाधिगमाद् योगाद् वशी तत्त्वे प्रसीदति।। उद्योग 69/21

शास्त्रज्ञान से और योग साधना से मन तथा इन्द्रियों को वश में करने से तत्त्वज्ञान मिल सकता है।

यदा चायं न विभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा।। शान्ति 26/14

जब मनुष्य किसी से नहीं डरता और उस व्यक्ति से भी कोई नहीं डरता। जब उसके मन में कोई इच्छा या द्वेष भी नहीं बचा रहता तब वह ब्रह्मभाव को प्राप्त कर लेता है।

यदा न भावं कुरुते सर्वभूतेषु पापकम्।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा।। शान्ति 26/15

जब व्यक्ति अपने कर्मों से, मन से और अपनी वाणी से सभी प्राणियों के प्रति कोई पाप नहीं करता तब वह परब्रह्म परमात्मा को पा लेता है।

विनीतमानमोहश्च बहुसङ्गविवर्जितः।
तदाऽऽत्मज्योतिषः साधोर्निर्वाणमुपपद्यते।। शान्ति 26/16

जिस व्यक्ति का अहंकार और मोह दूर हो गया है। जो तरह तरह के प्रलोभनों और आकर्षणों से प्रभावित नहीं होता और जिसे आत्मा का ज्ञान प्राप्त हो गया है ऐसे साधु पुरुष को मोक्ष प्राप्त होता है।

कामात्मकाश्छन्दसि कर्मयोगा एभिर्विमुक्तः परमश्नुवीत।
नानाविधे कर्मपथे सुखार्थी नरः प्रवृत्तो न परं प्रयाति।।

शान्ति 201/12

वेदों में यज्ञकर्म आदि जो अनुष्ठान बताये गये हैं वे सकाम कर्म वाले हैं। जो कामनाओं से मुक्त हो पाता है वह परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। सुख पाने की इच्छा से अनेक प्रकार के कामों में लगा हुआ पुरुष परमात्मा को नहीं पा सकता।

एभिर्विमुक्तः परमाविवेश एतत् कृते कर्म विधिः प्रवृत्तः।। शा० 201/13

मनुष्य इन कामनाओं से छूट कर परमात्मा को प्राप्त करे इसी उद्देश्य से कर्मों का विधान किया गया है। अर्थात् मनुष्य निष्काम कर्म करे।

आत्मादिभिः कर्मभिरिन्ध्यमानो धर्मे प्रवृत्तो द्युतिमान् सुखार्थी।
परं हि तत् कर्मपथादपेतं निराशिषं ब्रह्मपरं ह्यवैति।। शान्ति 201/14

जब हमारा मन सत्कर्म करके राग-द्वेष आदि दोषों को दूर कर देता है और निर्मल होकर चमकने लगता है तब ऐसा द्युतिमान अर्थात् सत् और असत् के विवेक से युक्त और परम सुख को चाहने वाला (मुमुक्षु मन) मन धर्म मार्ग पर चलने लगता है। सकाम कर्मों के मार्ग से परे और सभी प्रकार की कामनाओं से रहित ऐसा मन परब्रह्म को पा लेता है।

प्रजाः सृष्टा मनसा कर्मणा च द्वावेवैतौ सत्यपथौ लोकजुष्टौ।
दृष्टं कर्म शाश्वतं चान्तवच्च मनस्त्यागः कारणं नान्यदस्ति।।

शान्ति 201/15

प्रभु ने मन और कर्म सहित प्राणियों को बनाया है। मन और कर्म से किये जाने वाले अच्छे कामों को लोग करते हैं। ये कार्य शाश्वत (सदा रहने वाले-सनातन) और नष्ट हो जाने वाले दो तरह के होते हैं। नाश होने वाले भोगों को दिलाने वाले कर्म नष्ट हो जाते हैं। किन्तु मोक्ष प्राप्ति के लिये किये जाने वाले कर्म नष्ट नहीं होते। मन के द्वारा कर्मफल की इच्छा का त्याग ही कर्मों को सनातन बनाने और परब्रह्म को प्राप्त करने का एकमात्र कारण है और कोई नहीं।

स्वेनात्मना चक्षुरिव प्रणेता निशात्यये तमसा संवृतात्मा।
ज्ञानं तु विज्ञानगुणेन युक्तं कर्माशुभं पश्यति वर्जनीयम्।। शान्ति 201/16

रात बीतने पर और अन्धेरा दूर हो जाने पर जैसे आँख रास्ते के कांटें आदि को देख लेती है वैसे ही मोह का परदा हट जाने पर ज्ञान के प्रकाश से युक्त बुद्धि त्यागने योग्य अशुभ कर्म को देखती है।

यद् यच्छरीरेण करोति कर्म शरीरयुक्तः समुपाश्नुते तत्।
शरीरमेवायतनं सुखस्य दुःखस्य चाप्यायतनं शरीरम्।। शान्ति 201/21

जीव अपने शरीर से जो कर्म करता है उनका फल उसे शरीर में ही मिलता है। क्योंकि शरीर ही सुख और दुःख भोगने का स्थान है।

वाचा तु यत् कर्म करोति किंचिद् वाचैव सर्वं समुपाश्नुते तत्।
मनस्तु यत् कर्म करोति किंचिन्मनःस्थ एवायमुपाश्नुते तत्।।

शा० 201/22

मनुष्य अपनी वाणी से जो कर्म करता है उसका फल वह वाणी से ही भोगता है। मन से वह जो कर्म करता है उसका फल जीवात्मा मन के साथ संयुक्त हुआ मन से ही भोगता है।

यथा यथा कर्मगुणं फलार्थी करोत्ययं कर्मफले निविष्टः।
तथा तथायं गुणसम्प्रयुक्तः शुभाशुभं कर्मफलं भुनक्ति।।

शान्ति 201/23

कर्मफल की इच्छा वाला मनुष्य जिस गुण वाला अर्थात् सात्त्विक, राजसिक, या तामसिक गुण वाला कर्म करता है वैसे-वैसे ही गुणों से प्रेरित होकर उसे अपने कर्म का अच्छा या बुरा फल भुगतना पड़ता है।

मत्स्यो यथास्त्रोत इवाभिपाती तथा कृतं पूर्वमुपैति कर्म।
शुभे त्वसौ तुष्यति दुष्कृते तु न तुष्यति वै परमः शरीरी।। शा० 201/24

जैसे मछली पानी के बहाव के साथ बह जाती है वैसे ही मनुष्य का पहिले किया हुआ कर्म उसका पीछा करता है। मनुष्य को कर्म प्रवाह में बहना पड़ता है। देहधारी जीव अच्छा फल मिलने पर प्रसन्न होता है और बुरा फल मिलने पर दुखी।

निवर्तयित्वा रसनां रसेभ्यो घ्राणं च गन्धाच्छ्रवणौ च शब्दात्।
स्पर्शात् त्वचं रूपगुणात् तु चक्षुस्ततः परं पश्यति स्वं स्वभावम्।।

शा० 202/5

जो मनुष्य जीभ को रसों से, नाक को गन्धों से, कानों को शब्द से, त्वचा को स्पर्श से और आँखों को रूप से हटाकर इन पाँचों इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बना लेता है वह अपने आधारस्वरूप परब्रह्म को देख लेता है।

यथा प्रदीप्तः पुरतः प्रदीपः प्रकाशमन्यस्य करोति दीप्यन्।
तथेह पञ्चेन्द्रियदीपवृक्षा ज्ञानप्रदीप्ताः परवन्त एव।।

शान्ति 202/9

जैसे जलता हुआ दीपक स्वयं प्रकाशित होकर पास की दूसरी चीजों को भी प्रकाशित कर देता है उसी प्रकार इस शरीररूपी वृक्ष की पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ चैतन्य के ज्ञान से प्रकाशित होकर सांसारिक विषयों का ज्ञान करा देती है किन्तु ये इन्द्रियाँ पराधीन ही हैं।

यथार्चिषोऽग्नेः पवनस्य वेगो मरीचयोऽर्कस्य नदीषु चापः।
गच्छन्ति चायान्ति च संचरन्त्यस्तद्वच्छरीराणि शरीरिणां तु।।

शा० 202/11

जैसे अग्नि की लपटें, वायु का वेग, सूर्य की किरणें और नदियों का जल आता-जाता रहता है वैसे ही देहधारियों के देह भी आते-जाते रहते हैं।

यथा च कश्चित् परशुं गृहीत्वा धूमं न पश्येज्ज्वलनं च काष्ठे।
तद्वच्छरीरोदरपाणिपादं छित्त्वा न पश्यन्ति ततो यदन्यत्।।

शा० 202/12

जैसे कोई मनुष्य कुल्हाड़े से लकड़ी को चीरे तो उसे लकड़ी में आग और धुआँ नहीं दीखेगा वैसे ही शरीर का पेट फाड़ने से या हाथ-पैर काटने से कोई उसे नहीं देख पाता, क्योंकि हमारे शरीर में रहने वाला आत्मा शरीर से भिन्न है।

तान्येव काष्ठानि यथा विमथ्य धूमं च पश्येज्ज्वलनं च योगात्।
तद्वत् सबुद्धिः सममिन्द्रियात्मा बुधःपरं पश्यति तं स्वभावम्।।

शा० 202/13

किन्तु उन्हीं लकड़ियों को रगड़ने से आग और धुआँ दीखने लगते हैं उसी प्रकार योग के द्वारा मन और इन्द्रियों को बुद्धि सहित एकाग्र कर लेने वाला बुद्धिमान पुरुष इस परमश्रेष्ठ ज्ञान और आत्मा को देख लेता है।

उत्पत्तिर्वृद्धिव्यय संनिपातैर्न युज्यतेऽसौ परमः शरीरी।
अनेन लिङ्गेन तु लिङ्गमन्यद् गच्छत्यदृष्टः फलसंनियोगात्।।

शान्ति 202/15

आत्मा, शरीर से भिन्न होने के कारण शरीर के जन्म, वृद्धि, और नाश से प्रभावित नहीं होता। किन्तु अज्ञानी मनुष्य के पूर्वजन्म के कर्मों के फल के कारण आत्मा सूक्ष्म शरीर के साथ दूसरे शरीर में चल जाता है।

यथा समीपे ज्वलतोऽनलस्य संतापजं रूपमुपैति कश्चित्।
न चान्तरं रूपगुणं बिभर्ति तथैव तद् दृश्यति रूपमस्य।।

शा० 202/17

जैसे पास में जलती हुई आग की गर्मी से लोहा लाल हो जाता है और गर्म हो जाता है वैसे ही आत्मा का चैतन्यस्वरूप शरीर की इन्द्रियों आदि में दिखाई देता है किन्तु शरीर और इन्द्रियाँ वास्तव में चेतन नहीं हैं। हमारा शरीर और इन्द्रियाँ लोहे की तरह आत्मा के वास्तविक स्वरूप को धारण नहीं कर पाते।

तथा मनुष्यः परिमुच्य कायमदृश्यमन्यद् विशते शरीरम्।
विसृज्य भूतेषु महत्सु देहं तदाश्रयं चैव बिभर्ति रूपम्।। शा० 202/18

इसी प्रकार मनुष्य अपना शरीर छोड़कर जब दूसरे अदृश्य शरीर में जाता है तब वह पुराने स्थूल शरीर को पंचभूतों में मिल जाने के लिये छोड़कर दूसरे शरीर का आश्रय लेकर उसी को अपना मानकर धारण कर लेता है।

महत्सु भूतेषु वसन्ति पञ्च पञ्चेन्द्रियार्थाश्च तथेन्द्रियाणि।
सर्वाणि चैतानि मनोऽनुगानि बुद्धिं मनोऽन्वेति मतिः स्वभावम्।।

शा० 202/21

पाँचों इन्द्रियों सहित पाँचों विषय, पाँच सूक्ष्म महाभूतों में रहते हैं। शब्द-स्पर्श आदि ये विषय, आकाश, आदि महाभूत तथा कान, आँख आदि इन्द्रियाँ ये सब मन के पीछे चलते हैं। मन, बुद्धि के पीछे चलता है और बुद्धि आत्मा के सहारे रहती है।

यदिन्द्रियैस्तूपहितं पुरस्तात् प्राप्तान् गुणान् संस्मरते चिराय।
तेष्विन्द्रियेषूपहतेषु पश्चात् स बुद्धिरूपः परमः स्वभावः।।

शान्ति 203/1

बुद्धि के साथ मिला जो जीव नाम का चेतन तत्त्व है वह इन्द्रियों द्वारा बहुत पहले भोगे हुए विषयों को बाद में भी याद रखता है। यद्यपि भोगे हुए विषयों का इन्द्रियों से सम्बन्ध नहीं रहता तो भी उन विषयों के संस्कार बुद्धि में रहते हैं इसलिये वे याद रहते हैं। चेतन जीव; जड़ बुद्धि को चेतन जैसा बना देता है इसलिये बुद्धि के अतिरिक्त चेतन जीव की सत्ता अपने आप सिद्ध हो जाती है।

श्रोत्रादीनि न पश्यन्ति स्वं स्वमात्मानमात्मना।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च सर्वज्ञस्तानि पश्यति।। शान्ति 203/5

कान आदि इन्द्रियाँ स्वयं अपने द्वारा अपने को नहीं जान सकतीं। आत्मा सर्वज्ञ है और सब कुछ देखता है। सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होने के कारण आत्मा; इन्द्रियों आदि को जानता और देखता है।

यथा व्यक्तमिदं शेते स्वप्ने चरति चेतनम्।
ज्ञानमिन्द्रियसंयुक्तं तद्वत् प्रेत्य भवाभवौ।। शान्ति 204/1

स्वप्नावस्था में यह स्थूल शरीर तो सोया रहता है किन्तु सूक्ष्म शरीर विचरण करता रहता है। वैसे ही इस शरीर को छोड़ने के बाद ज्ञानस्वरूप जीवात्मा या तो फिर शरीर ग्रहण कर लेता है या मुक्त हो जाता है।

यथाम्भसि प्रसन्ने तु रूपं पश्यति चक्षुषा।
तद्वत्प्रसन्नेन्द्रियत्वाज्ज्ञेयं ज्ञानेन पश्यति।। शान्ति 204/2

जैसे मनुष्य साफ और ठहरे हुए पानी में अपनी परछांई देखता है वैसे ही मन सहित इन्द्रियों के शुद्ध हो जाने पर मनुष्य जानने योग्य आत्मा का ज्ञान की दृष्टि से साक्षात् करता है।

अबुद्धिरज्ञानकृता अबुद्ध्या कृष्यते मनः।
दुष्टस्य मनसः पञ्च सम्प्रदुष्यन्ति मानसाः।। शान्ति 204/4

अविवेक से बुद्ध भ्रष्ट हो जाती है। बुद्धि भ्रष्ट होने पर मन राग-द्वेष में फंस जाता है। मन के दूषित होने पर मन के अधीन रहने वाली आँख, कान आदि पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ भी दूषित हो जाती हैं।

अज्ञानतृप्तो विषयेष्ववगाढो न तृप्यते।
अदृष्टवच्च भूतात्मा विषयेभ्यो निवर्तते।। शान्ति 204/5

जिस मनुष्य को अज्ञान से ही तृप्ति हो रही है वह विषयों में डूब कर भी तृप्त नहीं होता। प्रारब्ध के वश में पड़ जीवात्मा विषय भोगों की इच्छा के कारण बार-बार जन्म लेता है।

तर्षच्छेदो न भवति पुरुषस्येह कल्मषात्।
निवर्तते तदा तर्षः पापमन्तगतं यदा।। शान्ति 204/6

पाप के कारण ही संसार में पुरुष की तृष्णा की समाप्ति नहीं होती। पापों का अन्त हो जाने पर तृष्णा का भी अन्त हो जाता है।

विषयेषु तु संसर्गाच्छाश्वतस्य तु संश्रयात्।
मनसा चान्यथा काङ्क्षन् परं न प्रतिपद्यते।। शा० 204/7

विषयों के संसर्ग से तथा विषयों में ही सदैव लिप्त रहने से और मन से भी विषय भोगों की इच्छा करते रहने से परमात्मा प्राप्त नहीं होते।

ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः।
यथाऽऽदर्शतले प्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि।। शान्ति 204/8

पाप-कर्मों के नष्ट होने पर मनुष्यों के हृदयों में ज्ञान का उसी प्रकार उदय होता है जैसे मनुष्य साफ शीशे में अपना मुख देखता है।

प्रसृतैरिन्द्रियैर्दुःखी तैरेव नियतैः सुखी।
तस्मादिन्द्रियरूपेभ्यो यच्छेदात्मानमात्मना।। शान्ति 204/9

इन्द्रियों के विषयों की ओर लगे रहने से मनुष्य दुखी होता है। इन्द्रियों को वश में रखने से वह सुखी रहता है। अतः इन्द्रियों के विषयों से अपने मन को बुद्धि के द्वारा रोकना चाहिये।

इन्द्रियेभ्यो मनः पूर्वं बुद्धि परतरा ततः।
बुद्धेः परतरं ज्ञानं ज्ञानात् परतरं महत्।। शा० 204/10

इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ है। मन से भी श्रेष्ठ बुद्धि है। बुद्धि से ज्ञान श्रेष्ठ है और ज्ञान से भी परम श्रेष्ठ परमात्मा है।

अव्यक्तात् प्रसृतं ज्ञानं ततो बुद्धिस्ततो मनः।
मनः श्रोत्रादिभिर्युक्तं शब्दादीन् साधु पश्यति।। शान्ति 204/11

अव्यक्त परमात्मा से ज्ञान प्रकट हुआ है। ज्ञान से बुद्धि और बुद्धि से मन प्रकट हुआ है। मन; आँख, कान आदि इन्द्रियों से मिलकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के विषयों का भली-भाँति अनुभव करता है।

यस्तांस्त्यजति शब्दादीन् सर्वांश्च व्यक्तयस्तथा।
विमुञ्चेत् प्राकृतान्ग्रामांस्तान् मुक्त्वामृतमश्नुते।। शान्ति 204/12

जो मनुष्य शब्दादि विषयों को और दीखने वाले सभी सांसारिक पदार्थों को तथा प्रकृति के सत्त्व, रजस् और तमस् इन गुणों को छोड़ देता है। वह मनुष्य इन सांसारिक वस्तुओं को छोड़कर अमृतस्वरूप परमात्मा को पा लेता है।

उद्यन् हि सविता यद्वत्सृजते रश्मिमण्डलम्।
स एवास्तमपागच्छंस्तदेवात्मनि यच्छति।। शान्ति 204/13

अन्तरात्मा तथा देहमाविश्येन्द्रियरश्मिभिः।
प्राप्येन्द्रियगुणान् पञ्च सोऽस्तमावृत्यगच्छति।। शान्ति 204/14

जैसे सूर्य उदित होकर अपनी किरणें चारों ओर फैला देता है और अस्त होने पर किरणों को समेट लेता है वैसे ही जीवात्मा, देह में आकर इन्द्रियों की फैली हुई वृत्तिरूपी किरणों के द्वारा पाँचों विषयों को ग्रहण करता है और शरीर छोड़ते समय इन्हें समेट कर साथ ले जाता है।

बुद्धिः कर्मगुणैर्हीना यदा मनसि वर्तते।
तदा सम्पद्यते ब्रह्म तत्रैव प्रलयं गतम्।। शान्ति 204/17

जब बुद्धि कर्मों से उत्पन्न हुए सत्त्व, रजस् आदि गुणों से छूटकर हृदय में स्थित हो जाती है तब जीवात्मा, ब्रह्म में लीन होकर ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

अस्पर्शनमशृण्वानमनास्वादमदर्शनम् ।
अघ्राणमवितर्कं च सत्त्वं प्रविशते परम्।। शान्ति 204/18

परब्रह्म परमात्मा स्पर्श, श्रवण, स्वाद, दर्शन, गन्ध और संकल्प विकल्प से रहित है। इसलिये केवल विशुद्ध बुद्धि ही उस परमतत्त्व में प्रवेश कर सकती है।

मनस्याकृतयो मग्ना मनस्त्वभिगतं मतिम्।
मतिस्त्वभिगता ज्ञानं ज्ञानं चाभिगतं परम्।। शान्ति 204/19

मन में शब्दादि विषयरूपी सभी आकृतियाँ लीन हो जाती हैं। मन का बुद्धि में, बुद्धि का ज्ञान में और ज्ञान का परमात्मा में लय होता है।

नेन्द्रियैर्मनसः सिद्धिर्न बुद्धिं बुद्ध्यते मनः।
न बुद्धिर्बुद्ध्यतेऽव्यक्तं सूक्ष्मं त्वेतानि पश्यति।। शान्ति 204/20

इन्द्रियों से मन का ज्ञान नहीं हो पाता। मन, बुद्धि को नहीं जान सकता। बुद्धि, सूक्ष्म और अव्यक्त आत्मा को नहीं जान पाती, किन्तु अव्यक्त आत्मा; मन, बुद्धि और इन्द्रियों इन सभी को देखता और जानता है।

दुःखमर्था हि युज्यन्ते पालने न च ते सुखम्।
दुःखेन चाधिगम्यन्ते नाशमेषां न चिन्तयेत्।। शा० 205/8

विषय भोग पाने में दुःख उठाना पड़ता है। इन की रक्षा करने में भी सुख नहीं मिलता। भोग कठिनाई से मिलते हैं अतः इनके नष्ट हो जाने पर चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

ज्ञानं ज्ञेयाभिनिर्वृत्तं विद्धि ज्ञानगुणं मनः।
प्रज्ञाकरणसंयुक्तं ततो बुद्धिः प्रवर्तते।। शान्ति 205/9

ज्ञेय अर्थात् जानने योग्य परमात्मा से ज्ञान प्रकट होता है। ज्ञान से मन प्रकट होता है। मन के इन्द्रियों से मिलने पर बुद्धि कर्म करती है।

सेयं गुणवती बुद्धिर्गुणेष्वेवाभिवर्तते।
अपरादभिनिःसृत्य गिरेः शृङ्गादिवोदकम्।। शान्ति 205/11

जैसे जल की धारा पर्वत की चोटी से निकलकर ढलान की ओर बहती है वैसे ही सत्त्व, रजस् तथा तमस् गुणों वाली बुद्धि रूप, रस, आदि विषयों की ओर दौड़ती है।

यदा निर्गुणमाप्नोति ध्यानं मनसि पूर्वजम्।
तदा प्रज्ञायते ब्रह्म निकषं निकषे यथा।। शान्ति 205/12

जब साधक सभी के आदिकरण, निर्गुण तत्त्व को ध्यान लगाकर मन में प्राप्त कर लेता है तब कसौटी पर कसे हुए सोने की तरह उसे ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है।

मनस्त्वपहृतं पूर्वमिन्द्रियार्थनिदर्शकम्।
न समक्षगुणापेक्षि निर्गुणस्य निदर्शकम्।। शान्ति 205/13

इन्द्रियों के भोग विषयों को दिखाने वाला मन जब पहले से ही विषयों में फंसा रहता है तो विषयों को चाहने वाला मन निर्गुण तत्त्व का साक्षात् नहीं करा सकता।

सर्वाण्येतानि संवार्य द्वाराणि मनसि स्थितः।
मनस्येकाग्रतां कृत्वा तत्परं प्रतिपद्यते।। शान्ति 205/14

विषयों की द्वाररूपी सभी इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर मन में समेट लेना चाहिये। मन एकाग्र होने पर ब्रह्म का साक्षात् हो जाता है।

यथा महान्ति भूतानि निवर्तन्ते गुणक्षये।
तथेन्द्रियाण्युपादाय बुद्धिर्मनसि वर्तते।। शान्ति 205/15

गुणों का नाश हो जाने पर जैसे पंचमहाभूत निर्वृत्त हो जाते हैं वैसे ही इन्द्रियों को समेट कर बुद्धि अन्तःकरण में स्थित हो जाती है।

यदा मनसि सा बुद्धिवर्ततेऽन्तरचारिणी।
व्यवसायगुणोपेता तदा सम्पद्यते मनः।। शान्ति 205/16

जब निश्चयात्मिका बुद्धि अन्तर्मुखी होकर अन्तःकरण में ठहर जाती है तब मन विशुद्ध या निर्मल हो जाता है।

गुणवद्भिर्गुणोपेतं यदा ध्यानगुणं मनः।
तदा सर्वान् गुणान् हित्वा निर्गुणं प्रतिपद्यते।। शान्ति 205/17

शब्दादि गुणों से युक्त इन्द्रियों के सम्बन्ध से जब गुणों से युक्त मन ध्यान से

उत्पन्न गुणों वाला हो जाता है तब वह सारे गुणों को (शब्दादि को) त्याग करके निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

अव्यक्तस्येह विज्ञाने नास्ति तुल्यं निदर्शनम्।
यत्र नास्ति पदन्यासः कस्तं विषयमाप्नुयात्।। शान्ति 205/18

उस अव्यक्त ब्रह्म का बोध कराने के लिये इस जगत् में कोई दृष्यन्त नहीं है। जहाँ वाणी पहुँच ही नहीं सकती उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है।

तपसा चानुमानेन गुणैर्जात्या श्रुतेन च।
निनीषेत् परमं ब्रह्म विशुद्धेनान्तरात्मना।। शान्ति 205/19

इसलिये तप से, अनुमान से, शम-दम आदि गुणों से, जातिगत धर्मों के पालन करने से और स्वाध्याय से अन्तःकरण को शुद्ध करके निर्मल अन्तःकरण द्वारा पर ब्रह्म को पाने की इच्छा करनी चाहिये।

गुणहीनो हि तं मार्गं बहिः समनुवर्तते।
गुणाभावात् प्रकृत्या वा निस्तर्क्यं ज्ञेयसम्मितम्।। शा० 205/20

तपस्या आदि गुणों से रहित मनुष्य बाह्य मार्ग पर ही चलता है। ज्ञेय स्वरूप परमात्मा स्वभाव से ही गुणरहित या गुणातीत होने के कारण तर्क का विषय नहीं है।

नैर्गुण्याद् ब्रह्म चाप्नोति सगुणत्वान्निवर्तते।
गुणप्रचारिणी बुद्धिर्हुताशन इवेन्धने।। शान्ति 205/21

जैसे आग ईंधन में रहती है वैसे ही बुद्धि; शब्द-स्पर्श आदि गुणों में विचरती है। जब वह इन गुणों से अलग हो जाती है तब निर्गुण हो जाने के कारण ब्रह्म को प्राप्त कर लेती है। गुणों में फंसी रहने पर ब्रह्म को न पाकर लौट आती है।

यथा पञ्च विमुक्तानि इन्द्रियाणि स्वकर्मभिः।
तथा हि परमं ब्रह्म विमुक्तं प्रकृते परम्।। शान्ति 205/22

जैसे पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपने कार्य रूप शब्द आदि विषयों से भिन्न हैं वैसे ही परम ब्रह्म परमात्मा भी प्रकृति से सर्वथा परे है।

पुरुषः प्रकृतिर्बुद्धिविषयाश्चेन्द्रियाणि च।
अहंकारोऽभिमानश्च समूहो भूतसंज्ञकः।। शान्ति 205/24

पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, पाँच विषय, दस इन्द्रियाँ, अहंकार, मन और पाँच महाभूत इन पच्चीस तत्त्वों का समूह ही प्राणी है।

एतस्याद्या प्रवृत्तिस्तु प्रधानात् सम्प्रर्वते।
द्वितीया मिथुनव्यक्तिमविशेषान्नियच्छति।। शान्ति 205/25

बुद्धि आदि तत्त्वों की प्रथम उत्पत्ति प्रकृति से होती है। इसके बाद सामान्यतः मैथुन से इनकी नियमित उत्पत्ति होने लगती है।

धर्मादुत्कृष्यते श्रेयस्तथाश्रेयोऽप्यधर्मतः।
रागवान् प्रकृतिं ह्येति विरक्तो ज्ञानवान् भवेत्।। शा० 205/26

धर्म का पालन करने से श्रेय बढ़ता है। अधर्म करने से मनुष्य का कल्याण नहीं होता। विषयों में फंसा हुआ मनुष्य प्रकृति में अर्थात् संसार में रहता है। विरक्त मनुष्य आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है।

यदा तैः पञ्चभिः पञ्च युक्तानि मनसा सह।
अथ तद् रक्ष्यते ब्रह्म मणौ सूत्रमिवार्पितम्।। शा० 206/1

जब मनुष्य शब्द आदि पाँच विषयों सहित पाँचों इन्द्रियों और मन को वश में कर लेता है तब वह मनकों में ओतप्रोत तागे की तरह सर्वत्र व्याप्त परब्रह्म का साक्षात् कर लेता है।

तदेव च यथा सूत्रं सुवर्णे वर्तते पुनः।
मुक्तास्वथ प्रवालेषु मृन्मये राजते तथा।। शान्ति 206/2

तद्वत् गोऽश्वमनुष्येषु तद्वद्धस्ति मृगादिषु।
तद्वत् कीटपतङ्गेषु प्रसक्तात्मा स्वकर्मभिः।। शान्ति 206/3

जैसे वही तागा सोने की लड़ियों में, मोतियों में, मूंगों में, मिट्टी की माला और चाँदी की माला में ओतप्रोत होकर सुशोभित होता है वैसे ही एक ही परमात्मा; गाय, घोड़े, मनुष्य, हाथी, हरिण और कीड़े मकौड़ों के शरीरों में व्याप्त है। विषयों में फंसा हुआ मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न शरीर पाता है।

येन येन शरीरेण यद्यत्कर्म करोत्ययम्।
तेन तेन शरीरेण तत् तत् फलमुपाश्नुते।। शान्ति 206/4

मनुष्य जिस जिस शरीर से जो जो कर्म करता है वह उसी उसी शरीर से उसी उसी कर्म का फल भोगता है।

यथा ह्येकरसा भूमिरोषध्यर्थानुसारिणी।
तथा कर्मानुगा बुद्धिरन्तरात्मानुदर्शिनी।। शान्ति 206/5

यद्यपि भूमि में एक ही रस होता है किन्तु उसमें जैसा बीज बोया जाता है उसी के अनुसार भूमि उसमें वह रस पैदा करती है। उसी तरह अन्तरात्मा से प्रकाशित बुद्धि पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार दूसरा शरीर पाती है।

ज्ञानपूर्वा भवेल्लिप्सा लिप्सापूर्वाभिसंधिता।
अभिसंधिपूर्वकं कर्म कर्ममूलं ततः फलम्।। शान्ति 206/7

पहले मनुष्य को विषय का ज्ञान होता है। ज्ञान होने पर उस विषय को पाने की इच्छा होती है। इसके बाद वह उस विषय को पाने का प्रयत्न करता है। प्रयत्न से कर्म शुरू होता है और कर्म का फल मिलता है।

अनादित्वादमध्यत्वादनन्तत्वाच्च सोऽव्ययः।
अत्येति सर्वदुःखानि दुःखं ह्यन्तवदुच्यते।। शान्ति 206/13

वे परमब्रह्म आदि, मध्य और अन्त से रहित होने के कारण अविनाशी हैं। इसलिये वे दुखों से परे हैं। विनाशशील वस्तु ही दुःख रूप होती है।

तद् ब्रह्म परमं प्रोक्तं तद्धाम परमं पदम्।
तद् गत्वा कालविषयाद् विमुक्ता मोक्षमाश्रिताः।। शान्ति 206/14

वे ब्रह्म ही परमात्मा कहे जाते हैं। वे ही परमधाम और परमपद हैं। उन्हें प्राप्त कर जीव, काल के बन्धन से छूटकर मोक्षधाम में रहने लगता है।

गुणेष्वेते प्रकाशन्ते निर्गुणत्वात् ततः परम्।
निवृत्तिलक्षणो धर्मस्तथाऽऽनन्त्याय कल्पते।। शान्ति 206/15

ये जीव, गुणों में अर्थात् गुणों के कार्य शरीर आदि के कारण दीख रहे हैं। परन्तु परमात्मा निर्गुण होने के कारण इन से परे है। जो मनुष्य निवृत्ति धर्म (निष्काम कर्म) का पालन करते हैं उन्हें निवृत्ति धर्म; मोक्ष का पद प्राप्त करा देता है।

अदृष्टतोऽनुपायाच्च प्रतिसंधेश्च कर्मणः।
न तेन मर्त्याः पश्यन्ति येन गच्छन्ति तत् पदम्।। शान्ति 206/20

भाग्य के कारण, साधन न होने के कारण या कर्मफल की इच्छा बनी रहने के कारण मनुष्य उस मार्ग को नहीं देख पाता जिससे परम पद मिलता है।

विषयेषु च संसर्गाच्छाश्वतस्य च दर्शनात्।
मनसा चान्यदाकाङ्क्षन् परं न प्रतिपद्यते।। शान्ति 206/21

मनुष्यों की विषयों में आसक्ति बनी रहती है, वे समझते हैं कि ये भोग विषय

सदा बने रहेंगे इसीलिये मनुष्य सांसारिक भोगों को पाना चाहता है अतः उन्हें परब्रह्म पद प्राप्त नहीं हो पाता।

गुणान् यदिह पश्यन्ति तदिच्छन्त्यपरे जनाः।
परं नैवाभिकाङ्क्षन्ति निर्गुणत्वाद् गुणार्थिनः।। शान्ति 206/22

मनुष्य संसार में जिन-जिन विषयों को देखते हैं वे उन्हीं को पाना चाहते हैं। उनके मन में सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म को पाने की इच्छा नहीं होती क्योंकि ब्रह्म निर्गुण हैं और मनुष्य गुणों (विषयों) को चाहते हैं।

गुणैर्यस्त्ववरैर्युक्तः कथं विद्यात् परान् गुणान्।
अनुमानाद्धि गन्तव्यं गुणैरवयवैः परम्।। शान्ति 206/23

जो मनुष्य तुच्छ गुणों (विषयों) में फंसा हुआ है वह परम उत्कृष्ट गुणों को कैसे जान सकता है। जैसे धुएं से आग का अनुमान होता है वैसे ही अनादि, नित्य आदि गुणों के द्वारा ब्रह्म का ज्ञान होता है।

सूक्ष्मेण मनसा विद्मो वाचा वक्तुं न शक्नुमः।
मनो हि मनसा ग्राह्यं दर्शनेन च दर्शनम्।। शा० 206/24

हम ध्यान के द्वारा मन को शुद्ध और सूक्ष्म बनाकर मन से परमात्मा के स्वरूप का अनुभव तो कर सकते हैं पर वाणी से उसके रूप को बता नहीं सकते। मन से मानसिक विषय पता चलता है और ज्ञान से ज्ञेय पदार्थ जाना जाता है।

ज्ञानेन निर्मलीकृत्य बुद्धिं बुद्ध्या मनस्तथा।
मनसा चेन्द्रियग्राममक्षरं प्रतिपद्यते।। शान्ति 206/25

ज्ञान के द्वारा बुद्धि को, बुद्धि के द्वारा मन को और मन से इन्द्रियों को निर्मल और शुद्ध करके अविनाशी परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है।

बुद्धि प्रवीणो मनसा समृद्धो निराशिषं निर्गुणमभ्युपैति।
परं त्यजन्तीह विलोड्यमाना हुताशनं वायुरिवेन्धस्थम्।। शा० 206/26

सूक्ष्म और शुद्ध बुद्धि से सम्पन्न और मानसिक बल से युक्त हुआ पुरुष सारी इच्छाओं से परे रहने वाले निर्गुण ब्रह्म को पा लेता है। किन्तु कामनाओं से परेशान मनुष्य अपने शरीर में विद्यमान ब्रह्म को वैसे ही छोड़ देता है जैसे ईंधन में रहने वाली न दीखने वाली आग को वायु छोड़ देती है।

अव्यक्तात्मा पुरुषो व्यक्तकर्मा सोऽव्यक्तत्वं गच्छति ह्यन्तकाले।
तैरेवायं चेन्द्रियैर्वर्धमानैर्ग्लायद्भिर्वाऽऽवर्तते कामरूपः।।
शान्ति 206/28

पुरुष का आत्मा वास्तव में अव्यक्त है और उसके कर्म शरीर रूप में व्यक्त (प्रकट) हैं। इसलिये वह अन्तकाल में अव्यक्त ही हो जाता है। किन्तु कामनाओं से घिरा हुआ जीव विषयों में बढ़ी हुई आसक्ति वाली इन्द्रियों के साथ फिर शरीर धारण कर लेता है।

सर्वैरयं चेन्द्रियैः सम्प्रयुक्तो देहं प्राप्तः पञ्चभूताश्रयः स्यात्।
नासामर्थ्याद् गच्छति कर्मणेह हीनस्तेन परमेणाव्ययेन।

शा० 206/29

सभी इन्द्रियों से संयुक्त होकर देहधारी जीव पंचभूतों से बने शरीर के आश्रित हो जाता है। वह ज्ञान और उपासना आदि की शक्ति के बिना केवल कर्मों द्वारा परमात्मा को नहीं पा सकता अतः वह अविनाशी ब्रह्म से रहित रहता है।

दिवाकरो गुणमुपलभ्य निर्गुणो यथा भवेदपगतरश्मिमण्डलः।
तथा ह्यसौ मुनिरिह निर्विशेषवान् स निर्गुणं प्रविशति ब्रह्म चाव्ययम्।।

शान्ति 206/31

जैसे सूर्य प्रकाशरूपी गुण पाकर भी अस्त होते हुए किरणों को समेट कर निर्गुण हो जाता है। वैसे ही भेदभाव रहित मुनि अविनाशी निर्गुण ब्रह्म में प्रवेश पा लेता है।

अनागतं सुकृतवतां परां गतिं स्वयम्भुवं प्रभवनिधानमव्ययम्।
सनातनं यदमृतमव्ययं ध्रुवं निचाय्य तत् परममृतत्वमश्नुते।।

शा० 206/32

जो कहीं से नहीं आया है अर्थात् नित्य विद्यमान है। पुण्य कर्म करने वालों की परम गति है। जो स्वयं उत्पन्न (अजन्मा) है। जो सबकी उत्पत्ति और प्रलय का स्थान है। विकारों से रहित निश्चित, अविनाशी और सनातन है उस परमात्मा को जानकर मनुष्य अमृतपूर्ण मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है।

ब्राह्मण

वाचि वीर्यं च ब्राह्मणस्य विशेषतः।। सभा 21/46

ब्राह्मण की वाणी में विशेषरूप से ओज रहता है।

ब्रह्म क्षत्रेण संसृष्टं क्षत्रं च ब्रह्मणा सह।
उदीर्णे दहतः शत्रून् वनानीवाग्नि मारुतौ।। वन 26/10

जब ब्राह्मण, क्षत्रिय से और क्षत्रिय, ब्राह्मण से मिल जाते हैं तब ये दोनों शक्तिशाली होकर शत्रुओं को उसी तरह नष्ट कर देते हैं जैसे वायु और अग्नि मिलकर वन को भस्म कर देते हैं।

ब्राह्मण्यनुपमा दृष्टिः क्षात्रमप्रतिमं बलम्।
तौ यदा चरतः सार्धं तदा लोकः प्रसीदति।। वन 26/16

ब्राह्मणों की विचार शक्ति अद्भुत होती है और क्षत्रिय का बल अनुपम होता है। बुद्धि और बल के मिल जाने पर संसार सुखी होता है।

द्विजातीनामृतं धर्मो ह्येकश्चैवैकलक्षणः।
यज्ञाध्ययनदानानि त्रयः साधारणाः स्मृताः।। वन 150/34

ब्राह्मणों का मुख्य धर्म सत्य-आचरण है। सत्य व्यवहार धर्म का प्रधान लक्षण है। यज्ञ, स्वाध्याय और दान ये तीन धर्म ब्राह्मणों के सामान्य होते हैं।

याजनाध्यापनं विप्रे धर्मश्चैव प्रतिग्रहः।। वन 150/35

यज्ञ कराना, वेद शास्त्र पढ़ाना और दान लेना ब्राह्मणों की आजीविका है।

तपोधर्मदमेज्याभिर्विप्रा यान्ति यथा दिवम्।। वन 150/51

तपस्या, धर्मपालन, इन्द्रिय निग्रह और यज्ञ के द्वारा ब्राह्मण स्वर्ग को जाते हैं।

सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः।। वन 180/21

नागराज! जिसमें सत्य, दान, क्षमा, सदाचार, क्रूरता का अभाव, तप और दया का भाव ये गुण हों वही पुरुष ब्राह्मण होता है।

यदि ते वृत्ततो राजन् ब्राह्मणः प्रसमीक्षितः।
वृथा जातिस्तदाऽऽयुष्मान् कृतिर्यावन्नविद्यते।। वन 180/30

आयुष्मान् राजन्! यदि आचरण से ही ब्राह्मण की परीक्षा की जाय तो जाति के अनुरूप यदि कर्म न हो तो जाति का अभिमान व्यर्थ है।

तावच्छूद्रसमो ह्येष यावद् वेदे न जायते।। वन 180/35

जब तक बालक का संस्कार करके उसे वेद नहीं पढ़ाया जाता तब तक वह शूद्र ही के समान होता है।

कृतकृत्याः पुनर्वर्णा यदि वृत्तं न विद्यते।
संकरस्त्वत्र नागेन्द्र बलवान् प्रसमीक्षितः।। वन 180/36

यदि संस्कार करके वेद पढ़ाने पर भी बालक में ब्राह्मण आदि वर्णों का चरित्र और आचार-विचार नहीं आता तो वह बालक वर्ण संकर होता है।

यत्रेदानीं महासर्प संस्कृतं वृत्तमिष्यते।
तं ब्राह्मणमहं पूर्वमुक्तवान् भुजगोत्तम।। वन 180/37

महासर्प! जिस व्यक्ति में संस्कारों के साथ-साथ उत्तम चरित्र (संस्कृतवृत्त) भी हो वही ब्राह्मण होता है। यह बात मैं पहिले ही कह चुका हूँ।

मन्युप्रहरणा विप्रा न विप्राः शस्त्रयोधिनः। वन 200/78

ब्राह्मण अपने क्रोध से ही किसी को मारते हैं वे हथियार लेकर नहीं लड़ते।

यः क्रोधमोहौ त्यजति तं देवा ब्राह्मणं विदुः।
यो वदेदिह सत्यानि गुरुं संतोषयेत च।। वन 206/33
हिंसितश्च न हिंसेत तं देवा ब्राह्मणं विदुः।। वन 206/34

जो व्यक्ति क्रोध और मोह को त्याग देता है, सत्य बोलता है, गुरु को प्रसन्न रखता है और मार खाने पर भी बदला नहीं लेता उसे ही देवता ब्राह्मण मानते हैं।

जितेन्द्रियो धर्मपरः स्वाध्यायनिरतः शुचिः।
काम क्रोध वशौ यस्य तं देवा ब्राह्मणं विदुः।। वन 206/35

जो जितेन्द्रिय, धर्मपरायण, स्वाध्यायशील और पवित्र है। जिसने काम और क्रोध को वश में कर लिया है उसे देवता ब्राह्मण मानते हैं।

ब्रह्मचर्यं तपो मन्त्राः सत्यं च ब्राह्मणे सदा।। वन 207/25

ब्राह्मण को सदा ब्रह्मचर्य, तपस्या, मन्त्र-जप, वेदाध्ययन और सत्य बोलना चाहिये।

स्वाध्याय एषां देवत्वं तप एषां सतामिव।
मरणं मानुषो भावः परिवादोऽसतामिव।। वन 313/50

शास्त्रों का पढ़ना ब्राह्मणों का देवत्व है, तपस्या करना सत्पुरुषों जैसा काम है। मरना इनका मनुष्यपना है और झगड़ना असत्पुरुषों का आचरण है।

अधीत्य ब्राह्मणो वेदान् याजयेत यजेत् वा।। विराट 50/5

ब्राह्मण वेद पढ़कर यज्ञ करे और यज्ञ कराये।

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेश्वपि द्विजातयः।। उद्योग 6/1

जड़ भूतों में प्राणी श्रेष्ठ हैं। प्राणियों में बुद्धि के द्वारा काम करने वाले श्रेष्ठ हैं। हाथी, घोड़े आदि बुद्धिमान प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ हैं और मनुष्यों में भी ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं।

अधीयीत ब्राह्मणो वै यजेत दद्यादीयात् तीर्थमुख्यानि चैव।
अध्यापयेद् याजयेच्चापि याज्यान् प्रतिग्रहान् वा विहितान् प्रतीच्छेत्।।
उद्योग 29/23

ब्राह्मण पढ़े, यज्ञ करे, दान दे, मुख्य तीर्थों की यात्रा करे, पढ़ाये, यज्ञ कराये, और यजमानों से शास्त्र विहित दान-दक्षिणा स्वीकार करे।

वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः।। उद्योग 34/34

ब्राह्मण, वेदों से देखते हैं।

ब्राह्मणा वेदबान्धवाः।। उद्योग 34/38

ब्राह्मणों के बन्धु वेद हैं।

अश्रान्तः स्यादनादाता सम्मतो निरुपद्रवः।
शिष्टो न शिष्टवत् स स्याद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित् कविः।। उद्योग 42/38

जो कर्त्तव्य पालन से थकता नहीं, दान नहीं लेता, जिसका सज्जन सम्मान करते हैं, जो कोई उपद्रव नहीं करता और शिष्ट होकर भी अपनी शिष्टता की डींग नहीं मारता, वही ब्राह्मण विद्वान् और ब्रह्मवेत्ता होता है।

अनाढ्या मानुषे वित्ते आढ्या दैवे तथा क्रतौ।
ते दुर्धर्षा दुष्प्रकम्प्यास्तान् विद्याद् ब्रह्मणस्तनुम्।। उद्योग 42/39

जिनके पास लौकिक धन नहीं है किन्तु दैवी सम्पत्ति और यज्ञ उपासना की सम्पत्ति है, उन्हें कोई दबा नहीं सकता, वे किसी विषय भोग से चलायमान नहीं होते, वे ब्रह्म की साक्षात् प्रतिमा हैं।

य एव सत्यान्नापैति स ज्ञेयो ब्राह्मणस्त्वया।। उद्योग 43/49

जो सत्यस्वरूप परमात्मा से कभी दूर नहीं होता उसी को तुम ब्राह्मण समझो।

सत्ये वै ब्राह्मणस्तिष्ठंस्तद् विद्वान् सर्वविद् भवेत्।। उद्योग 43/62

जो एकमात्र सत्यस्वरूप ब्रह्म में ही स्थित है वही ब्राह्मण सर्वज्ञ होता है।

स्वाध्यायो व्रतचर्याथ ब्राह्मणानां परं धनम्।। उद्योग 185/11

स्वाध्याय और व्रतों का पालन करना ब्राह्मणों की श्रेष्ठ सम्पत्ति है।

वाग्भिः शूरा द्विजातयः।। द्रोण 158/23

ब्राह्मण अपनी वाणी से विद्वत्ता प्रदर्शित करते हैं।

सूक्ष्मो विवादो विप्राणां स्थूलौ क्षात्रौ जया जयौ।। कर्ण 16/28

ब्राह्मणों का विवाद सूक्ष्म अर्थात् बुद्धि के द्वारा होता है किन्तु क्षत्रियों की हार जीत स्थूल अर्थात् अस्त्र-शस्त्र के द्वारा होती है।

याजनाध्यापनैर्विप्रा विशुद्धैश्च प्रतिग्रहैः।
लोकस्यानुग्रहार्थाय स्थापिता ब्राह्मणा भुवि।। कर्ण 32/46

यज्ञ कराने, वेदादि शास्त्र पढ़ाने, विशुद्ध सात्त्विक दान से जीवन निर्वाह करने और संसार पर कृपा करने के लिये ब्राह्मणों को पृथ्वी पर पैदा किया गया है।

बलं तु वाचि द्विजसत्तमानाम्।। कर्ण 70/12

श्रेष्ठ ब्राह्मणों का बल उनकी वाणी में होता है।

अदान्तो ब्राह्मणोऽसाधुः।। सौप्तिक 3/20

मन और इन्द्रियों को अपने वश में न रखने वाला ब्राह्मण अच्छा नहीं माना जाता।

तपो यज्ञस्तथा विद्या भैक्ष्यमिन्द्रियसंयमः।
ध्यानमेकान्तशीलत्वं तुष्टिर्ज्ञानं च शक्तितः।। शान्ति 23/8
ब्राह्मणानां महाराज चेष्टा संसिद्धिकारिका।। शान्ति 23/9

महाराज! तपस्या, यज्ञ, पढ़ाई-लिखाई, भिक्षा, इन्द्रियों पर संयम, मन एकाग्र करना, एकान्त में रहना, सन्तुष्ट रहना और यथाशक्ति ज्ञान प्राप्त करना ये बातें ब्राह्मणों के लिये सफलता देने वाली हैं।

ऋषीणां समयं शश्वद् ये रक्षन्ति धनंजय।
आश्रिताः सर्वधर्मज्ञा देवास्तान् ब्राह्मणान् विदुः।। शान्ति 26/4

अर्जुन! सभी धर्मों को जानने वाले जो लोग ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर ऋषियों की स्वाध्याय परम्परा की रक्षा करते हैं, उन्हें देवता, ब्राह्मण कहते हैं।

यथा दारुमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
ब्राह्मणश्चानधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति।। शान्ति 36/46

जैसे लकड़ी का हाथी और चमड़े का बना हुआ हरिण नाम के ही हाथी और हरिण होते हैं। उसी तरह बिना पढ़ा ब्राह्मण भी नाम का ब्राह्मण होता है।

यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला।
शकुनिर्वाप्यपक्षः स्यान्निर्मन्त्रो ब्राह्मणस्तथा।। शान्ति 36/47

जैसे नपुंसक का स्त्रियों के पास जाना, गाय का गाय के साथ मिलना और बिना पंख के पक्षी का होना बेकार होता है उसी तरह वेदमन्त्रों के ज्ञान से रहित ब्राह्मण भी बेकार होता है।

ब्राह्मणास्तात लोकेऽस्मिनर्चनीयाः सदा मम।
एते भूमिचरा देवा वाग्विषाः सुप्रसादकाः।। शान्ति 39/2

तात! इस संसार में ब्राह्मण मेरे लिये सदा पूजनीय हैं। ये पृथ्वी पर रहने वाले देवता हैं। इनकी वाणी में ज़हर होता है। ये जल्दी ही प्रसन्न हो जाते हैं और लोगों को प्रसन्न कर देते हैं।

जातकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः।
वेदाध्ययनसम्पन्नः षट्सुकर्मस्ववस्थितः।। शान्ति 189/2
शौचाचारस्थितः सम्यग्विघसाशी गुरुप्रियः।
नित्यव्रती सत्यप्रियः स वै ब्राह्मण उच्यते।। शान्ति 189/3

जो व्यक्ति जातकर्म आदि संस्कारों से युक्त और पवित्र है। जो वेद पढ़ता है और यज्ञ करना-कराना, पढ़ना-पढ़ाना तथा दान देना और दान लेना ये छह काम करता है। सदाचारी है। यज्ञशेष का भोजन करता है। गुरु जिसे चाहते हैं। सदा व्रतों का पालन करता है और सत्य व्यवहार जिसे अच्छा लगता है वह ब्राह्मण कहलाता है।

सर्वेषामेव भूतानां पुरुषः श्रेष्ठ उच्यते।
पुरुषेभ्यो द्विजानाहुर्द्विजेभ्यो मन्त्रदर्शिनः।। शान्ति 214/2

सभी प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ प्राणी है। मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणों में मन्त्रदर्शी (वेदों के मंत्रों का अर्थ जानने वाले विद्वान्) ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं।

तपसा वा सुमहता विद्यानां पारणेन च।
ईज्यया वा प्रदानैर्वा विप्राणां वर्धते यशः।। शान्ति 234/9

महान तप, पूरी तरह विद्याभ्यास करने से, यज्ञ और दान करने से ब्राह्मणों का यश बढ़ता है।

याज्यतः शिष्यतो वापि कन्याया वा धनं महत्।
यदाऽऽगच्छेत् यजेद् दद्यान्नैकोऽश्नीयान् कथंचन।। शा० 234/12

जब ब्राह्मण को यजमान से, शिष्य से या कन्या शुल्क से बहुत पैसा मिले तब उस पैसे से वह यज्ञ करे और दान दे। अकेले उसका उपभोग न करे।

असंरोधेन भूतानां वृत्तिं लिप्सेत वै द्विजः।
सद्भ्य आगत विज्ञानः शिष्टः शास्त्रविचक्षणः।। शान्ति 235/4

ब्राह्मण किसी प्राणी को कष्ट न देकर और उसकी जीविका नष्ट न करके अपनी जीविका चलाये। सन्तों के पास रहकर तत्त्वज्ञान प्राप्त करे, शिष्ट (सभ्य) पुरुष बने और शास्त्रों का पारंगत बने।

धूतपाप्मा च मेधावी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।। शान्ति 235/8
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निनीषेद् ब्रह्मणः पदम्।

पाप धुल जाने पर बुद्धिमान ब्राह्मण मिताहार करते हुए इन्द्रियों को और काम, क्रोध को जीते और ब्रह्मपद पाने की इच्छा करे।

अग्नींश्च ब्राह्मणांश्चार्चेद् देवताः प्रणमेत् च।। शान्ति 235/9
वर्जयेदुशतीं वाचं हिंसां चाधर्मसंहिताम्।

ब्राह्मण को अग्नि, देवता और ब्राह्मण को प्रणाम करना चाहिये और इनका आदर करना चाहिये उसे कड़वी बात नहीं कहनी चाहिये और हिंसा नहीं करनी चाहिये क्योंकि ऐसा आचरण अधर्म से युक्त है।

धृतिमानप्रमत्तश्च दान्तो धर्मविदात्मवान्।
वीतहर्षमदक्रोधो ब्राह्मणो नावसीदति।। शान्ति 235/29

धैर्यशाली, प्रमादरहित, जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ, मनस्वी तथा हर्ष, मद और क्रोध से रहित ब्राह्मण कभी दुखी नहीं होता।

अनुत्तरीयवसनमनुपस्तीर्णशायिनम्
बाहूपधानं शाम्यन्तं तं देवा ब्राह्मणं विदुः।। शान्ति 269/30

जिसके पास वस्त्र के नाम पर एक लंगोट है। ओढ़ने के लिये एक चादर भी नहीं है। जो बिना बिस्तरे के सोता है और बांह का तकिया लगाता है तथा सदा शान्त भाव से रहता है उसे देवता ब्राह्मण मानते हैं।

द्वन्द्वारामेषु सर्वेषु य एको रमते मुनिः।
परेषामननुध्यायंस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः।। शान्ति 269/31

जो मुनि गर्मी-सर्दी आदि सभी द्वन्द्वरूपी उपवनों में अकेला ही आनन्द से विचरता है और दूसरों के बारे में उदासीन रहता है उसी को देवता ब्राह्मण मानते हैं।

येन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या।
गतिज्ञः सर्वभूतानां तं देवा ब्राह्मणं विदुः।। शान्ति 269/32

जिसे इस सारे जगत् की नश्वरता का ज्ञान है। जो प्रकृति और उसके विकारों को जानता है तथा जिसे सभी भूतों की गतियों का ज्ञान है। उसे देवता ब्राह्मण मानते हैं।

अभयं सर्वभूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः।
सर्वभूतात्मभूतो यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः।। शान्ति 269/33

जो सभी प्राणियों से अभय है और जिससे सभी प्राणी नहीं डरते तथा जो सब भूतों में अपनी जैसी आत्मा मानता है उसे देवता ब्राह्मण कहते हैं।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयो वर्णा द्विजातयः।। शा० 296/25

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्ण द्विजाति कहलाते हैं।

न ब्राह्मणानां कोपोऽस्ति कुतः कोपाच्च यातनाम्।। अनुशासन 1/27

ब्राह्मणों को क्रोध नहीं आता इसलिये वे क्रोध में भर कर दूसरों को कष्ट कैसे दे सकते हैं?

तपः श्रुतं च योनिश्चाप्येतद् ब्राह्मण्यकारणम्।
त्रिभिर्गुणैः समुदितस्ततो भवति वै द्विजः।। अनु 121/7

तपस्या, शास्त्रज्ञान और ब्राह्मण कुल में जन्म ये तीन गुण ब्राह्मण के लिये माने गये हैं। इन तीन गुणों वाला ब्राह्मण होता है।

अन्धं स्यात् तम एवेदं न प्रज्ञायेत किंचन।
चातुर्वर्ण्यं न वर्तेत धर्माधर्मावृतानृते।। अनु० 121/9

समाज में ब्राह्मणों के न होने पर अज्ञान का अन्धकार छा जायेगा। किसी को कुछ सूझ नहीं पड़ेगा। चारों वर्णों का लोप हो जायेगा। धर्म-अधर्म और झूठ-सच का कुछ भी पता नहीं चलेगा।

मुखतो ब्राह्मणाः सृष्टास्तस्मात् ते वाग्विशारदाः।।

अनु० 141/29-30 दा० पा०

विधाता ने अपने मुख से ब्राह्मण बनाये हैं इसलिये वे बोलने में चतुर होते हैं।

स्वाध्यायो यजनं दानं तस्य धर्म इति स्थितिः।

कर्माण्यध्यापनं चैव याजनं च प्रतिग्रहः ।

सत्यं शान्तिस्तपः शौचं तस्य धर्मः सनातनः।।

अनु 141/29-30 दा० पा०

वेद-शास्त्रों का पढ़ना, यज्ञ करना और दान लेना ब्राह्मण का धर्म है। वेद-शास्त्रों को पढ़ाना, यज्ञ कराना और दान लेना ये काम ब्राह्मण अपनी जीविका चलाने के लिये करता है। सत्य बोलना, शान्त रहना, तपस्या करना और मन, वचन, कर्म से पवित्र रहना ब्राह्मण का सनातन धर्म है।

विक्रयो रस धान्यानां ब्राह्मणस्य विगर्हितः।।

अनु 141/29-30 दा० पा०

ब्राह्मण को रसों और अनाजों को नहीं बेचना चाहिये।

उपवासः सदा धर्मो ब्राह्मणस्य न संशयः। अनु 141/31

निस्संदेह ब्राह्मण को सदा उपवास अर्थात् इन्द्रियसंयम करना चाहिये।

तस्य धर्मक्रिया देवि ब्रह्मचर्या च न्यायतः।

व्रतोपनयनं चैव द्विजो येनोपपद्यते।। अनु 141/32

देवि! ब्राह्मण को धार्मिक अनुष्ठान और यथाविधि ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। उसे व्रतों को अपनाना चाहिये और अपना उपनयन संस्कार कराना चाहिये। उपनयन संस्कार होने पर ही ब्राह्मण या ब्रह्मचारी का दूसरा जन्म होता है। इसी कारण उसे द्विज कहा जाता है।

त्रैविद्यो ब्राह्मणो विद्वान् न चाध्ययन जीवकः।

त्रिकर्मा त्रिपरिक्रान्तो मैत्र एष स्मृतो द्विजः।। अनु 141/66

जो तीनों वेदों का ज्ञाता और विद्वान् हो। पढ़ाने का काम करके अपनी जीविका न चलाता हो। दान, धर्म और यज्ञ इन तीन कर्मों को सदा करता हो। काम, क्रोध और लोभ इन तीनों बुराइयों को छोड़ चुका हो और सब प्राणियों के प्रति मैत्री भाव रखता हो। ऐसा पुरुष ही वास्तव में ब्राह्मण होता है।

कर्मणा दुष्कृतेनेह स्थानाद् भ्रश्यति वै द्विजः।। अनु 143/7

पाप का काम करने से ब्राह्मण अपने स्थान से गिर जाता है।

न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं न च संततिः।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम्।। अनु 143/50

ब्राह्मण बनने के लिये न तो योनि, न संस्कार, न शास्त्रज्ञान और न ही ब्राह्मण कुल में जन्म आवश्यक कारण हैं। ब्राह्मणत्व का कारण तो सदाचार ही है।

सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते।
वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति।। अनु 143/51

इस संसार में सारे ब्राह्मण सदाचार के कारण ही ब्राह्मण माने जाते हैं। सदाचारी शूद्र भी ब्राह्मण बन सकता है।

ब्राह्मः स्वभावः सुश्रोणि समः सर्वत्र मे मतिः।
निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः।। अनु 143/52

सुश्रोणि पार्वती! ब्रह्म का स्वभाव सदा एक जैसा रहता है। जिस पुरुष को निर्गुण और निर्मल ब्रह्म का ज्ञान होता है वही मेरे विचार में वास्तव में ब्राह्मण होता है।

संहिताध्यायिना भाव्यं गृहे वै गृहमेधिना।
नित्यं स्वाध्यायिना भाव्यं न चाध्ययनजीविना।। अनु 143/56

गृहस्थ ब्राह्मण घर में रहकर सदा वेदों का और शास्त्रों का स्वाध्याय करे। उसे अध्ययन-अध्यापन को जीविका का साधन नहीं बनाना चाहिये।

तपो येषां धनं नित्यं वाक् चैव विपुलं बलम्।
प्रभवश्चैव धर्माणां धर्मज्ञाः सूक्ष्मदर्शिनः।। अनु 151/6

ब्राह्मणों का धन तपस्या है। उनकी वाणी में ही अत्यधिक बल (प्रभाव) है। ब्राह्मण ही धर्मों का आदि स्रोत हैं। वे धर्म के जानकार हैं और सूक्ष्म से सूक्ष्म बात समझते हैं।

आशीविष विषं तीक्ष्णं ततस्तीक्ष्णतरो द्विजः।
ब्रह्माशीविषदग्धस्य नास्ति कश्चिच्चिकित्सकः।। अनु 159/33

विषैले साँप का जहर बहुत तेज होता है किन्तु ब्राह्मण साँप से भी अधिक जहरीले होते हैं। ब्राह्मण के काटे का इलाज किसी के पास नहीं है।

क्षात्राद् बलाद् ब्रह्मबलं वरीयो-
न ब्रह्मतः किञ्चिदन्यद् गरीयः।। आश्व 9/37

क्षात्रबल (क्षत्रिय की शक्ति) से ब्राह्मण-बल कहीं अधिक श्रेष्ठ होता है। ब्रह्मबल से बढ़कर कोई दूसरी शक्ति नहीं है।

जितशिश्नोदरो मैत्रः शिष्टाचार समन्वितः।
वैणवीं धारयेद् यष्टिं सोदकं कमण्डलुम्।। आश्व 45/20

ब्राह्मण को अपनी जीभ और उपस्थेन्द्रिय पर नियन्त्रण रखना चाहिये। सबके साथ मित्रता और शिष्यचार के साथ रहना चाहिये। उसे बांस की लाठी और पानी से भरा कमण्डल सदा साथ रखना चाहिये।

अधीत्याध्यापनं कुर्यात् तथा यजनयाजने।
दानं प्रतिग्रहं वापि षड्गुणां वृत्तिमाचरेत्।। आश्व 45/21

ब्राह्मण को पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना और यज्ञ कराना तथा दान देना और दान लेना ये छह काम करने चाहियें।

त्रीणि कर्माणि जानीत ब्राह्मणानां तु जीविका।
याजनाध्यापने चोभे शुद्धाच्चापि प्रतिग्रहः।। आश्व 45/22

यज्ञ कराना, पढ़ाना और श्रेष्ठ पुरुषों से दान लेना ये तीन काम ब्राह्मणों को अपना पेट भरने के लिये करने चाहियें।

अथ शेषाणि चान्यानि त्रीणि कर्माणि यानि तु।
दानमध्ययनं यज्ञो धर्मयुक्तानि तानि तु।। आश्व 45/23

बाकी तीन काम अर्थात् दान देना, स्वाध्याय और यज्ञ करना ये धर्मोपार्जन अर्थात् धार्मिक जीवन बिताने के लिये हैं।

ब्राह्मणा हि धनार्थिनः।। आश्व 89/10

ब्राह्मण धन चाहते हैं।

क्षत्रियं चैव सर्पं च ब्राह्मणं च बहुश्रुतम्।
नावमन्येत मेधावी कृशानपि कदाचन।। आश्व 92 दा० पा० अ० III

बुद्धिमान पुरुष को क्षत्रिय, साँप और विद्वान ब्राह्मण का अपमान कभी नहीं करना चाहिये, चाहे ये तीनों कमजोर भी क्यों न हों।

एतत् त्रयं हि पुरुषं निर्दहेदवमानितम्।। आश्व 92 दा० पा० अ० III

ये तीनों अपमानित होने पर मनुष्य को भस्म कर डालते हैं।

मन्युं नोत्पादयेत् तेषां न चारिष्टं समाचरेत्।

मन्युप्रहरणा विप्रा न विप्राः शस्त्रपाणयः।। आश्व 92 दा० पा० अ० III

उन्हें गुस्सा नहीं दिलाना चाहिये। न हो इनका अनिष्ट करना चाहिये। ब्राह्मण क्रोध के शस्त्र से हमला करते हैं। उनके हाथों में हथियार नहीं होते।

धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्।

क्षमा जयति न क्रोधः क्षमावान् ब्राह्मणो भवेत्।।

आश्व 92 दा० पा० अ० IX

धर्म की विजय होती है अधर्म की नहीं। सत्य की जीत होती है झूठ की नहीं। क्षमा की जीत होती है क्रोध की नहीं। अतः ब्राह्मण को क्षमाशील होना चाहिये।

क्षान्तं दान्तं जितक्रोधं जितात्मानं जितेन्द्रियम्।

तमग्र्यं ब्राह्मणं मन्ये शेषाः शूद्रा इति स्मृताः।।

आश्व 92 दा० पा० अ० XX

क्षमाशील, मनोनिग्रही, क्रोधरहित, संयमी, इन्द्रियों पर वश पाने वाले ब्राह्मण को ही मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण मानता हूँ। इन गुणों से शून्य ब्राह्मण, शूद्र ही होते हैं।

अग्निहोत्र व्रतपरान् स्वाध्यायनिरताञ्शुचीन्।

उपवासरतान् दान्तांस्तान् देवा ब्राह्मणा विदुः।

न जात्या पूजितो राजन् गुणाः कल्याणकारकाः।।

आश्व 92 दा० पा० अ० XX

यज्ञ, व्रत, स्वाध्याय, उपवास में लगे रहने वाले, पवित्र और जितेन्द्रिय पुरुषों को ही देवता, ब्राह्मण मानते हैं। केवल जाति से किसी का सम्मान नहीं किया जाता अपितु गुण ही मनुष्य का कल्याण करते हैं।

बुढ़ापा

जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः।। आदि 84/5

बुढ़ापे में खाने-पीने के कारण अनेक कष्ट होने लगते हैं।

सितश्मश्रुर्निरानन्दो जरया शिथिलीकृतः।
वलीसंगत गात्रस्तु दुर्दर्शो दुर्बलः कृशः।। आदि 84/6

बूढ़े व्यक्ति के दाढ़ी मूँछ के बाल सफेद हो जाते हैं। उसके जीवन का आनन्द समाप्त हो जाता है, शरीर ढीला, कमजोर, पतला, भद्दा और झुर्रियों वाला हो जाता है।

अशक्तः कार्यकरणे परिभूतः स यौवतैः।
सहोपजीविभिश्चैव तां जरां नाभिकामये।। आदि 84/7

बुढ़ापे में काम करने की शक्ति नहीं रहती। युवतियाँ और नौकर भी बूढ़े की हँसी उड़ाते हैं इसलिये कोई बुढ़ापा नहीं चाहता।

न कामये जरां तात कामभोगप्रणाशिनीम्।
बलरूपान्तकरणीं बुद्धि प्राण प्रणाशिनीम्।। आदि 84/12

पिताजी! कामनाओं और भोगों का नाश करने वाला, शरीर का रूप और बल नष्ट करने वाला तथा बुद्धि और आयु समाप्त करने वाला बुढ़ापा मुझे नहीं चाहिये।

न गजं न रथं नाश्वं जीर्णो भुङ्क्ते न च स्त्रियम्।
वाक्सङ्गश्चास्य भवति तां जरां नाभिकामये।। आदि 84/19

बूढ़ा मनुष्य हाथी, घोड़े और रथ की सवारी नहीं कर सकता। न ही वह स्त्री सुख भोग सकता है। उसकी वाणी भी लड़खड़ाने लगती है। अतः मुझे बुढ़ापा नहीं चाहिये।

जीर्णः शिशुवदादत्तेऽकालेऽन्नमशुचिर्यथा।
न जुहोति च कालेऽग्निं तां जरां नाभिकामये।। आदि 84/24

बूढ़ा व्यक्ति गोद के बच्चे की तरह कभी भी खाने लगता है और गन्दा रहता है। वह समय पर यज्ञ नहीं कर पाता अतः मुझे बुढ़ापा नहीं चाहिये।

श्रोतव्यं खलु वृद्धानामिति शास्त्रनिदर्शनम्।
न त्वेव ह्यतिवृद्धानां पुनर्बाला हि ते मताः।। उद्योग 168/26

शास्त्रों का कहना है कि बड़े बूढ़ों की बातों को ध्यान से सुनना चाहिये किन्तु बहुत बूढ़ों की बातों पर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिये, क्योंकि वे बच्चे ही होते हैं।

व्यक्तं हि जीर्यमाणोऽपि बुद्धिं जरयते नरः।। द्रोण 143/16

यह बात स्पष्ट दीखती है कि मनुष्य के बूढ़े होने के साथ ही उसकी बुद्धि भी मन्द हो जाती है।

न कश्चिज्जात्वतिक्रामेज्जरामृत्यू हि मानवः।। शान्ति 28/15

कोई भी मनुष्य बुढ़ापे और मृत्यु से बच नहीं सकता।

जरामृत्यू हि भूतानां खादितारौ वृकाविव।
बलिनां दुर्बलानां च ह्रस्वानां महतामपि।। शान्ति 28/14

बुढ़ापा और मृत्यु ये दोनों भेड़ियों की तरह हैं जो बलवान, कमजोर, छोटे या बड़े सभी को खा जाते हैं।

संनिमज्जेज्जगदिदं गम्भीरे कालसागरे।
जरामृत्युमहाग्राहे न कश्चिदवबुध्यते।। शान्ति 28/44

बुढ़ापे और मृत्यु के रूप में बड़े-बड़े मगरमच्छ इस कालरूपी सागर में पड़े हुए हैं। सारा संसार इस काल सागर में डूबता जा रहा है किन्तु इसे कोई नहीं समझ पाता।

पुरा जरा कलेवरं विजर्जरीकरोति ते।
बलाङ्गरूपहारिणी निधत्स्व केवलं निधिम्।। शान्ति 321/41

शरीर का बल, रूप और अंगों को नष्ट कर देने वाला बुढ़ापा आने से पहले ही तुम अपने ज्ञान का भण्डार बढ़ा लो।

नैतदस्ति महाभागे जरामृत्युनिवर्तनम्।
सर्वलोकेषु जानीहि मोक्षादन्यत्र भामिनी।। अनु 145 दा० पा० अ०XIV

सौभाग्यशालिनी! सारे संसार में कोई भी प्राणी बुढ़ापे और मौत से नहीं बच सकता। हे धर्मपत्नी! मोक्ष के सिवाय बुढ़ापे और मौत से नहीं बचा जा सकता।

न धनेन न राज्येन नाग्र्येण तपसापि वा।
मरणं नातितरते विना मुक्त्या शरीरिणः।। अनु 145 दा० पा० अ०XIV

मनुष्य अपनी आत्मा की मुक्ति के बिना धन से, राज्य से या बहुत तपस्या करने से भी मृत्यु से नहीं बच सकता।

ऐश्वर्यं धनधान्यं च विद्यालाभस्तपस्तथा।
रसायनप्रयोगो वा न तरन्ति जरान्तकौ।। अनु 145 दा० पा० अ० XIV

ऐश्वर्य, धन-धान्य, विद्या, तपस्या या रसायनों के प्रयोग से भी मनुष्य बुढ़ापे और मृत्यु से नहीं बच सकता।

मरणं हि शरीरस्य नियतं ध्रुवमेव च।
तिष्ठन्नपि क्षणं सर्वः कालस्यैति वशं पुनः।। अनु 145 दा० पा० अ०XIV

शरीर का अन्त सर्वथा निश्चित है। सभी प्राणी इस संसार में कुछ समय रहकर फिर काल के अधीन हो जाते हैं।

बुद्धि

सात्त्विक बुद्धि **प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।**
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी।।

भी० 42/ 30

जो बुद्धि यह जानती है कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं, भय और अभय को, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को तथा बन्धन और मोक्ष को समझने वाली बुद्धि सात्त्विक होती है।

राजसिक बुद्धि **यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।**
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।। भीष्म 42/31

जो बुद्धि; धर्म और अधर्म को तथा कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को भली–भाँति नहीं समझती ऐसी समझ राजसिक बुद्धि के कारण होती है।

तामसिक बुद्धि **अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता।**
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।।

भीष्म 42/32

अज्ञान के कारण तामसिक बुद्धि अधर्म के काम को धर्म समझ लेती है। ऐसी बुद्धि हर बात को उल्टे ढंग से सोचती है।

अन्यथा यौवने मर्त्यो बुद्ध्या भवति मोहितः।
मध्येऽन्यया जरायां तु सोऽन्यां रोचयते मतिम्।। सौप्तिक 3/11

युवास्था में मनुष्य की बुद्धि अलग ढंग से सोचती है। जवानी ढलने पर उसकी बुद्धि किसी और तरह सोचने लगती है और बुढ़ापे में उसकी बुद्धि फिर बदल जाती है।

अज्ञातानां च विज्ञानात् सम्बोधाद् बुद्धिरुच्यते।। शान्ति 17/21

अज्ञात तत्त्वों के ज्ञान और सम्यक् बोध कराने के कारण अन्तःकरण की एक वृत्ति को बुद्धि कहते हैं।

आत्मसंयमनं बुद्ध्या परबुद्ध्यावधारणम्।
बुद्ध्या चात्मगुणप्राप्तिरेतच्छास्त्रनिदर्शनम्।। शान्ति 120/18

अपने मन को केवल अपनी बुद्धि से ही वश में किया जाता है। सहायकों आदि दूसरे लोगों की बुद्धि से कर्त्तव्य का निश्चय किया जाता है और शास्त्रीय बुद्धि से आत्मगुण को प्राप्त किया जाता है और यही शास्त्रों का प्रयोजन होता है।

बुद्धिर्दीप्ता बलवन्तं हिनस्ति बलं बुद्ध्या पाल्यते वर्धमानम्।
शत्रुर्बुद्ध्या सीदते वर्धमानो बुद्धेः पश्चात् कर्म यत्तत् प्रशस्तम्।।
शान्ति 120/42

प्रतिभाशालिनी बुद्धि बलवान को हरा देती है। बढ़ते हुए बल की बुद्धि से रक्षा की जाती है। समृद्ध होता हुआ शत्रु भी बुद्धि के बल से कष्ट पाने लगता है। बुद्धि पूर्वक सोच-समझकर जो काम किया जाता है उसका फल अच्छा होता है।

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
जगतीस्थानिवाद्रिस्थः प्रज्ञया प्रतिपत्स्यति।। शान्ति 151/11

निर्मल बुद्धि की अटारी पर चढ़कर और शोक से रहित होकर ज्ञानी पुरुष अपनी बुद्धि के बल से सभी शोकग्रस्त लोगों को उसी तरह जान लेता है जैसे पर्वत पर खड़ा मनुष्य भूमि के लोगों को देख लेता है।

न हि बुद्ध्या समं किंचिद् विद्यते पुरुषे नृप।
तथा बलेन राजेन्द्र न समोऽस्तीह कश्चन।। शान्ति 157/12

राजन्! पुरुष में बुद्धि जैसी और कोई चीज नहीं है। संसार में बुद्धि के बल के समान और कोई शक्ति नहीं है।

प्रज्ञा प्रतिष्ठा भूतानां प्रज्ञा लाभः परो मतः।
प्रज्ञा निःश्रेयसी लोके प्रज्ञा स्वर्गो मतः सताम्।। शान्ति 180/2

प्राणियों का मुख्य सहारा बुद्धि है। बुद्धि ही सबसे बड़ा लाभ माना जाता है। प्रज्ञा से मोक्ष मिलता है। सज्जनों के अनुसार प्रज्ञा ही स्वर्ग है।

नागामिनमनर्थं हि प्रतिघातशतैरपि।
शक्नुवन्ति प्रतिव्योढुमृते बुद्धिबलान्नराः।। शान्ति 227/32

मनुष्य बुद्धि बल के सिवाय और किसी उपाय से सैकड़ों प्रहार करके भी आने वाले संकट को नहीं टाल सकते।

प्रज्ञा संयोजयत्यर्थैः प्रज्ञाश्रेयोऽधिगच्छति।
राजानो भुञ्जते राज्यं प्रज्ञया तुल्यलक्षणाः।। शान्ति 237/9

बुद्धि ही धन प्राप्त कराती है। बुद्धि से ही मनुष्य का कल्याण होता है। समान लक्षणों वाले राजाओं में भी जिनकी बुद्धि अधिक होती है वे राजा ही राज्य का उपभोग करते हैं और शासन करते हैं।

यथा कूर्म इहाङ्गानि प्रसार्य विनियच्छति।
एवमेवेन्द्रियग्रामं बुद्धिः सृष्ट्वा नियच्छति।। शान्ति 247/14

जैसे कछुआ अपने अंगों को फैलाकर समेट लेता है, वैसे ही बुद्धि सम्पूर्ण इन्द्रियों को विषयों की ओर फैलाकर फिर उन्हें वहाँ से हटा लेती है।

गुणान् नेनीयते बुद्धिर्बुद्धिरेवेन्द्रियाण्यपि।
मनः षष्ठानि सर्वाणि बुद्ध्यभावे कुतो गुणाः।। शान्ति 247/16

बुद्धि ही शब्द आदि गुणों को श्रोत्र आदि इन्द्रियों के पास बार-बार ले जाती है। बुद्धि ही मन सहित सम्पूर्ण इन्द्रियों को विषयों के पास बार-बार लाती है। यदि बुद्धि न रहे तो इन्द्रियों द्वारा शब्द आदि का अनुभव कैसे हो सकता है।

मनो विसृजते भावं बुद्धिरध्यवसायिनी।
हृदयं प्रियाप्रिये वेद त्रिविधा कर्मचोदना।। शान्ति 248/1

कोई कर्म करने में तीन प्रकार की प्रेरणा होती है। सबसे पहले मन संकल्प से तरह तरह के भाव उत्पन्न करता है। बुद्धि उन भावों का निश्चय करती है। फिर हृदय उनकी अनुकूलता या प्रतिकूलता अनुभव करता है।

बुद्धिरात्मा मनुष्यस्य बुद्धिरेवात्मनाऽऽत्मनि।
यदा विकुरुते भावं तदा भवति सा मनः।। शान्ति 248/3

बुद्धि मनुष्य की सारी इन्द्रियों की स्वामिनी है। इसलिये वह जीवात्मा के समान ही मनुष्य की आत्मा मानी गई है। बुद्धि ही भिन्न-भिन्न विषयों को ग्रहण करने के लिये विकृत हो जब नाना रूप धारण करती है तब वह मन बन जाती है।

इन्द्रियाणां पृथग्भावाद् बुद्धिर्विक्रियते ह्यतः।
शृण्वती भवति श्रोत्रं स्पृशती स्पर्श उच्यते।। शान्ति 248/4

इन्द्रियाँ अलग-अलग हैं। इसलिये उनकी क्रियाएँ भी अलग-अलग हैं। इन्द्रियों के लिये ही बुद्धि अनेक रूप धारण करती है। बुद्धि जब सुनती है तब कान कहलाती है और छूते समय त्वचा कहलाती है।

इन्द्रियाणि तु तान्याहुस्तेष्वदृश्योऽधितिष्ठति।
तिष्ठति पुरुषे बुद्धिस्त्रिषु भावेषु वर्तते।। शान्ति 248/6

बुद्धि के इन विकारों को ही इन्द्रियाँ कहते हैं। अदृश्य जीवात्मा इन सब में समाया हुआ है। बुद्धि उस जीवात्मा में स्थित होकर सात्त्विक, राजसिक और तामसिक इन तीन भावों में रहती है।

सेयं भावात्मिका भावांस्त्रीनेतानतिवर्तते।
सरितां सागरो भर्ता महावेलामिवोर्मिमान्।। शान्ति 248/8

जैसे नदियों का स्वामी सागर कभी-कभी अपने तट को लहरें उठने पर लांघ जाता है वैसे ही भावात्मिका बुद्धि चित्त की वृत्तियाँ रुक जाने पर इन सात्त्विक आदि तीनों भावों को ध्यान के समय लांघ जाती है।

यदा प्रार्थयते किंचित् तदा भवति सा मनः।। शान्ति 248/9

जब मनुष्य किसी वस्तु की इच्छा करता है तब उसकी बुद्धि ही मन के रूप में बदल जाती है।

सत्त्वमात्मा प्रसरति गुणान् वापि कदाचन।
न गुणा विदुरात्मानं गुणान् वेद स सर्वदा।। शान्ति 248/20
परिद्रष्टा गुणानां च परिस्त्रष्टा यथातथम्।
सत्त्वक्षेत्रयोरेतदन्तरं विद्धि सूक्ष्मयोः।। शान्ति 248/21

जीवात्मा कभी बुद्धि की ओर झुकता है और कभी गुणों की ओर। गुण; आत्मा को नहीं जानते, किन्तु आत्मा गुणों को जानता रहता है, क्योंकि आत्मा गुणों का द्रष्य और गुणों को उत्पन्न करने वाला भी है। यद्यपि बुद्धि और आत्मा दोनों ही सूक्ष्म हैं, किन्तु उन दोनों का यही अन्तर है कि बुद्धि दृश्य है और आत्मा द्रष्य है।

इष्टानिष्टविपत्तिश्च व्यवसायः समाधिता।
संशयः प्रतिपत्तिश्च बुद्धेः पञ्च गुणान् विदुः।। शान्ति 255/10

इष्ट और अनिष्ट, वृत्तियों का नाश, विचार, समाधान, सन्देह और निश्चय ये पाँच बुद्धि के गुण हैं।

तस्माद् बुद्धेर्हि रक्षार्थं सद्भिः पानं विवर्जितम्।। अनु 145 दा० पा०XI

श्रेष्ठ पुरुषों ने बुद्धि की रक्षा के लिये शराब पीना मना किया है।

बुद्धिमान पुरुष

धर्ममर्थं च कामं च त्रीनेतान् योऽनुपश्यति।। आदि 104/20
अर्थमर्थानुबन्धं च धर्मं धर्मानुबन्धनम्।
कामं कामानुबन्धं च विपरीतान् पृथक् पृथक्।। आदि 104/21
यो विचिन्त्य धिया धीरो व्यवस्यति स बुद्धिमान्।। आदि 104/22

जो मनुष्य धर्म, अर्थ और काम इन तीनों के बारे में विचार करता है और यह भी जानता है कि किस प्रकार अर्थ से अर्थ, धर्म से धर्म और काम से कामना की प्राप्ति होती है तथा अर्थ आदि का गलत प्रयोग करने से धर्म, अर्थ और काम नष्ट हो जाते हैं। जो पुरुष इन सभी बातों पर भली-भाँति विचार कर काम करता है वही बुद्धिमान है।

पुरतः कृच्छ्रकालस्य धीमाञ्जाग्रति पूरुषः।
स कृच्छ्रकालं सम्प्राप्य व्यथां नैवेति कर्हिचित्।। आदि 231/1

बुद्धिमान पुरुष संकट का समय आने से पहले ही सावधान हो जाता है और संकट आने पर कभी कष्ट नहीं उठाता।

यस्तु कृच्छ्रमनुप्राप्तं विचेता नावबुध्यते।
स कृच्छ्रकाले व्यथितो न श्रेयो विन्दते महत्।। आदि 231/2

जो मूर्ख संकट आने पर सावधान नहीं होता वह संकट आ जाने पर सुखी नहीं रह पाता।

सामर्थ्ययोगं सम्प्रेक्ष्य देशकालौ व्ययागमौ।। सभा 13/34
विमृश्य सम्यक् च धिया कुर्वन् प्राज्ञो न सीदति।। सभा 13/35

जो बुद्धिमान पुरुष अपनी शक्ति, साधन, समय, परिस्थिति, आय और व्यय पर अच्छी तरह विचार कर कार्य शुरू करता है, वह कष्ट नहीं उठाता।

न तेन स्थविरो भवति येनास्य पलितं शिरः।
बालोऽपि यः प्रजानाति तं देवाः स्थविरं विदुः।। वन 133/11

सिर के बाल सफेद हो जाने से कोई बूढ़ा नहीं हो जाता। आयु में बालक होने पर भी जो विद्वान् है उसी को देवता लोग वृद्ध मानते हैं।

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्।। वन 133/12

अधिक वर्षों की आयु से, बाल सफेद होने से, धन अधिक होने से या अधिक बन्धु-बान्धव हो जाने से कोई बड़ा नहीं होता। जो विद्वान् होता है वही बड़ा होता है।

अनर्थकेषु को भावः पुरुषस्य विजानतः।। वन 149/39

बुद्धिमान पुरुष का निरर्थक बातों के लिये आग्रह नहीं होता।

प्राज्ञास्तात न मुह्यन्ति कालेनापि प्रपीडिताः।। वन 191/28

प्रिय पुत्र! काल से सताये जाने पर भी बुद्धिमान पुरुष विवेक नहीं खो देते हैं।

बुद्धिमान् वृद्धसेवया।। वन 313/48

वृद्ध और अनुभवी पुरुषों की सेवा और संगति से पुरुष बुद्धिमान बनता है।

बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद् राष्ट्रं सराजकम्।। उद्योग 34/43

बुद्धिमान पुरुष द्वारा प्रयुक्त बुद्धि राजा और सारे राष्ट्र का नाश कर देती है।

प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जन्तोश्चिकित्सकाः सन्ति न चौषधानि।
न होममन्त्रा न च मङ्गलानि नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः।।

उद्योग 37/58

बुद्धि के तीर से मारे गये पुरुष का कोई वैद्य, दवाई, यज्ञ, मन्त्र-तन्त्र, मंगल कार्य, अथर्ववेद की कोई युक्ति या सिद्ध जड़ी-बूटी भी इलाज नहीं कर सकती।

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत्।
दीर्घो बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः।। उद्योग 38/8

बुद्धिमान पुरुष का बुरा करके यह सोचकर निश्चिन्त न हो जाय कि मैं उससे दूर हूँ। बुद्धिमान पुरुष के हाथ लम्बे होते हैं वह उनसे अपना बुरा करने वाले को नष्ट कर देता है।

प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत।
तानहं पण्डितं मन्ये विशेषा हि प्रसङ्गिनः।। उद्योग 38/44

भारत! जो लोग आवश्यक काम करते हैं और अधिक कामों में नहीं उलझते मैं उन्हें ही पण्डित मानता हूँ। व्यर्थ ही अधिक कामों में फंसने से संघर्ष हो जाता है।

आयत्यां प्रतिकारज्ञस्तदात्वे दृढनिश्चयः।
अतीते कार्यशेषज्ञोः नरोऽर्थैर्न प्रहीयते।। उद्योग 39/54

जो आने वाली विपत्ति को रोकने का उपाय जानता है, वर्त्तमान कर्त्तव्य का पालन दृढ़ निश्चय से करता है, पिछले बचे हुए काम को जानता है वह धनी रहता है।

तस्य प्रबोधः प्रज्ञैव प्रज्ञाचक्षुस्तरिष्यति।। उद्योग 72/34

कर्त्तव्य का बोध बुद्धि से होता है। बुद्धि के नेत्र पाकर मनुष्य संकट से उबर जाता है।

न हि बुद्ध्यान्वितः प्राज्ञो नीतिशास्त्रविशारदः।
निमज्जत्यापदं प्राप्य महतीं दारुणामपि।। शान्ति 138/40

नीतिशास्त्र का पारंगत बुद्धिमान व्यक्ति दारुण विपत्ति आने पर भी बच जाता है।

सर्वत्र रमते प्राज्ञः सर्वत्र च विराजते।
न विभीषयते कश्चिद् भीषितो न बिभेति च।। शान्ति 139/87

बुद्धिमान सब जगह आराम से रहता है और उसकी सभी जगह प्रतिष्ठा होती है। वह किसी से नहीं डरता और न ही किसी को डराता है।

नित्यं बुद्धिमतोऽप्यर्थः स्वल्पकोऽपि विवर्धते।
दाक्ष्येण कुर्वतः कर्म संयमात् प्रतितिष्ठति।। शान्ति 139/88

बुद्धिमान के पास थोड़ा सा भी धन सदा बढ़ता रहता है। वह होशियारी से काम करते हुए संयम के सहारे अपने पैर जमा लेता है।

ये तु बुद्ध्या बलिनस्ते भवन्ति बलीयसाः।। शान्ति 156/12

जो अधिक बुद्धिमान होते हैं वे शारीरिक बल वालों से अधिक शक्तिशाली होते हैं।

बुद्धिर्बुद्धिमतो याति तृणेष्विव हुताशनः।। शान्ति 157/11

बुद्धिमान की बुद्धि घास-फूस में फैलाने वाली आग की तरह सब जगह पहुँच जाती है।

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाप्रियम्।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः।। शान्ति 174/39

बुद्धिमान पुरुष को सुख-दुख या प्रिय-अप्रिय जैसा भी अवसर आ पड़े उसका हिम्मत के साथ सामना करना चाहिये।

किं नैवं जातु पुरुषः परेषां प्रेष्यतामियात्।। शान्ति 177/21

क्या कोई समझदार व्यक्ति दूसरों की गुलामी स्वीकार कर सकता है?

प्राज्ञस्य कर्माणि दुरन्वयानि न वै प्राज्ञो मुह्यति मोहकाले।।
शन्ति 226/19

बुद्धिमान पुरुष के कार्यों को लोग नहीं समझ सकते। बुद्धिमान पुरुष संकट के अवसर पर अपना विवेक नहीं खोता।

दूरतो गुणदोषौ हि प्राज्ञः सर्वत्र पश्यति।। शान्ति 235/19

बुद्धिमान व्यक्ति गुणों और दोषों को दूर से ही देख लेता है।

संस्कृतस्य हि दान्तस्य नियतस्य यतात्मनः।
प्राज्ञस्यानन्तरासिद्धिरिहलोके परत्र च।। शान्ति 235/24

जिस बुद्धिमान पुरुष के सभी संरकार किये गये हैं। जो नियमपूर्वक रहकर मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर चुका है ऐसे ज्ञानी पुरुष को इस लोक में और परलोक में जल्दी ही सफलता मिल जाती है।

क्रियावाञ्श्रद्दधानो हि दान्तः प्राज्ञोऽनसूयकः।
धर्माधर्मविशेषज्ञः सर्वं तरति दुस्तरम्।। शान्ति 235/28

धर्मानुसार काम करने वाला, श्रद्धालु, संयमी, बुद्धिमान, दोष न देखने वाला, धर्म और अधर्म को अच्छी तरह जानने वाला सब दुखों से पार हो जाता है।

मनोरथरथं प्राप्य इन्द्रियाख्य हयं नरः।
रश्मिभिर्ज्ञानसम्भूतैर्यो गच्छति स बुद्धिमान्।। शान्ति 291/1

इन्द्रियों के घोड़ों वाला मनरूपी (सूक्ष्म शरीर) रथ है। ज्ञानवाली मन की वृत्तियाँ (विचार) इन घोड़ों की लगाम हैं। इस रथ पर बैठकर जो व्यक्ति सवारी करता है वह बुद्धिमान होता है।

प्राज्ञ एको रमते ब्राह्माणानां प्राज्ञश्चैको बहुभिर्जोषमास्ते।
प्राज्ञ एको बलवान् दुर्बलोऽपि प्राज्ञ एषां कलहं नान्ववैति।।
शा० 299/42

ब्राह्मणों में बुद्धिमान ही परम सुख का अनुभव करता है। बुद्धिमान पुरुष बहुतों के साथ रहकर भी मौन रहता है। बुद्धिमान दुर्बल और अकेला होने पर भी बलवान होता है। बुद्धिमान पुरुष किसी के साथ कलह या विवाद नहीं करता।

राज्यं पृथिव्यां सर्वस्यामथवापि त्रिविष्टपे।
तथा बुद्धिरियं वेत्ति बुद्धिरेव धनं मम।। आश्व 33/4

सारी पृथ्वी पर और स्वर्ग में जो राज्य है उसे मेरी बुद्धि जानती है इसलिये बुद्धि ही मेरा धन है।

बुद्ध्यायं गम्यते मार्गः शरीरेण न गम्यते।
आद्यन्तवन्ति कर्माणि शरीरं कर्मबन्धनम्।। आश्व 33/7

ब्रह्म ज्ञान का रास्ता बुद्धि से ही प्राप्त किया जा सकता है शरीर से नहीं। सभी कर्म आदि अन्त वाले हैं तथा शरीर से कर्म किये जाते हैं।

अरणीं ब्राह्मणीं विद्धि गुरुरस्योत्तरारणिः।
तपःश्रुतेऽभिमथ्नीतो ज्ञानाग्निर्जायते ततः।। आश्व 34/3

बुद्धि को नीचे की अरणी और गुरु को ऊपर की अरणी समझना चाहिये। तपस्या और वेद-शास्त्रों के स्वाध्याय और श्रवण मनन द्वारा मन्थन करने पर बुद्धि और गुरु की अरणियों से ज्ञानाग्नि पैदा होती है।

भक्त

न हि कल्याणकृत कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।।

भीष्म 30/40; गीता 6/40

हे प्रिय अर्जुन! अपना कल्याण करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती।

न मे भक्तः प्रणश्यति।। भीष्म 33/31; गीता 9/31

मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।। भीष्म 36/13; गीता 12/13

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।

भीष्म 36/14; गीता 12/14

भगवान् का भक्त मुझे प्रिय है। ऐसा व्यक्ति किसी प्राणी से वैर या द्वेष नहीं करता। उसमें सबके प्रति मित्रता और दया की भावना होती है। वह अपने पराये के साथ ममता या द्वेष नहीं करता। वह अहंकारी नहीं होता। उसका मन, सुख और दुःख दोनों में ही एक जैसा रहता है। वह क्षमाशील होता है। वह अपने मन को वश में रखता है। वह सभी परिस्थितियों में सदा सन्तुष्ट रहता है। उसका निश्चय अटल होता है। उसका मन और बुद्धि मुझ ईश्वर के चिन्तन में ही लगी रहती है।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजेत च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।। भीष्म 36/15; गीता 12/15

जिस व्यक्ति के आचरण से लोग परेशान नहीं होते और जो व्यक्ति लोगों के बीच रहकर बेचैन नहीं होता। जो हर्ष, क्रोध, भय और उत्तेजना से रहित होता है वह ईश्वर को प्रिय होता है।

अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। भीष्म 36/16; गीता 12/16

वह अपने लिये कोई वस्तु नहीं चाहता। वह मन, वचन, कर्म से पवित्र होता है। वह कर्म करने में चतुर होता है। वह उदासीन रहता है। उसे कोई कष्ट अनुभव नहीं होता। वह संसार के किसी भी पचड़े में नहीं पड़ता। ऐसा भक्त मुझे प्रिय होता है।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभ परित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः।। भीष्म 36/17; गीता 12/17

वह हर्ष, द्वेष, शोक, इच्छा, शुभ, अशुभ इन सब बातों से ऊपर रहता है। ऐसा परमभक्त मुझे अच्छा लगता है।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः।। भीष्म 36/18; गीता 12/18

शत्रु-मित्र, मान-अपमान, गर्मी-सर्दी, सुख-दुःख इन सब द्वन्द्वों के बीच वह एक जैसा रहता है। किसी भी तरह का लगाव या आसक्ति उसे छूती तक नहीं।

तुल्य निन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः।।

भीष्म 36/19; गीता 12/19

उसके लिये निन्दा और प्रशंसा बराबर होती है। वह प्रायः मौन रहता है। उसे जो कुछ मिल जाता है उससे सन्तोष करता है। वह अपने लिये घर नहीं बनाता। उसकी बुद्धि जिस काम में लग जाती है उसमें लगी रहती है।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।। भीष्म 36/20; गीता 2/20

जो श्रद्धालु भक्त ऊपर कही धर्ममय और अमृतमय बातों पर ठीक प्रकार से आचरण करते हैं और मेरा भजन करते हैं वे मुझे बहुत प्रिय हैं।

सेवाऽऽश्रितेन मनसा वृत्तिहीनस्य शस्यते।। शा० 291/2

जो मनुष्य इन्द्रियों की बाह्यवृत्ति को रोककर अर्थात् मन की वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाकर ईश्वर की शरण में गये मन से उपासना करता है उसकी भक्ति श्रेष्ठ होती है।

भय

अभियुक्तोऽप्रमत्तश्च प्राग्भयाद् भीतवच्चरेत्।। शान्ति 138/209

मनुष्य को उद्योगशील और सावधान रहकर भय आने से पहिले भयभीत की तरह आचरण करना चाहिये।

भीतवत् संनिधिः कार्यः प्रतिसन्धिस्तथैव च।। शा० 138/209
भयादुत्पद्यते बुद्धिरप्रमत्ताभियोगजा।

बलवान शत्रु के पास डरे हुए की तरह जाना चाहिये। उससे डर कर उसके साथ सन्धि भी कर लेनी चाहिये। सावधान पुरुष के उद्योगशील बने रहने पर भय का अवसर आने पर स्वयं ही संकट से बचाने वाली बुद्धि पैदा हो जाती है।

न भयं विद्यते राजन् भीतस्यानागते भये।। शान्ति 138/210
अभीतस्य च विश्रम्भात् सुमहज्जायते भयम्।

राजन्! जो मनुष्य संकट या भय आने से पहिले ही उस संकट के प्रति सशंक रहता है उसके सामने संकट नहीं आ पाता है। किन्तु निश्चिन्त और विश्वास कर लेने वाले को बड़े संकट का सामना करना पड़ता है।

अभीश्चरति यो नित्यं मन्त्रोऽदेयः कथंचन।। शा० 138/211
अविज्ञानाद्धि विज्ञातो गच्छेदास्पददर्शिषु।

जो मनुष्य निर्भय होकर रहता है उसे कभी कोई सलाह नहीं देनी चाहिये। भय को न समझने वाले की अपेक्षा भय को समझने वाला ठीक है क्योंकि वह संकट से बचने के लिये उपाय जानने वालों के पास जाकर सलाह करता है।

न तत्सदः सत्परिषद् सभा च सा प्राप्य यां न कुरुते सदा भयम्।
धर्मतत्त्वमवगाह्य बुद्धिमान् योऽभ्युपैति स धुरंधरः पुमान्।।
शान्ति 226/18

न कोई ऐसी सभा है, न सज्जनों की कोई परिषद् है और न कोई ऐसा

जनसमाज है जिसमें कोई मनुष्य कभी न डरे। जो बुद्धिमान व्यक्ति धर्म का तत्त्व भली-भाँति समझ कर उसे अपनाता है वही धुरंधर होता है।

भाई

ज्येष्ठस्तातो भवति वै ज्येष्ठो मुञ्चति कृच्छ्रतः।। आदि 231/4

बड़ा भाई पिता के समान होता है। बड़ा भाई ही संकट से छुटकारा दिलाता है।

न गुरावकृतप्रज्ञे शक्यं शिष्येण वर्तितुम्।
गुरोर्हि दीर्घदर्शित्वं यत्, तच्छिष्यस्य भारत।। अनु 105/3

भरतनन्दन! यदि गुरु या बड़े भाई का आचार-विचार शुद्ध नहीं होता तो उसके शिष्य या छोटे भाई उसकी आज्ञा नहीं मानते। गुरु और बड़े भाई के दीर्घदर्शी या समझदार होने पर शिष्य और छोटे भाई भी समझदार बनते हैं।

अन्धः स्यादन्धवेलायां जडः स्यादपि वा बुधः।
परिहारेण तद् ब्रूयाद् यस्तेषां व्यतिक्रमः।। अनु 105/4

बड़े भाई को अवसर के अनुसार अन्धे, मूर्ख या बुद्धिमान जैसा आचरण करना चाहिये। अर्थात् यदि छोटे भाई से कोई गलती या अपराध हो जाय तो उसे देखते हुए भी वह न देखे। जानकर भी अनजान बना रहे, किन्तु छोटे भाई से ऐसी बात करे जिससे वह सही रास्ते पर आ जाये।

प्रत्यक्षं भिन्नहृदया भेदयेयुः कृतं नराः।
श्रियाभितप्ताः कौन्तेय भेदकामांस्तथारयः।। अनु 105/5

युधिष्ठिर! यदि बड़ा भाई प्रत्यक्षरूप से अपराध का दण्ड देता है तो उसके छोटे भाइयों का हृदय फट जाता है। उसके छोटे भाई बड़े के दुर्व्यवहार की बात लोगों से करने लगते हैं। तब उनके ऐश्वर्य को देखकर जलने वाले उनके शत्रु भाइयों में मतभेद पैदा करने का प्रयत्न करने लगते हैं।

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः।
हन्ति सर्वमपि ज्येष्ठः कुलं यत्रावजायते।। अनु 105/6

बड़ा भाई अपनी नीति और व्यवहार से कुल की उन्नति करता है या कुल को नष्ट कर देता है। यदि बड़े भाई का आचार व्यवहार गलत होता है तो वह सारे कुल का नाश कर देता है।

अथ यो विनिकुर्वीत ज्येष्ठो भ्राता यवीयसः।
अज्येष्ठः स्यादभागश्च नियम्यो राजभिश्च सः।। अनु 105/7

जो बड़ा भाई अपने छोटे भाई के साथ अन्याय करता है वह न तो बड़ा भाई कहलाने योग्य होता है और न ही बड़े भाई की हैसियत से अपना हिस्सा पाने का अधिकारी होता है। राजा को ऐसे बड़े भाइयों को नियन्त्रित करना चाहिये।

सर्वे चापि विकर्मस्था भागं नार्हन्ति सोदराः।
नाप्रदाय कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतुकम्।। अनु 105/10

यदि सगे छोटे भाई भी बुरे कामों में फंसे हो तो उन्हें पैतृक धन पाने का अधिकार नहीं रहता। छोटे भाइयों के बीच पैतृक सम्पत्ति का उचित बंटवारा किये बिना बड़े भाई को पैतृक धन नहीं लेना चाहिये।

अनुपघ्नन् पितुर्दायं जङ्घाश्रमफलोऽध्वगः।
स्वयमीहितलब्धं तु नाकामो दातुमर्हति।। अनु 105/11

यदि बड़ा भाई पैतृक सम्पत्ति को नष्ट किये बिना ही अपनी मेहनत से विदेश में धन कमाता है तो वह उसकी निजी कमाई होती है। यदि वह न चाहे तो इस सम्पत्ति से अपने भाइयों को हिस्सा न दे।

भ्रातृणामविभक्तानामुत्थानमपि चेत् सह।
न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात् कदाचन।। अनु 105/12

यदि भाइयों के बीच बंटवारा न हुआ हो और सभी भाइयों ने मिलकर कमाई की हो। यदि वे पिता के जीते जी अलग होना चाहते हों तो पिता को किसी भाई को अधिक हिस्सा न देकर सबको समान भाग देना चाहिये।

न ज्येष्ठो वावमन्येत दुष्कृतः सुकृतोऽपि वा।
यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयश्चेत् तत् तदाचरेत्।। अनु 105/13

बड़ा भाई चाहे अच्छा काम करे या बुरा, छोटे भाई को उसका अपमान नहीं करना चाहिये। यदि स्त्री या छोटे भाई बुरे रास्ते पर चलने लगें तो उनकी भलाई का कोई उपाय करना चाहिये।

ज्येष्ठो भ्राता पितृसमो मृते पितरि भारत।। अनु 105/16

भरतनन्दन! पिता के मरने के बाद बड़ा भाई पिता के समान होता है।

स ह्येषां वृत्तिदाता स्यात् स चैतान् प्रतिपालयेत्।
कनिष्ठास्तं नमस्येरन् सर्वे छन्दानुवर्तिनः।। अनुशासन 105/17

तमेव चोपजीवेरन् यथैव पितरं तथा।

बड़े भाई को अपने छोटे भाइयों की आजीविका का तथा उनके पालन–पोषण का प्रबन्ध करना चाहिये। छोटे भाइयों को बड़े भाई का आदर करना चाहिये और उसकी इच्छा के अनुसार चलना चाहिये। उन्हें बड़े भाई को पिता मानकर उसके आश्रय में रहना चाहिये।

भाग्य

सुखं हि जन्तुर्यदि वापि दुःखं दैवाधीनं विन्दते नात्मशक्त्या।
तस्माद् दिष्टं बलवन्मन्यमानो न संज्वरेन्नापि हृष्येत् कथंचित्।।

आदि 89/8

किसी भी प्राणी को सुख या दुःख भाग्य के कारण ही मिलता है अपनी शक्ति से नहीं। इसलिये भाग्य को बलवान मानकर मनुष्य को दुखी या सुखी नहीं होना चाहिये।

न विधिं ग्रसते प्रज्ञा प्रज्ञां तु ग्रसते विधिः।
विधिपर्यागतानर्थान् प्राज्ञो न प्रतिपद्यते।। आदि 117/10

बुद्धि, भाग्य को नहीं लांघ सकती किन्तु प्रारब्ध बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है। प्रारब्ध से मिलने वाली वस्तुओं को बुद्धिमान भी नहीं जान सकता।

दैवे पुरुषकारे च लोकोऽयं सम्प्रतिष्ठितः।
तत्र दैवं तु विधिना कालयुक्तेन लभ्यते।। आदि 122/21

यह जगत् भाग्य पर और पुरुषार्थ पर चल रहा है। ठीक अवसर पर पुरुषार्थ या प्रयत्न करने से ही भाग्य का फल मिलता है।

दिष्टस्य ग्रन्थिरनिवर्तनीया स्वकर्मणा विहितं नेह किंचित्।। आदि 197/2

भाग्य का विधान बदला नहीं जा सकता इसे अपना प्रयत्न भी नहीं बदल सकता।

दैवं च परमं मन्ये पौरुषं चाप्यनर्थकम्।। आदि 199/12; सभा 47/36

मैं भाग्य को ही बलवान मानता हूँ पुरुष का प्रयत्न व्यर्थ होता है।

विधिपूर्वं हि सर्वस्य दुःखं वा यदि वा सुखम्।। आदि 203/15

भाग्य के अनुसार ही मनुष्य सुख या दुःख पाता है।

धात्रा तु दिष्टस्य वशे किलेदं सर्वं जगच्चेष्टति न स्वतन्त्रम्।।

सभा 57/4, 14

विधाता का यह संसार दैव के ही अधीन है, स्वतन्त्र नहीं है।

दैवं हि प्रज्ञां मुष्णाति चक्षुस्तेज इवापतत्।
धातुश्च वशमन्वेति पाशैरिव नरः सितः।। सभा 58/18

जैसे तीव्र प्रकाश की चकाचौंध से आँखें नहीं देख पाती वैसे ही भाग्य, मनुष्य की बुद्धि को नष्ट कर देता है। भाग्य के वश में हुआ मनुष्य रस्सी में बंधे हुए की तरह घूमता रहता है।

धातुर्नियोगाद् भूतानि प्राप्नुवन्ति शुभाशुभम्।। सभा 76/3

सभी प्राणी भाग्य की प्रेरणा से अच्छा या बुरा फल पाते हैं।

यस्मादभावी भावी च मनुष्यः सुखदुःखयोः।
आगमे यदि वापाये न तत्र ग्लयपेन्मनः।। वन 179/26

मनुष्य सुख और दुःख को पाने या न पाने के बारे में कुछ नहीं कर सकता इसलिये उसे मन में दुःख नहीं करना चाहिये।

दैवं पुरुषकारेण को वञ्चयितुमर्हति।
दैवमेव परं मन्ये पुरुषार्थो निरर्थकः।। वन 179/27

कोई भी मनुष्य अपने पुरुषार्थ से भाग्य को ठग नहीं सकता, अतः मैं भाग्य ही को शक्तिशाली मानता हूँ उसके आगे पुरुषार्थ व्यर्थ हो जाता है।

नापदामस्ति मर्यादा न निमित्तं न कारणम्।
धर्मस्तु विभजत्यर्थमुभयोः पापपुण्ययोः।। वन 312/1

आपत्तियों की कोई सीमा नहीं है न ही उनका कोई कारण दिखाई देता है। पहले किये हुए पाप और पुण्य के कर्म ही प्रारब्ध के रूप में सुख और दुःख देते रहते हैं।

अनित्या किल मर्त्यानामर्थसिद्धिर्जयाजयौ।। विराट 20/3

मनुष्यों को धन आदि का मिलना या जय-पराजय सदा नहीं रहती।

चक्रवत्परिवर्तन्ते ह्यर्थाश्च व्यसनानि च।। विराट 20/4

जीवन में सम्पत्ति और विपत्ति पहिये के चलने की तरह आती जाती रहती है।

न दैवस्यतिभारोऽस्ति न चैवास्यातिवर्तनम्।। विराट 20/7

भाग्य के लिये कुछ भी करना कठिन नहीं है। दैव का विधान लांघा नहीं जा सकता।

अप्राज्ञो वा पाण्डव युध्यमानोऽधर्मज्ञो वा भूतिमथोऽभ्युपैति।
प्रज्ञावान् वा बुध्यमानोऽपि धर्मं संस्तम्भाद् वा सोऽपि भूतेरपैति।।

उद्योग 27/21

पाण्डव! अज्ञानी और पापी भी युद्ध करके ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है किन्तु बुद्धिमान और धर्मज्ञ पुरुष दैवी बाधा के कारण ऐश्वर्य से हाथ धो बैठता है।

मन्ये परं कर्म दैवं मनुष्यात्।। उद्योग 32/13

मैं यही मानता हूँ कि मनुष्य के पुरुषार्थ की अपेक्षा भाग्य का विधान ही बलवान है।

यावत् परः कामयतेऽतिवेलं तावन्नरोऽयं लभते प्रशंसाम्।। उद्योग 32/14

जब तक विधाता चाहता है तभी तक मनुष्य प्रशंसा पाता है।

न संशयो नास्ति मनुष्यकारः।। उद्योग 32/23

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाग्य के सामने मनुष्य का पुरुषार्थ कुछ भी नहीं है।

सुमन्त्रितं सुनीतं च न्यायतश्चोपपादितम्।
कृतं मानुष्यकं कर्म दैवेनापि विरुध्यते।। उद्योग 77/8

भली-भाँति विचार कर नीतिपूर्वक और न्यायपूर्वक किये हुए मनुष्य के कर्म भी दैव वश सफल नहीं हो पाते।

सर्वथा भागधेयानि स्वानि प्राप्नोति मानवः।। उद्योग 175/33

मनुष्य के भाग्य में जो होता है उसे वही मिलता है।

दैवं पुरुषकारेण को निवर्तितुमुत्सहेत्।। उद्योग 186/18

भाग्य के विधान को पुरुषार्थ के द्वारा कौन टाल सकता है?

सम्प्रयुक्तः किलैवायं दिष्टैर्भवति पूरुषः।। द्रोण 24/2

निश्चय ही मनुष्य दैव की प्रेरणा से काम करता है।

युक्त एव हि भाग्येन ध्रुवमुत्पद्यते नरः।
स तथाऽऽकृष्यते तेन न यथा स्वयमिच्छति।। द्रोण 24/5

निश्चय ही मनुष्य भाग्य के साथ ही जन्म लेता है। उसका भाग्य उसे वैसी अवस्था में खींच कर ले जाता है जिसमें वह नहीं जाना चाहता।

दैवोपसृष्टः पुरुषो यत् कर्म कुरुते क्वचित्।
कृतं कृतं हि तत्कर्म दैवेन विनिपात्यते।। द्रोण 152/26

दुर्भाग्य का मारा हुआ मनुष्य जो भी काम करता है उसके किये हुए काम को भाग्य उलट देता है।

यत् कर्तव्यं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
तत् कार्यमविशंकेन सिद्धिर्दैवे प्रतिष्ठिता।। द्रोण 152/27

मनुष्य को सदा उद्योगशील रहकर अपना कर्त्तव्य काम निःशंक मन से करना चाहिये किन्तु काम की सफलता भाग्य के अधीन होती है।

दैवं प्रमाणं सर्वस्य सुकृतस्येतरस्य वा।
अनन्यकर्म दैवं हि जागर्ति स्वपतामपि।। द्रोण 152/32

अच्छे या बुरे हमारे सभी कामों पर दैव का वश बना रहता है। भाग्य ही हमारे कर्मों का फल देता है। हमारे पहिले किये हुए कर्म ही भाग्य हैं। भाग्य तो हमारे सो जाने पर भी जागता रहता है।

दिष्टे न व्यथते बुधः।। कर्ण 2/24

दैववश जो दुःख मिलता है उससे बुद्धिमान व्यक्ति परेशान नहीं होते हैं।

यस्मादभावी भावी वा भवेदर्थो नरं प्रति।
अप्राप्तौ तस्य वा प्राप्तौ न कश्चिद् व्यथते बुधः।। कर्ण 2/25

पुरुष को भाग्यवश वांछित पदार्थ मिल भी जाता है और कभी नहीं मिलता। इसलिये इष्ट वस्तु के मिलने या न मिलने से बुद्धिमान पुरुष परेशान नहीं होते हैं।

दैवमेव परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम्।। कर्ण 9/3

मैं तो भाग्य को ही सब कुछ मानता हूँ। पुरुषार्थ व्यर्थ है, उसे धिक्कार है।

अन्यथा चिन्तितं कार्यमन्यथा तत् तु जायते।। कर्ण 9/20

अहो नु बलवद् दैवं कालश्च दुरतिक्रमः।। कर्ण 9/21

किसी काम के बारे में जो बात सोची जाती है वह पूरी नहीं हो पाती। इसलिये भाग्य ही बलवान है और काल को कोई भी नहीं रोक सकता।

दिष्टं न शक्यं व्यतिवर्तितुं वै।। कर्ण 37/25

दैव या भाग्य के विधान को कोई भी नहीं रोक सकता।

विधिश्च बलवानत्र पौरुषं तु निरर्थकम्।। शल्य 1/17

इस संसार में भाग्य ही बलवान है। पुरुषार्थ तो व्यर्थ ही है।

भागधेय समायुक्तो ध्रुवमुत्पद्यते नरः।। शल्य 2/46

निश्चय ही मनुष्य अपना अपना भाग्य लेकर उत्पन्न होता है।

न च दैवकृतो मार्गः शक्यो भूतेन केनचित्।
घटतामपि चिरं कालं नियन्तुमिति मे मतिः।। स्त्री 8/19

बहुत दिनों तक प्रयत्न करने पर भी कोई प्राणी भाग्य का विधान नहीं बदल सकता।

अनतिक्रमणीयो हि विधी राजन् कथंचन।। स्त्री 8/43

राजन्! भाग्य या काल के विधान को टाला या बदला नहीं जा सकता।

अप्रियैः सह संयोगो विप्रयोगश्च सुप्रियैः।
अर्थानर्थौ सुखं दुःखं विधानमनुवर्तते।। शान्ति 28/18

अच्छी न लगने वाली वस्तुओं के साथ संयोग और अच्छा लगने वालों से बिछुड़ना, अर्थ-अनर्थ, सुख-दुःख ये सब भाग्य के अनुसार ही मिलते हैं।

न दिष्टमप्यतिक्रान्तुं शक्यं बुद्ध्या बलेन वा।। आश्व 53/16

प्रारब्ध के विधान को बुद्धि से या शारीरिक शक्ति से बदला नहीं जा सकता।

आश्रमवास 10/29

भिक्षा

विधूमे न्यस्तमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने।
अतीतपात्रसंचारे भिक्षां लिप्सेत वै मुनिः।। शा० 278/9

जब रसोई से धुआँ निकलना बन्द हो जाय। अनाज आदि कूटना बन्द कर दिया जाये। चूल्हे की आग ठण्डी पड़ जाय, घर के लोग भोजन कर चुके हों और रसोई के तथा खाने के बर्त्तनों का प्रयोग बन्द हो जाय तब मुनि को भिक्षा लेनी चाहिये।

प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रालाभेष्वनादृतः।
अलाभे न विहन्येत लाभश्चैनं न हर्षयेत्।। शा० 278/10

संन्यासी को अपने जीवन निर्वाह का ध्यान रखना चाहिये। भरपेट भोजन मिलने की इच्छा नहीं करनी चाहिये। यदि भिक्षा न मिले तो दुखी नहीं होना चाहिये और यदि मिल जाये तो प्रसन्न नहीं होना चाहिये। (आश्व 46/20)

न चान्नदोषान् निन्देत न गुणानभिपूज्येत्।। शा० 278/12

भिक्षा में प्राप्त भोजन की निन्दा या प्रशंसा नहीं करनी चाहिये।

यात्रार्थी कालमाकाङ्क्षंश्चरेद् भैक्ष्यं समाहितः।
लाभं साधारणं नेच्छेन्न भुञ्जीताभिपूजितः।। आश्व 46/21

संन्यासी को जीवन निर्वाह के लिये भिक्षा मांगनी चाहिये। उचित समय तक भिक्षा मिलने की प्रतीक्षा करनी चाहिये। मन को एकाग्र रखना चाहिये। साधारण वस्तुएँ पाने की भी इच्छा नहीं करनी चाहिये। जहाँ बहुत आदर मिलता हो वहाँ पर भोजन नहीं करना चाहिये।

भीम

श्रुत्वैव शब्दं हि वृकोदारस्य मुञ्चन्ति सैन्यानि शकृत् समूत्रम्।।
वन 119/14

भीम का सिंहनाद सुनकर ही शत्रु के सैनिकों का मल-मूत्र निकल जाता है।

न ग्लानिर्न च कातर्यं न वैक्लव्यं न मत्सरः।
कदाचिज्जुषते पार्थमात्मजं मातरिश्वनः।। वन 160/34

वायुपुत्र कुन्ती कुमार भीम को कभी ग्लानि, कायरता, बेचैनी और ईर्ष्या नहीं होती।

अमर्षणश्च कौन्तेयो दृढवैरश्च पाण्डव।
अनर्महासी सोन्मादस्तिर्यक्प्रेक्षी महास्वनः।। उद्योग 51/5

कुन्ती कुमार पाण्डुपुत्र भीम सहनशील नहीं है, वह अपने वैरी का सदा ध्यान रखता है, उसकी हंसी, हंसी नहीं होती, वह उद्धत स्वभाव वाला है, वह टेढ़ी नजर से देखता है और गम्भीर गर्जना करता है।

अस्त्रे द्रोणार्जुनसमं वायुवेगसमं जवे।
महेश्वर समं क्रोधे को हन्याद् भीममाहवे।। उद्योग 51/14

भीम अस्त्र चलाने में द्रोणाचार्य और अर्जुन के समान है, उसकी चाल हवा जैसी तेज है, उसका क्रोध शिव के समान है। युद्ध में उसे कौन मार सकता है।

निष्ठुरो रोषणोऽत्यर्थं भज्येतापि न संनमेत्।
तिर्यक्प्रेक्षी संहतभ्रूः कथं शाम्येद् वृकोदरः।। उद्योग 51/18

भीमसेन क्रूर और अत्यन्त क्रोधी है, वह झुक नहीं सकता चाहे टूट भले ही जाय। वह टेढ़ी निगाह से देखता है। क्रोध के कारण उसकी भौहें आपस में गुंथी रहती हैं। ऐसा भीमसेन कैसे शान्त हो सकता है।

शूरस्तथाप्रतिबलो गौरस्ताल इवोन्नतः।
प्रमाणतो भीमसेनः प्रादेशेनाधिकोऽर्जुनात्।। उद्योग 51/19

भीम वीर है, उसके बराबर दूसरा कोई वीर नहीं है। गोरे रंग का भीम ताड़ जैसा लम्बा है। उसकी लम्बाई अर्जुन से एक बालिश्त अधिक है।

जवेन वाजिनोऽत्येति बलेनात्येति कुञ्जरान्।
अव्यक्तजल्पी मध्वक्षः मध्यमः पाण्डवो बली।। उद्योग 51/20

भाइयों के बीच वाला भीम बहुत बलशाली है। वह दौड़ में घोड़ों को पछाड़ देता है। उस में हाथियों से भी अधिक शक्ति है। उसकी आँखों का रंग शहद जैसा है। वह साफ नहीं बोलता।

पराक्रमे शक्रसमो मातरिश्वसमो बले।
महेश्वरसमः क्रोधेः भीमः प्रहरतां वरः।। उद्योग 90/24

भीम, पराक्रम में इन्द्र के समान, बल में वायु के समान और क्रोध में शिव के समान है। वह प्रहार करने वाले योद्धाओं में श्रेष्ठ है।

वृकोदरो गजशततुल्यविक्रमः।। द्रोण 2/16

भीमसेन का पराक्रम सौ हाथियों के बराबर है।

युगान्ते चान्तको राजन् जामदग्न्यश्च वीर्यवान्।
रथस्थो भीमसेनश्च कथ्यन्ते सदृशस्त्रयः।। द्रोण 34/4

राजन्! प्रलयकाल के यमराज, पराक्रमशील परशुराम और रथ में सवार भीमसेन ये तीनों एक जैसे ही हैं।

मध्यमः पाण्डवस्तीक्ष्णो भीमसेनो महाबलः।
प्रतिज्ञातं तेनोग्रं भज्येतापि न संनमेत।। शान्ति 5/14

बीच का पाण्डव भीमसेन बहुत शक्तिशाली है। उसका स्वभाव बड़ा उग्र है। उसने भयंकर प्रतिज्ञा की है कि वह टूट सकता है किन्तु झुक नहीं सकता।

युद्धे क्षत्रियधर्मे च निरतोऽयं वृकोदरः।। आश्रमवास 13/8

भीमसेन क्षत्रियधर्म का पालन करने में और युद्ध में प्रायः लगे रहते हैं।

भूख

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा।
क्षुत् स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु दुर्लभा।। उद्योग 34/50

गरीब लोग सदा स्वादिष्ट भोजन करते हैं क्योंकि भूख उनके भोजन में स्वाद पैदा कर देती है और वह भूख धनियों के पास नहीं होती।

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि दरिद्राणां महीपते।। उद्योग 34/51

राजन्! संसार में धनियों में भोजन खाने और उसे पचाने की शक्ति प्रायः नहीं होती किन्तु गरीबों के पेट में लकड़ी भी हजम हो जाती है।

क्षुधितः कलुषं यातो नास्ति ह्रीरशनार्थिनः।। शान्ति 141/51

भूखा मनुष्य पाप का कर्म कर बैठता है। अपना पेट भरने की इच्छा वाले मनुष्य को कोई लज्जा नहीं रहती।

बालानां क्षुद् बलवती।। आश्व 80/61

बच्चों को बहुत भूख लगती है।

क्षुधापरिगतज्ञानो धृतिं त्यजति चैव ह।
बुभुक्षां जयते यस्तु स स्वर्गं जयते ध्रुवं।। आश्व 90/91

भूख से ज्ञान नष्ट हो जाने के कारण मनुष्य धैर्य खो देता है। जो व्यक्ति भूख को जीत लेता है वह निश्चय ही स्वर्ग को प्राप्त होता है।

भूमि

भूमौ च जायते सर्वं भूमौ सर्वं विनश्यति।
भूमि प्रतिष्ठा भूतानां भूमिरेव परायणम्।। भीष्म 4/20

सब कुछ भूमि से उत्पन्न होता है और भूमि पर ही नष्ट हो जाता है। भूमि ही सब प्राणियों के जीवन का आधार है। भूमि ही सबका महान् आश्रय है।

यस्य भूमिस्तस्य सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
तत्रातिगृद्धा राजानो विनिघ्नन्तीतरेतरम्।। भीष्म 4/21

भूमि जिसके अधिकार में होती है वह संसार के सारे चर और अचर प्राणियों और पदार्थों का स्वामी होता है। भूमि पर अधिकार के लिये लोभी राजा एक-दूसरे को मारते हैं।

यथागुणबलं चापि त्रिवर्गस्य महाफलम्।
दुह्येत धेनुः कामधुग् भूमिः सम्यगनुष्ठिता।। भीष्म 9/71

यदि अपने गुणों और बल से इस पृथ्वी का भली-भाँति पालन किया जाय तो यह कामनाओं को पूरी करने वाली कामधेनु बनकर धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का महान फल देती है।

पिता भ्राता च पुत्राश्च एवं द्यौश्च नरपुङ्गव।
भूमिर्भवति भूतानां सम्यगच्छिद्रदर्शना।। भीष्म 9/76

नरश्रेष्ठ! यदि भूमि का पूरी तरह ज्ञान हो जाय तो यह पृथ्वी; पिता, भाई, पुत्र, आकाश और स्वर्ग लोक सभी कुछ बन जाती है।

पृथिवी सर्वभूतानां जनित्री तद्विधाः स्त्रियः।
पुमान् प्रजापतिस्तत्र शुक्रं तेजोमयं विदुः।। शान्ति 190/15

भूमि सभी प्राणियों को उत्पन्न करती है। स्त्रियाँ भी पृथ्वी की तरह सन्तान पैदा करती हैं। पुरुष ही प्रजापति के समान है और पुरुष का वीर्य तेज है।

अचला ह्यक्षया भूमिर्दोग्ध्री कामानिहोत्तमान्।। अनुशासन 62/2

पृथ्वी; अचल है और कभी नष्ट नहीं होती। वह सारे उत्तम भोग्य पदार्थ देती है।

भूमौ जायन्ति पुरुषा भूमौ निष्ठां व्रजन्ति च।
चतुर्विधो हि लोकोऽयं योऽयं भूमिगुणात्मकः।। अनु० 62/49

सब मनुष्य पृथ्वी पर जन्म लेते हैं और पृथ्वी में ही लीन हो जाते हैं। अण्डज, जरायुज, स्वेदज और उद्भिज इन चारों प्रकार के प्राणियों का शरीर भी पृथ्वी से ही बनता है।

एषा माता पिता चैव जगतः पृथिवीपते।
नानया सदृशं भूतं किंचिदस्ति जनाधिप।। अनुशासन 62/50

राजन्! यह पृथ्वी संसार की माता-पिता है। इसके सिवाय कोई दूसरा भूत नहीं है।

नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति मातृसमो गुरुः।
नास्ति सत्यसमो धर्मो नास्ति दानसमो निधिः।। अनुशासन 62/92

भूमि से बढ़कर कोई दान नहीं है। माता से बढ़कर कोई गुरु नहीं है। सत्य के समान कोई धर्म नहीं है और दान से बढ़कर कोई खजाना नहीं है।

न हि भूमिप्रदानाद् वै दानमन्यद् विशिष्यते।
न चापि भूमिहरणात् पापमन्यद् विशिष्यते।। आश्व 92 दा० पा० अ० VII

भूमिदान से बढ़कर कोई और दान नहीं है। किसी की भूमि छीनने से बढ़कर कोई और पाप नहीं है।

त्रिंशद्दण्डप्रमाणेन प्रमितं सर्वतो दिशम्।
प्रत्यक् प्रागपि राजेन्द्र तत् तथा दक्षिणोत्तरम्।
गोकर्णं तद्विदः प्राहुः प्रमाणं धरणेर्नृप।। आश्व 92 दा० पा० अ० VII

पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण चारों ओर तीस दण्ड (चार हाथ या एक पुरुष के बराबर एक दण्ड होता है) नापने से जितनी भूमि होती है उसको एक गोकर्ण भूमि माना जाता है।

भोग

मात्रा स्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।। भीष्म 26/14; गीता 2/14

विषय भोगों के साथ इन्द्रियों का संयोग होने से सुख-दुःख, गर्मी-सर्दी आदि का अनुभव होता है। ये भोग आते हैं, चले जाते हैं, अतः अनित्य हैं। हे अर्जुन! तू इन द्वन्द्वों को सहन कर।

समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।। भीष्म 26/15 गीता 2/15

धीर पुरुष सुख-दुःख आदि आने पर विचलित नहीं होता या घबराता नहीं है। ऐसा धैर्यशाली व्यक्ति अमरतत्व या मोक्ष योग्य होता है।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।।

भीष्म 26/62; गीता 2/62

क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।

भीष्म 26/63; गीता 2/63

विषय भोगों के बारे में सोचते रहने वाले मनुष्य को भोगों के प्रति लगाव उत्पन्न हो जाता है। लगाव होने पर मन में कामना या इच्छा होती है कि मैं इन भोगों से सुख प्राप्त करूँ। जब मनुष्य की यह कामना पूरी नहीं हो पाती तब उसे क्रोध आ जाता है। क्रोध आने पर उसे भले-बुरे की समझ नहीं रहती। समझ या विवेक की शक्ति नष्ट हो जाने पर उसकी बुद्धि काम नहीं कर पाती और बुद्धि भ्रष्ट होने पर मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।। भीष्म 29/22; गीता 5/22

इन्द्रियों और विषयों के सम्पर्क से मिलने वाले भोग यद्यपि अच्छे लगते हैं किन्तु अन्त में इनसे दुःख ही मिलता है। ये सांसारिक भोग और ऐश्वर्य मिलते हैं और कुछ समय बाद नष्ट हो जाते हैं अतः विवेकशील ज्ञानी पुरुष सांसारिक भोगों में नहीं फंसते।

मन

यन्तुं नात्मा शक्यते पौरुषेण मानेन वीर्येण च तात नद्धः।। वन 34/6

तात! किसी विषय में आसक्त मन को पुरुषार्थ से, अभिमान से या बल से नहीं रोका जा सकता।

अनित्यं किल मर्त्यस्य पार्थ चित्तं चलाचलम्।। उद्योग 75/19

पार्थ! मनुष्य का मन सदा अस्थिर बना रहता है।

यतो यतो मनो दुःखात् सुखाद् वा विप्रमुच्यते।
ततस्ततो नियम्यैतच्छान्तिं विन्देत वै बुधः।। स्त्री 3/3

जिन-जिन साधनों में मन लगाने से मन का दुःख या सुख समाप्त होता हो उन्हीं साधनों में मन लगाकर बुद्धिमान पुरुष शान्ति प्राप्त करे।

कल्याणगोचरं कृत्वां मनस्तृष्णां निगृह्य च।
कर्मसंततिमुत्सृज्य स्यान्निरालम्बनः सुखी।। शान्ति 19/20

मन की तृष्णाओं को रोककर, मन को कल्याण मार्ग में लगाये और सभी कर्मों का त्याग करके धन आदि के सहारे से दूर रहकर सुखी बन जाये।

धैर्योपपत्तिर्व्यक्तिश्च विसर्गः कल्पना क्षमा।
सदसच्चाशुता चैव मनसो नव वै गुणाः।। शान्ति 255/9

धैर्य, तर्क-वितर्क में कुशलता, स्मरण, भ्रान्ति, कल्पना, क्षमा, शुभ और अशुभ संकल्प और चंचलता ये नौ मन के गुण हैं।

यथा भावावसन्ना हि नौर्महाम्भसि तन्तुना।
तथा मनोभियोगाद् वै शरीरं प्रचिकीर्षति।। शान्ति 298/33

जैसे गहरे पानी में पड़ी हुई नाव को मल्लाह रस्सी से अपनी इच्छानुसार खींचता है वैसे ही हमारा मन अपने अनुसार शरीर को चलाता है।

मनोदोषविहीनानां न दोषः स्यात् तथा तव।
अन्यथाऽऽलिङ्ग्यते कान्ता स्नेहेन दुहितान्यथा।। अनु 43 दा० पा०

जिनका मन दूषित नहीं होता उन्हें तुम्हारी तरह पाप नहीं लगता। मनुष्य अपनी पत्नी का आलिंगन जिस भावना से करता है उसी भावना से वह अपनी बेटी का आलिंगन नहीं करता अपितु स्नेह के कारण बेटी का आलिंगन करता है।

अगाधे विमले शुद्धे सत्यतोये धृति ह्रदे।
स्नातव्यं मानसे तीर्थे सत्त्वमालम्ब्य शाश्वतम्।। अनु 108/3

मनरूपी जिस तीर्थ में धैर्य के रूप में तालाब है और जिस तालाब में सत्य-रूपी जल भरा हुआ है। यह जल अगाध, निर्मल और अत्यन्त पवित्र है। ऐसे मानस तीर्थ में परमात्मा का आश्रय लेकर सदा स्नान करना चाहिये।

तीर्थशौचमनर्थित्वमार्जवं सत्यमार्दवम्।
अहिंसा सर्वभूतानामानृशंस्यं दमः शमः।। अनुशासन 108/4

किसी से कुछ नहीं मांगना, सरल-व्यवहार, सत्य, मृदुता, अहिंसा और सब प्राणियों के प्रति दया, इन्द्रिय संयम तथा मन पर वश ये सब गुण मानस तीर्थ में स्नान करने से प्राप्त होते हैं।

मनसा च प्रदीप्तेन ब्रह्मज्ञानजलेन च।
स्नाति यो मानसे तीर्थे तत्स्नानं तत्त्वदर्शिनः।। अनु 108/13

जो मनुष्य प्रसन्न और पवित्र मन से ब्रह्मज्ञान के जल वाले मानस तीर्थ में स्नान करता है। ऐसा स्नान तत्वदर्शी का स्नान होता है।

समारोपितशौचस्तु नित्यं भावसमाहितः।
केवलं गुणसम्पन्नः शुचिरेव नरः सदा।। अनु 108/14

जो व्यक्ति सदा पवित्र आचरण से युक्त है, जिसके मन में अच्छे विचार रहते हैं और जो सद्‌गुणों से युक्त हैं ऐसा मनुष्य सदा पवित्र होता है।

मनः पूर्वागमा धर्मा अधर्माश्च न संशयः।
मनसा बद्ध्यते चापि मुच्यते चापि मानवः ।।
निगृहीते भवेत् स्वर्गो विसृष्टे नरको ध्रुवः।। अनु 145 दा० पा० अ०XI

निस्संदेह मन में ही सबसे पहले धर्म या अधर्म के विचार उठते हैं। मनुष्य अपने मन से ही बंधता है या मुक्त होता है और मन को छूट दे देने पर दुःख भोगता है।

मनः पूर्वं तु वा कर्म वर्तते वाङ्मय ततः।
जायते वै क्रियायोगमनु चेष्टाक्रमः प्रिये।। अनु 145 दा० पा०अ०XI

प्रिये! सबसे पहले मन कुछ करने की सोचता है। इसके बाद वाणी से उस काम के बारे में कहा जाता है। फिर हाथ-पैर आदि अंग वह काम करने लगते हैं। इस तरह कामों का सिलसिला चलता है।

मनसो मे बलं जातं मनो जित्वा ध्रुवो जयः।। आश्व 30/5

मुझे मन से ही शक्ति मिली है। मन को जीत लेने पर स्थायी विजय मिल सकती है।

यदिदं चापलात् कर्म सर्वान् मर्त्यांश्चिकीर्षति।। आश्व 30/6

यह मन चंचलता के कारण सभी मनुष्यों से तरह तरह के काम कराता रहता है।

मनसश्च गुणश्चिन्ता प्रज्ञया स तु गृह्यते।
हृदिस्थश्चेतनो धातुर्मनोज्ञाने विधीयते।। आश्व 43/34

मन का गुण सोचना है। सोचने का पता बुद्धि से चलता है। हृदय में विराजमान चेतन आत्मा सोचने में मन की सहायता करता है।

मनस्वी पुरुष

न प्रमत्ताय भीताय विरथाय प्रयाचते।
व्यसने वर्तमानाय प्रहरन्ति मनस्विनः।। द्रोण 143/8

मनस्वी पुरुष; असावधान, डरे हुए, रथ से रहित, प्राणों की भीख मांगने वाले और संकट में पड़े हुए व्यक्ति पर प्रहार नहीं करते हैं।

व्याधिनाचाभिपन्नस्य मानसेनेतरेण वा।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च त्वद्विधः शरणं भवेत्।। शान्ति 104/6

शारीरिक या मानसिक रोग से पीड़ित व्यक्ति के लिये आप जैसे धर्म के जानकार और उपकार मानने वाले मनस्वी पुरुष शरण होते हैं।

न हि दुःखेषु शोचन्ते न प्रहृष्यन्ति चर्धिषु।
कृतप्रज्ञा ज्ञानतृप्ताः क्षान्ताः सन्तो मनीषिणः।। शान्ति 223/29

जिनकी बुद्धि शुद्ध है, जो ज्ञान से तृप्त है, ऐसे क्षमाशील, मनीषी सत्पुरुष दुःख आने पर दुःखी नहीं होते और समृद्धि आने पर फूल नहीं उठते हैं।

निन्दत्सु च समा नित्यं प्रशंसत्सु च देवल।
निह्नुवन्ति च ये तेषां समयं सुकृतं च यत्।। शान्ति 229/8

देवल! महात्मा पुरुषों की कोई निन्दा करे या सदा प्रशंसा करे अथवा उनके सदाचार और पुण्य कर्मों पर पर्दा डाले, किन्तु वे उन सबके प्रति समान भाव रखते हैं।

उक्ताश्च न वदिष्यन्ति वक्तारमहिते हितम्।
प्रतिहन्तुं न चेच्छन्ति हन्तारं वै मनीषिणः।। शा० 229/9

मनीषी पुरुषों से कोई कटु वचन कह दे तो वे उसका कोई उत्तर नहीं देते। अपना अहित करने वाले का भी वे हित करते हैं तथा जो मारता है उसे वे मारना नहीं चाहते।

नाप्राप्तमनुशोचन्ति प्राप्तकालानि कुर्वते।
न चातीतानि शोचन्ति न चैव प्रतिजानत।। शान्ति 229/10

जो बात अभी नहीं हुई है या भविष्य में होने वाली है उसके लिये वे चिन्ता या शोक नहीं करते। वर्तमान समय में जो कार्य सामने है उसे करते हैं। वे बीती बातों के लिये शोक नहीं करते और किसी बात की प्रतिज्ञा नहीं करते।

पक्वविद्या महाप्राज्ञा जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
मनसा कर्मणा वाचा नापराध्यन्ति कर्हिचित्।। शान्ति 229/12

उनका ज्ञान परिपक्व होता है। वे अत्यन्त बुद्धिमान, क्रोध को वश में रखने वाले और जितेन्द्रिय होते हैं। वे मन, वचन और कर्म से कभी भी किसी का बुरा नहीं करते हैं।

निन्दा प्रशंसे चात्यर्थं न वदन्ति परस्य ये।
न च निन्दाप्रशंसाभ्यां विक्रियन्ते कदाचन।। शान्ति 229/14

वे दूसरों की न तो निन्दा करते हैं और न अधिक प्रशंसा। अपनी निन्दा या प्रशंसा सुनकर उनके मन में कोई विकार नहीं आता।

प्रभवन् योऽनहंवादी स वै पुरुष उच्यते।। अनु 146/15

जो मनुष्य समर्थ होने पर भी अंहकार रहित होता है वही पुरुष कहलाता है।

मन्त्री

कुलीनाञ्शीलसम्पन्नानिङ्गितज्ञान निष्ठुरान्।
देशकाल विधानज्ञान् भर्तृकार्य हितैषिणः।। शान्ति 83/8
नित्यमर्थेषु सर्वेषु राजा कुर्वीत मन्त्रिणः।

अच्छे कुल में उत्पन्न, चरित्रवान, इशारा समझने वाले, दयालु, परिस्थिति, समय और स्थान (देश-काल) को समझने वाले, स्वामी का काम करने वाले और हित चाहने वाले लोगों को सभी कामों के लिये मन्त्री बनाना चाहिये।

येषां वैनयिकी बुद्धिः प्रकृतिश्चैव शोभना।
तेजो धैर्यं क्षमा शौचमनुरागः स्थितिर्धृतिः।। शान्ति 83/21
परीक्ष्य च गुणान् नित्यं प्रौढभावान् धुरन्धरान्।
पञ्चोपधाव्यतीतांश्च कुर्याद् राजार्थकारिणः।। शान्ति 83/22

जिनमें विनय वाली बुद्धि हो और जिनका स्वभाव अच्छा हो, जिनमें, तेज, धैर्य, क्षमा, ईमानदारी, स्नेह, स्थिरचित्त आदि गुण हों, जो घबराने वाले न हों, ऐसे लोगों के गुणों की परीक्षा करके उनमें से परिपक्व बुद्धि और अनुभवी लोगों को आर्थिक कार्यों में नियुक्त करना चाहिये।

मन्त्रिणां च भवेत् क्रोधो विस्फूर्जितमिवाशनेः।। शान्ति 83/33

मन्त्रियों का क्रोध वज्रपात की तरह भयंकर होता है।

कृतप्रज्ञश्च मेधावी बुधो जानपदः शुचिः।
सर्वकर्मसु यः शुद्धः स मन्त्रं श्रोतुमर्हति।। शान्ति 83/41

जिसकी बुद्धि तेज और धारणाशक्ति अच्छी है, जो अपने ही देश में उत्पन्न हुआ है और शुद्ध आचार-व्यवहार वाला है। सभी तरह की परीक्षा करने पर जो निर्दोष सिद्ध हुआ है वह गुप्त सलाह सुन सकता है।

सर्वलोकमिमं शक्तः सान्त्वेन कुरुते वशे।
तस्मै मन्त्रः प्रयोक्तव्यो दण्डमाधित्सता नृप।। शान्ति 83/45

राजन्! जो राजा बहुत समय राजदण्ड अपने पास रखना चाहता हो उसे ऐसे व्यक्ति को अपनी गुप्त सलाह बतानी चाहिये जो प्रजा को समझा कर वश में कर सके।

स्वासु प्रकृतिषुच्छिद्रं लक्षयेरन् परस्य च।
मन्त्रिणां मन्त्रमूलं हि राज्ञो राष्ट्रं विवर्धते।। शान्ति 83/48

अपनी और शत्रु की प्रजा तथा राजकर्मचारियों आदि के दोषों पर मंत्रियों को निगाह रखनी चाहिये। मन्त्रियों की अच्छी सलाह ही राजा के राष्ट्र की जड़ है।

सहायाननुरक्तांश्च नयज्ञानुपसंहितान्।
परस्परमसंसृष्टान् विजिगीषूनलोलुपान्।। शान्ति 111/23

अनतीतोपधान् प्राज्ञान् हिते युक्तान् मनस्विनः।
पूजयेथा महाभाग यथाऽऽचार्यान् यथा पितॄन्।। शान्ति 111/24

जिनका राजा के प्रति स्नेह हो, जो नीति को जानते हों, सद्भावना वाले, आपसी गुटबन्दी से दूर, विजय की इच्छा वाले, लोभरहित, कपटनीति में चतुर, बुद्धिमान, राजा के हितैषी, और मनस्वी व्यक्तियों को सहायक या मन्त्री बनाना चाहिये और उनका गुरुओं तथा माता-पिता की तरह सम्मान करना चाहिये।

मन्त्रिणो यस्य कुलजा असंहार्याः सहोषिताः।
नृपतेर्मतिदा सन्तः सम्बन्धज्ञानकोविदाः।। शान्ति 115/16

अनागतविधातारः कालज्ञानविशारदाः।
अतिक्रान्तमशोचन्तः स राज्यफलमश्नुते।। शान्ति 115/17

जिस राजा के मन्त्री कुलीन, लोभ लालच से फोड़े न जा सकने वाले, सदा राजा के साथ रहने वाले, राजा को अच्छी सलाह देने वाले, सज्जन, अनेक तरह के सम्बन्धों को जानने वाले, भविष्य में आने वाले संकटों का समाधान करने वाले,

समय को पहचानने वाले और बीती हुई बात का मलाल न करने वाले होते हैं वह राजा राज्यश्री भोगता है।

अमात्यानुपधातीतान् पितृपैतामहाञ्शुचीन्।
दान्तान् कर्मसु पुण्यांश्च पुण्यान् सर्वेषु योजयेः।। आश्रमवास 5/14

जांचे-परखे, ईमानदार, बाप दादों के समय से काम करने वाले, मन और आचरण से शुद्ध, संयमी, सात्विक जीवन बिताने वाले और हर तरह से आचारवान मन्त्रियों को सभी तरह के काम सौंपने चाहियें।

मन्त्रिणश्चैव कुर्वीथा द्विजान् विद्याविशारदान्।। आश्रमवास 5/20
विनीतांश्च कुलीनांश्च धमार्थकुशलानृजून्।
तैः सार्धं मन्त्रयेयास्त्वं नात्यर्थं बहुभिः सह।। आश्रमवास 5/21

राजन्! तुम्हें ऐसे ब्राह्मणों को मन्त्री बनाना चाहिये जो विद्वान्, विनयशील, कुलीन, धर्म और अर्थ के क्षेत्रों में कुशल और सरल स्वभाव वाले हों। तुम्हें उन्हीं के साथ मन्त्रणा और सलाह करनी चाहिये। बहुत से लोगों के साथ बैठकर राज्य के मामलों पर विचार नहीं करना चाहिये।

मल

क्षत्रियस्य मलं भैक्ष्यं ब्राह्मणस्याश्रुतं मलम्।
मलं पृथिव्यां वाहिकाः स्त्रीणां मद्रस्त्रियो मलम्।। कर्ण 45/23

भीख मांगना क्षत्रिय का मल (दोष) है। वेद आदि शास्त्र न पढ़ना और उनके अनुसार आंचरण न करना ब्राह्मण का दोष है। पृथिवी के मल वाहीक देश (पश्चिम पंजाब) के लोग और मद्र देश की स्त्रियाँ, स्त्रियों की मल हैं।

मानुषाणां मलं म्लेच्छा म्लेच्छनां शौण्डिका मलम्।
शौण्डिकानां मलं षण्ढाः षण्ढानां राजयाजकाः।। कर्ण 45/25

मनुष्यों के मल म्लेच्छ हैं, म्लेच्छों के मल हैं शराब बेचने वाले कलाल। कलालों के मल हीजड़े हैं और हीजड़ों के मल हैं राजपुरोहित।

अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम्।
मलं पृथिव्या वाहिकाः स्त्रीणां कौतूहलं मलम्।। शान्ति 328/20

वेद पढ़कर उनकी पुनरावृत्ति (अभ्यास) न करना वेद पढ़ने का दोष है। व्रत

का पालन न करना ब्राह्मण का दोष है। वाहीक देश के लोग पृथ्वी के मल हैं और खेल-तमाशा देखने की लालसा स्त्रियों का दोष है।

महत्-तत्त्व

अव्यक्तात् पूर्वमुत्पन्नो महानात्मा महामतिः।
आदिर्गुणानां सर्वेषां प्रथमः सर्ग उच्यते।। आश्व 40/1

सबसे पहले अव्यक्त प्रकृति से महान् आत्मस्वरूप महाबुद्धि तत्त्व उत्पन्न होता है। यह महत् तत्त्व सब गुणों का आदि तत्त्व है। इसे प्रथम सर्ग या प्रारम्भिक सृष्टि कहा जाता है।

अहंकारात् प्रसृतानि महाभूतानि पञ्च वै।
पृथिवी वायुराकाशमपो ज्योतिश्च पञ्चमम्।। आश्व 40/9

महत् तत्त्व या बुद्धि तत्त्व से या अहंकार से पृथिवी, जल, वायु, तेज और आकाश ये पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं।

तेषु भूतानि युज्यन्ते महाभूतेषु पञ्चसु।
ते शब्दस्पर्शरूपेषु रसगन्धक्रियासु च।। आश्व 40/10

इन पाँच महाभूतों तथा उनके कार्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध सभी प्राणियों में व्याप्त हैं।

महाभूतविनाशान्ते प्रलये प्रत्युपस्थिते।
सर्वप्राणभृतां धीरा महदुत्पद्यते भयम्।। आश्व 40/11

धैर्यशाली मुनियो! इन पांच महाभूतों के विनाश के समय प्रलय काल आने पर सभी प्राणियों को बहुत डर लगने लगता है।

य उत्पन्नो महान् पूर्वमहंकारः स उच्यते।
अहमित्येव सम्भूतो द्वितीयः सर्ग उच्यते।। आश्व 41/1

प्रकृति से सबसे पहले जो महत् तत्त्व उत्पन्न हुआ था उसे अहंकार भी कहा जाता है। जब अहंकार अहम् (मैं) के रूप में उत्पन्न होता है तब उसे दूसरा सर्ग या सृष्टि की दूसरी अवस्था कहते हैं।

अहंकारश्च भूतादिर्वैकारिक इति स्मृतः।
तेजसश्चेतना धातुः प्रजासर्गः प्रजापतिः।। आश्व 41/2

यह अहंकार ही प्रकृति के विकारों भूतादि का कारण है इसलिये यह वैकारिक

कहा जाता है। रजोगुण का स्वरूप होने के कारण अहंकार तैजस् है। इसका आधार चेतन आत्मा है। इसी से सृष्टि की सारी प्रजा उत्पन्न होती है इसलिये इसको प्रजापति कहते हैं।

देवानां प्रभवो देवो मनसश्च त्रिलोककृत्।
अहमित्येव तत्सर्वमभिमन्ता स उच्यते।। आश्व 41/3

यह अहंकार आँख, नाक, कान आदि इन्द्रियरूप देवों का और मन का भी उत्पत्ति स्थान है। अहंकार स्वयं भी देव है। इसलिये इसे तीनों लोकों को बनाने वाला कहा जाता है। यह सारा जगत् अहंकार स्वरूप है इसलिये यह अभिमन्ता कहा जाता है।

अहंकारेणाहरतो गुणानिमान् भूतादिरेवं सृजते स भूतकृत्।
वैकारिकः सर्वमिदं विचेष्टते स्वतेजसा रञ्जयते जगत् तथा।।

आश्व 41/5

सभी प्राणियों का आदि और सबको उत्पन्न करने वाला और अहंकार का आधार महान् आत्मा, अहंकार के द्वारा सारे गुणों की रचना करता है। तरह तरह की चेष्य में लगा हुआ यह सारा जगत् प्रकृति का विकार होने के कारण अहंकार का ही स्वरूप है। यह अहंकार अपने तेज से सारे संसार को रजोमय अर्थात् भोग-विषयों का इच्छुक बनाता है।

शब्दःस्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धश्च पञ्चमः।
क्रियाः करणनित्याः स्युरनित्या मोहसंज्ञिताः।। आश्व 42/6

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँच तथा इनको ग्रहण करने की क्रियाएँ करणरूप अर्थात् सूक्ष्म मनः स्वरूप होने कारण नित्य हैं। प्रलय में इनका लय नहीं होता। स्थूल पदार्थ अनित्य हैं। इन्हें मोह के नाम से पुकारा जाता है।

आकाशमुत्तमं भूतमहंकारस्ततः परः।। आश्व 50/54

अहंकारात् परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा ततः परः।
तस्मात् तु परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।। आश्व 50/55

पाँच महाभूतों में आकाश श्रेष्ठ है। आकाश से श्रेष्ठ अहंकार है अहंकार से श्रेष्ठ बुद्धि है। बुद्धि से श्रेष्ठ आत्मा है। आत्मा से श्रेष्ठ अव्यक्त अर्थात् प्रकृति है और प्रकृति से श्रेष्ठ पुरुष है।

माता

गुरूणां चैव सर्वेषां माता परमको गुरुः।। आदि 195/16

सभी गुरुओं में माता श्रेष्ठ गुरु मानी जाती है।

दुष्करं कुरुते माता विवर्धयति या प्रजाः।। वन 205/17

माता अपनी सन्तानों को पाल पोस कर बड़ा करती है, यह उसका बड़ा कठिन काम है।

माता गुरुतरा भूमेः।। वन 313/60

माता की गरिमा पृथिवी से भी अधिक होती है।

उपवासैस्तथेज्याभिर्व्रतकौतुक मंगलैः।
लभन्ते मातरो गर्भान् मासान् दश च विभ्रति।। शान्ति 7/14

माताएँ; उपवासों, यज्ञों, अनेक प्रकार के व्रतों और मंगलमय संस्कारों के द्वारा अपना तन और मन पवित्र कर गर्भ धारण करती हैं और दस महीने तक गर्भ का पालन करती हैं।

मातापित्रोर्गुरूणां च पूजा बहुमता मम।
इह युक्तो नरो लोकान् यशश्च महदश्नुते।। शा॰ 108/3

मुझे माता, पिता और गुरु की सेवा सबसे महत्त्वपूर्ण लगती है। इस संसार में यह काम करके मनुष्य यश और श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त करता है।

यच्च तेऽभ्यनुजानीयुः कर्म तात सुपूजिताः।
धर्माधर्मविरुद्धं वा तत् कर्तव्यं युधिष्ठिर।। शान्ति 108/4

प्रिय युधिष्ठिर! माता-पिता और गुरुजन भली-भाँति सम्मानित हुए जिस काम की आज्ञा दें वह तुम्हें करना चाहिये। वह काम चाहे धर्म के अनुकूल हो या धर्म के प्रतिकूल।

यं च तेऽभ्यनुजानीयुः स धर्म इति निश्चयः।। शा॰ 108/5

वे जिस काम के लिये तुम्हें आज्ञा दें वही धर्म है ऐसा धर्मात्माओं ने निश्चय किया है।

एत एव त्रयो लोका एत एवाश्रमस्त्रयः।
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः।। शान्ति 108/6

माता-पिता और गुरुजन ही तीनों लोक हैं। ये ही तीनों आश्रम और तीनों वेद हैं। ये ही तीनों अग्नियाँ हैं। गार्हपत्य, दक्षिण और आहवनीय ये तीन अग्नियाँ हैं।

नैतानतिशयेज्जातु नात्यश्नीयान्न दूषयेत्।। शान्ति 108/10

माता-पिता और गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन कभी नहीं करना चाहिये। इनके भोजन कर लेने से पहले भोजन नहीं करना चाहिये और इनको कभी कोई दोष नहीं देना चाहिये अर्थात् इनकी बुराई कभी नहीं करनी चाहिये।

पितृन् दश तु मातैका सर्वा वा पृथिवीमपि।। शान्ति 108/17
गुरुत्वेनाभिभवति नास्ति मातृसमो गुरुः।।

माता का महत्व दस पिताओं से भी अधिक है। अकेली माता अपने गौरव से सारी पृथ्वी को भी तिरस्कृत कर देती है। माता के समान कोई दूसरा गुरु नहीं है।

अवध्या हि सदा माता पिता चाप्यपकारिणौ।। शा० 108/20
न संदुष्यन्ति तत् कृत्वा न च ते दूषयन्ति तम्।
धर्माय यतमानानां विदुर्देवा महर्षिभिः।। शान्ति 108/21

यदि माता-पिता कोई अपराध भी करें तो भी उन्हें कभी नहीं मारना चाहिये। क्योंकि पुत्र या शिष्य; माता-पिता और गुरु का अपराध करने पर भी उनकी दृष्टि में अपराधी नहीं होते। ये गुरुजन पुत्र या शिष्य पर स्नेह के कारण कोई दोष भी नहीं लगाते। अपितु वे सदा पुत्र और शिष्य को धर्म के मार्ग पर चलाने का प्रयत्न करते हैं। माता-पिता और गुरु का महत्त्व देवता और महर्षि ही जानते हैं।

स्त्रियं हत्वा मातरं च को हि जातु सुखी भवेत्।। शान्ति 266/12

किसी स्त्री को और अपनी माता को मारकर कौन सुखी हो सकता है।

यो ह्ययं मयि संघातो मर्त्यत्वे पाञ्चभौतिकः।
अस्य मे जननी हेतुः पावकस्य यथारणिः।। शान्ति 266/25

मुझे जो यह पाञ्चभौतिक शरीर मिला है इसे मेरी माता ने वैसे ही बनाया है जैसे आग के प्रकट होने का आधार अरणि होती है।

माता देहारणिः पुंसां सर्वस्यार्तस्य निर्वृत्तिः।
मातृलाभे सनाथत्वमनाथत्वं विपर्यये।। शान्ति 266/26

माता, मनुष्यों की शरीररूपी अग्नि को प्रकट करने वाली अरणि हैं। माता ही सभी दुखी प्राणियों को सुख और सान्त्वना प्रदान करती है। जब तक माता जीवित

रहती है पुत्र अपने को सनाथ अनुभव करता है और माता के न रहने पर वह अनाथ हो जाता है।

न च शोचति नाप्येनं स्थाविर्यमपकर्षति।
श्रिया हीनोऽपि यो गेहमम्बेति प्रतिपद्यते।। शान्ति 266/27

माता के रहने पर पुत्र को कभी चिन्ता नहीं होती। उसे बुढ़ापा अपनी ओर नहीं खींच पाता। व्यक्ति गरीब होने पर भी अपने घर पहुँचकर अपनी अन्नपूर्णा माता के पास चला जाता है।

पुत्रपौत्रोपपन्नोऽपि जननीं यः समाश्रितः।
अपि वर्षशतस्यान्ते स द्विहायनवच्चरेत्।। शान्ति 266/28

बेटे-पोतों वाला होने पर भी जो व्यक्ति अपनी माता के आश्रय में रहता है वह सौ वर्ष का हो जाने पर भी माता के साथ दो वर्ष के बच्चे की तरह आचरण करता है।

समर्थं वासमर्थं वा कृशं वाप्यकृशं तथा।
रक्षत्येव सुतं माता नान्यः पोष्टा विधानतः।। शान्ति 266/29

पुत्र समर्थ हो या असमर्थ, वह दुर्बल हो या बलवान, माता उसकी रक्षा करती ही है। माता के सिवाय कोई और पुत्र का पालन नहीं कर सकता।

तदा स वृद्धो भवति तदा भवति दुःखितः।
तदा शून्यं जगत् तस्य यदा मात्रा वियुज्यते।। शान्ति 266/30

जब माता से विछोह हो जाता है तब पुत्र अपने को बूढ़ा समझने लगता है, वह दुःखी रहने लगता है और संसार उसके लिये सूना हो जाता है।

नास्ति मातृसमा छाया नास्ति मातृसमा गतिः।
नास्ति मातृसमं त्राणं नास्ति मातृसमा प्रिया।। शान्ति 266/31

माता के समान कोई छाया नहीं है। माता की छत्रछाया में जो सुख मिलता है वैसा कहीं नहीं मिलता। माता से बढ़कर कोई सहारा नहीं है। माता के समान कोई और रक्षा नहीं कर सकता। माता के समान कोई और प्रिय वस्तु इस संसार में नहीं है।

कुक्षिसंधारणाद् धात्री जननाज्जननी स्मृता।
अङ्गानां वर्धनादम्बा वीरसूत्वेन वीरसूः।। शान्ति 266/32

माता, सन्तान को गर्भ में धारण करने के कारण धात्री कहलाती है। माता, जन्म देने के कारण जननी, शिशु का शरीर बढ़ाने अर्थात् उसका पालन-पोषण करने के कारण अम्बा और वीर सन्तान को जन्म देने के कारण वीरसू कहलाती है।

माता जानाति यद्गोत्रं माता जानाति यस्य सः।
मातुर्भरणमात्रेण प्रीतिः स्नेहः पितुः प्रजाः।। शान्ति 266/35

माता ही जानती है कि उसके पुत्र का गोत्र क्या है और उसका पिता कौन है। बालक को अपने गर्भ में धारण करने के कारण माता ही पुत्र को अधिक स्नेह करती है। पिता का भी पुत्र पर स्नेह होता है।

दशाचार्यानुपाध्याय उपाध्यायान् पिता दश।। अनु 105/ 14
दश चैव पितॄन् माता सर्वां वा पृथिवीमपि।
गौरवेणाभिभवति नास्ति मातृसमो गुरुः।। अनुशासन 105/15

दस आचार्यों से बढ़कर एक उपाध्याय का गौरव होता है। दस उपाध्यायों से बढ़कर पिता होता है। दस पिताओं से भी कहीं अधिक माता का गौरव होता है। माता अपने गौरव से पृथ्वी को भी पीछे छोड़ देती है। माता के समान और कोई गुरु नहीं होता।

माता गरीयसी यच्च तेनैतां मन्यते जनः।। अनु 105/16

माता का गौरव सबसे अधिक होता है इसीलिये लोग माता का आदर करते हैं।

ज्येष्ठा मातृसमा चापि भगिनी भरतर्षभ।। अनु 105/19
भ्रातुर्भार्या च तद्वत् स्याद् यस्या बाल्ये स्तनं पिबेत्।। अनु 105/20

भरतश्रेष्ठ! बड़ी बहिन भी माता के समान होती है। इसी प्रकार बड़े भाई की पत्नी और बचपन में जिसका दूध पिया हो वह भी माता के समान है।

मातुर्या भगिनी ज्येष्ठा मातुर्या च यवीयसी।
मातामही च धात्री च सर्वास्ता मातरः स्मृताः।। अनु 145 दा० पा०

माता की बड़ी और छोटी बहिनें, नानी और धाय ये सब माता के बराबर ही होती हैं। इनका माता की तरह ही आदर करना चाहिये।

मानसिक दुःख

मानसेन हि दुःखेन शरीरमुपतप्यते।
अयः पिण्डेन तप्तेन कुम्भसंस्थमिवोदकम्।। वन 2/25

मानसिक दुःख होने पर शरीर भी कष्ट पाने लगता है। जैसे तपाया हुआ लोहे का गोला डाल देने से घड़े का पानी गर्म हो जाता है।

स्नेहमूलानि दुःखानि स्नेहजानि भयानि च।
शोकहर्षौ तथाऽऽयासः सर्वं स्नेहात् प्रवर्तते।। वन 2/28

दुःख का मूल कारण आसक्ति या लगाव है। स्नेह के कारण ही भय होता है। शोक, हर्ष और कष्ट भी आसक्ति से ही होते हैं।

विप्रयोगे न तु त्यागी दोषदर्शी समागमे।
विरागं भजते जन्तु र्निर्वैरो निरवग्रहः।। वन 2/31

विषयों के प्राप्त न होने पर जो विषयों का त्याग करता है वह त्यागी नहीं होता। किन्तु विषय सुख मिलने पर जो उनमें दोष देखता है वही सच्चा त्यागी होता है। उसे ही वैराग्य होता है। ऐसे व्यक्ति के मन में किसी के प्रति वैर नहीं रहता अतः वह संसार के बन्धनों से छूट जाता है।

तस्मात् स्नेहं न लिप्सेत मित्रेभ्यो धनसंचयात्।
स्वशरीरसमुत्थं च ज्ञानेन विनिवर्तयेत्।। वन 2/32

इसलिये मित्रों और धन को पाकर इनमें आसक्ति नहीं करनी चाहिये। अपने शरीर के प्रति आसक्ति को ज्ञान से शान्त करना चाहिये।

रागाभिभूतः पुरुषः कामेन परिकृष्यते।
इच्छा संजायते तस्य ततस्तृष्णा विवर्धते।। वन 2/34

राग के वश में पड़े पुरुष को काम अपनी ओर खींच लेता है और उसके मन में इच्छा उत्पन्न हो जाती है। फिर मन में तृष्णा बढ़ती है।

संतापाद् भ्रश्यते रूपं संतापाद् भ्रश्यते बलम्।
संतापाद् भ्रश्यते ज्ञानं संतापाद् व्याधि मृच्छति।। उद्योग 36/44

शोक करने से रूप, बल और ज्ञान नष्ट हो जाता है तथा शरीर में रोग लग जाते हैं।

अनवाप्यं च शोकेन शरीरं चोपतप्यते।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति मास्म शोके मनः कृथाः।। उद्योग 36/45

शोक करने से मनचाही वस्तु नहीं मिल सकती। शोक करने से शरीर को कष्ट होता है और शत्रुओं को प्रसन्नता। इसलिये शोक नहीं करना चाहिये।

शीतोष्णे चैव वायुश्च गुणा राजन् शरीरजाः।
तेषां गुणानां साम्यं चेत् तदाहुः स्वस्थलक्षणम्।। आश्व 12/3

राजन्! शीत, उष्ण और वायु ये तीन शरीर के गुण हैं। इन तीनों गुणों के शरीर में सम अवस्था में रहने पर शरीर स्वस्थ रहता है।

सत्त्वं रजस्तमश्चेति त्रय आत्मगुणाः स्मृताः।। आश्व 12/4
तेषां गुणानां साम्यं चेत् तदाहुः स्वस्थलक्षणम्।

सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीन अन्तःकरण (मन) के गुण होते हैं। इन गुणों की समानता को मानसिक स्वास्थ्य का लक्षण माना गया है।

यत्र नैव शरैः कार्यं न भृत्यैर्न च बन्धुभिः।
आत्मनैकेन योद्धव्यं तत् ते युद्धमुपस्थितम्।। आश्व 12/14

युधिष्ठिर! मानसिक उद्वेग होने पर तीर, सेवक या बन्धु-बान्धव कुछ नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में मनुष्य को अपने आप ही संघर्ष करना पड़ता है और वह अवसर तुम्हारे सामने आ गया है।

मित्रता

सौहृदान्यपि जीर्यन्ति कालेन परिजीर्यतः।
सौहृदं ये त्वया ह्यासीत् पूर्वं सामर्थ्यबन्धनम्।। आदि 130/6

समय बीतने के साथ मित्रता भी घटती जाती है। पहले तुम्हारे साथ मेरी मित्रता सामर्थ्य के अनुसार थी तब हम दोनों समान शक्तिशाली थे।

न सख्यमजरं लोके हृदि तिष्ठति कस्यचित्।
कालो ह्येनं विहरति क्रोधो वैनं हरत्युत।। आदि 130/7

किसी भी मनुष्य के हृदय में मैत्री सदा नहीं बनी रहती। मित्रता या तो समय बीतने पर घटती जाती है या क्रोध करने से समाप्त हो जाती है।

न दरिद्रो वसुमतो नाविद्वान् विदुषः सखा।
न शूरस्य सखा क्लीबः सखिपूर्वं किमिष्यते।। आदि 130/9

निर्धन की मैत्री धनवान से नहीं होती। विद्वान् मूर्ख का और वीर पुरुष, कायर का मित्र नहीं हो सकता। अतः पहिले की मित्रता का क्या भरोसा?

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतम्।
तयोर्विवाहः सख्यं च न तु पुष्टविपुष्टयोः।। आदि 130/19

धन की दृष्टि से जो समान हैं या जिनका कुल और विद्या समान स्तर की हैं

उन्हीं के बीच मैत्री और विवाह सम्बन्ध हो सकते हैं गरीब-अमीर और विद्वान्-मूर्ख के बीच नहीं।

नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा।
नाराजा पार्थिवस्यापि सखिपूर्वं किमिष्यते।। आदि 130/11; 71

जो विद्वान् नहीं हैं उसकी शास्त्रज्ञ से मित्रता नहीं हो सकती। इसी प्रकार जो रथ पर बैठकर युद्ध नहीं कर सकता उसकी रथी के साथ तथा राजा की साधारण व्यक्ति के साथ मैत्री नहीं हो सकती फिर तुम पुरानी मित्रता की बात क्यों कर रहे हो?

साम्याद्धि सख्यं भवति वैषम्यान्नोपपद्यते।। आदि 130/67

समान बातों वालों के बीच ही मित्रता होती है ऊँचे-नीचे लोगों के बीच नहीं।

सतां साप्तपदं मैत्रमाहुः सन्तः कुलोचिताः।। वन 260/35

सत्पुरुषों में सात कदम साथ चलने पर मैत्री हो जाती है ऐसा कुलीन सत्पुरुष बताते हैं।

सौहृदात् सर्वभूतानां विश्वासो नाम जायते।। वन 297/43

मित्रता से सभी प्राणियों में एक-दूसरे के प्रति विश्वास होता है।

सार्थः प्रवसतो मित्रं भार्या मित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य भिषङ् मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः।। वन 313/64

परदेशी का मित्र काफिला या सहयात्री होता है। घर में रहने वाले का मित्र उसकी पत्नी होती है। बीमार की मित्र दवा और मरने वाले का मित्र दान होता है।

बहुमित्रकरः सुखं वसते।। वन 313/113

जो बहुत से मित्र बना लेता है वह सुख से रहता है।

न तन्मित्रं यस्य कोपाद् बिभेति यद् व मित्रं शंकितेनोपचर्यम्।
यस्मिन् मित्रे पितरीवाश्वसीत तद्वै मित्रं संगतानीतराणि।। उद्योग 36/37

जिसके गुस्से से डर लगे या आशंकित हृदय से जिसकी सेवा की जाय ऐसा व्यक्ति मित्र नहीं होता। मित्र तो वही है जिसका पिता की भाँति विश्वास किया जा सके। और लोग तो साथी ही होते हैं।

यः कश्चिदप्यसम्बद्धो मित्रभावेन वर्तते।
स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत् परायणम्।। उद्योग 36/38

पहले से कोई सम्बन्ध न होने पर भी जो व्यक्ति मित्र की तरह व्यवहार करता है वही बन्धु, मित्र, सहायक और सहारा होता है।

मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्ध्या सम्पाद्य चासकृत्।
श्रुत्वा दृष्ट्वाथ विज्ञाय प्राज्ञै मैत्रीं समाचरेत्।। उद्योग 39/41

बुद्धिमान व्यक्ति अपनी बुद्धि से परीक्षा करके और बार-बार परख कर, दूसरों के विचार सुनकर, देखकर और समझकर बुद्धिमानों के साथ मित्रता करे।

प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम्।
मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत्।। उद्योग 39/45

विद्वानों का साथ करने वाले, वैद्य, धार्मिक, सुन्दर, मित्रों वाले और अच्छा बोलने वाले मित्र का साथ देना चाहिये।

ययोश्चित्तेन वा चित्तं निभृतं निभृतेन वा।
समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयो मैत्री न जीर्यते।। उद्योग 39/47

जिन दो पुरुषों का मन से मन, रहस्य से रहस्य और बुद्धि से बुद्धि मिल जाती है उनकी मित्रता समाप्त नहीं होती।

दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव।
विवर्जयीत मेधावी तस्मिन् मैत्री प्रणश्यति।। उद्योग 29/48

बुद्धिमान को तिनकों से ढके हुए कुएँ की तरह मूर्ख और विचारहीन पुरुष का साथ छोड़ देना चाहिये। ऐसे व्यक्ति के साथ मैत्री नहीं निभती।

अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च।
तथैवापेत धर्मेषु न मैत्रीमाचरेद् बुधः।। उद्योग 39/49

विद्वान् पुरुष को; अभिमानी, मूर्ख, क्रोधी, साहसिक तथा धर्महीन पुरुषों के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिये।

कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम्।
जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते।। उद्योग 39/50

कृतज्ञ, धार्मिक, सत्यवादी, उदार हृदय, दृढ़ अनुराग वाले, जितेन्द्रिय, मर्यादा में रहने वाले, मित्रता को न छोड़ने वाले व्यक्ति से मित्रता करनी चाहिये।

व्यसने क्लिश्यमानं हि यो मित्रं नाभिपद्यते।
अनुनीय यथाशक्ति तं नृशंसं विदुर्बुधाः।। उद्योग 93/10

जो व्यक्ति मुसीबत में पड़कर दुःख उठाते हुए मित्र को यथाशक्ति समझा कर उसे मुसीबत से नहीं छुड़ाता वह मनुष्य क्रूर होता है।

ज्ञातीनां हि मिथो भेदे यन्मित्रं नाभिपद्यते।
सर्वयत्नेन माध्यस्थं न तन्मित्रं विदुर्बुधाः।। उद्योग 93/15

सम्बन्धियों में फूट होने पर जो मित्र उनके बीच मेल कराने का प्रयत्न पूरी तरह नहीं करता उसे विद्वान् मित्र नहीं मानते।

दुर्लभो वै सुहृच्छ्रोता दुर्लभश्च हितः सुहृत्।
तिष्ठते हि सुहृद् यत्र न बन्धुस्तत्र तिष्ठते।। उद्योग 106/5

अपने हितचिन्तक मित्र की बात सुनने वाला व्यक्ति मुश्किल से मिलता है। हित चाहने वाला मित्र भी कठिनाई से मिलता है। जहाँ भाई-बन्धु भी साथ नहीं देते वहाँ मित्र ही साथ रहता है।

भग्ने सैन्ये यः समेयात् स मित्रम्।। द्रोण 2/19

सेना के भाग जाने पर भी जो साथ देता है वही मित्र है।

यौनात् सम्बन्धकाल्लोके विशिष्टं संगतं सताम्।
सद्भिः सह नरश्रेष्ठ प्रवदन्ति मनीषिणः।। द्रोण 4/13

हे श्रेष्ठ पुरुष! परिवारिक (यौन) सम्बन्ध की तुलना में सज्जनों के साथ हुई मित्रता को मनीषी महापुरुष श्रेष्ठ बताते हैं।

आपद्गतं कश्चन यो विमोक्षेत् स बान्धवः स्नेहयुक्तः सुहृच्च।।
कर्ण 68/24

जो कोई पुरुष मुसीबत में फंसे हुए मनुष्य को संकट से छुड़ा देता है, वही बन्धु (भाई) है और वही स्नेह करने वाला मित्र है।

वदन्ति मित्रं सहजं विचक्षणास्तथैव साम्ना च धनेन चार्जितम्।
प्रतापतश्चोपनतं चतुर्विधं तदस्ति सर्वं तव पाण्डवेषु।।
कर्ण 88/28

विद्वान् पुरुष चार तरह के मित्र बताते हैं। एक सहज मित्र होते हैं अर्थात् जिनके साथ अपने आप मित्रता हो जाती है। दूसरी तरह के मित्र सन्धि करके बनाये जाते हैं। तीसरे मित्र पैसे से बनते हैं और चौथी तरह के मित्र वे होते हैं जो किसी के

प्रभाव के कारण उसकी शरण में चले जाते हैं। पाण्डवों के साथ तुम्हारी मित्रता सभी तरह से हो सकती है।

यस्तु वृद्ध्या न तृप्येत क्षये दीनतरो भवेत्।
एतदुत्तममित्रस्य निमित्तमिति चक्षते।। शान्ति 80/16

जो अपने मित्र की उन्नति से कभी तृप्त न हो और उसकी खूब उन्नति चाहता हो तथा अवनति होने पर दुःखी हो वही उत्तम मित्र होता है।

आर्तिरार्ते प्रिये प्रीतिरेतावन्मित्रलक्षणम्।। शान्ति 103/50

मित्र के दुःखी होने पर उसका मित्र भी दुःखी हो जाता है और प्रसन्न होने पर प्रसन्न हो जाता है। यही मित्रता की पहचान होती है।

दुःखेन शिलष्यते भिन्नं शिलष्टं दुःखेन भिद्यते।
भिन्ना शिलष्टा तु या प्रीतिर्न सा स्नेहेन वर्तते।। शान्ति 111/85

प्रेम का टूटा हुआ सम्बन्ध बड़ी कठिनाई से जुड़ता है और प्रेम सम्बन्ध भी बड़ी कठिनाई से टूट पाता है किन्तु बार बार टूटने और जुड़ने वाली मित्रता या प्रेम में स्नेह नहीं रह जाता।

सतां साप्तपदं मैत्रम्।। शान्ति 138/56

सज्जनों में सात पग साथ साथ चलने से ही मित्रता हो जाती है।

न कश्चित् कस्सचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद् रिपुः।
अर्थतस्तु निबद्ध्यन्ते मित्राणि रिपवस्तथा।। शान्ति 138/110
अर्थैरर्था निबद्ध्यन्ते गजैर्वनगजा इव । शान्ति138/111

न कोई किसी का मित्र है और न कोई किसी का शत्रु है। स्वार्थ के कारण ही लोग किसी के मित्र बनते हैं और किसी के शत्रु। जैसे पालतू हाथियों से जंगली हाथी पकड़े जाते हैं उसी तरह सब अपना मतलब देखते हैं।

कृत्वा हि पूर्वं मित्राणि यः पश्चान्नानुतिष्ठति।
न स मित्राणि लभते कृच्छ्रास्वापत्सु दुर्मतिः।। शान्ति 138/128

जो पहले मित्रता करके पीछे मित्रता नहीं निभाता ऐसे मूर्ख मनुष्य को संकट में मित्रों की सहायता नहीं मिलती।

शत्रुरूपा हि सुहृदो मित्ररूपाश्च शत्रवः।
संधितास्ते न बुद्ध्यन्ते कामक्रोधवशं गताः।। शान्ति 138/138

काम पड़ने पर शत्रु मित्र बन जाते हैं और मित्र, शत्रुता करने लगते हैं। शत्रु और मित्र के बीच सन्धि हो जाने पर भी काम और क्रोध के वश में पड़े हुए इन लोगों के बारे में यह पता नहीं चल पाता कि इनके मन में मित्रता है या शत्रुता।

यो यस्मिन् जीवति स्वार्थं पश्येत् पीडां न जीवति।
स तस्य मित्रं तावत् स्याद् यावन्न स्याद् विपर्ययः।। शान्ति 138/140

जो व्यक्ति किसी के जीवित रहने से अपना काम बनता देखता है और उसके मर जाने पर संकट में फंसा देखता है ऐसा व्यक्ति तब तक मित्र बना रहता है जब तक यह हालत बदलती नहीं।

मित्रं हि शत्रुतामेति कस्मिंश्चित् कालपर्यये।
शत्रुश्च मित्रतामेति स्वार्थो हि बलवत्तरः।। शान्ति 138/142

कभी-कभी समय के फेर से मित्र, शत्रु बन जाता है और शत्रु, मित्र बन जाता है। मित्रता और शत्रुता अपने मतलब से की जाती है।

मित्रद्रोहो विगर्हितः।। शान्ति 138/185

मित्र से द्रोह करना बहुत बुरी बात है।

कालेन रिपुणा सन्धिः काले मित्रेण विग्रहः।। शान्ति 138/287

समय और परिस्थिति के अनुसार शत्रु से सन्धि और मित्र से लड़ाई करनी चाहिये।

न कृतस्य न कर्तुश्च सख्यं संधीयते पुनः।
हृदयं तत्र जानाति कर्तुश्चैव कृतस्य च।। शान्ति 139/36

जिसका बुरा किया गया है और जिसने वह बुरा काम किया है उन दोनों के बीच फिर मैत्री नहीं हो सकती क्योंकि बुरा करने वाले और बुरे काम का फल भोगने वाले इन दोनों के हृदय में वह बुरा खटकता रहता है।

न हि तत्र धनं स्फीतं न च सम्बन्धिबान्धवाः।
तिष्ठन्ति यत्र सुहृदस्तिष्ठन्ति मतिर्मम।। शान्ति 168/3

मैं यही मानता हूँ कि जहाँ बहुत-सा धन और सम्बन्धी तथा बन्धु-बान्धव भी साथ नहीं देते वहाँ मित्र ही साथ रहते हैं।

मित्रद्रोहे निष्कृतिर्नास्ति लोके।
महत् पापं ब्रह्महत्या समं तत्।। आश्व 10/6

इस संसार में मित्र के साथ बैर करने वाला मनुष्य ब्रह्महत्या के समान भयंकर पाप करता है। मित्रद्रोह के पाप से छूटने का कोई रास्ता नहीं है।

मीठी–वाणी

सान्त्वमेकपदं शक्र पुरुषः सम्यगाचरन्।
प्रमाणं सर्वभूतानां यशश्चैवाप्नुयान्महत्।। शान्ति 84/3

इन्द्र! जिसका नाम एक ही पद का है वह एकमात्र वस्तु मीठी वाणी (सान्त्वना) है। मीठा बोलने वाला व्यक्ति सभी प्राणियों का प्रिय बन कर बहुत यश प्राप्त कर लेता है।

यो हि नाभाषते किंचित् सर्वदा भ्रुकुटीमुखः।
द्वेष्यो भवति भूतानां सान्त्वमिह नाचरन्।। शान्ति 84/5

जो मनुष्य सदा भौंहे चढ़ाये रहता है, किसी से बात नहीं करता है। उससे सभी लोग द्वेष करते हैं क्योंकि वह मीठा नहीं बोलता।

यस्तु सर्वमभिप्रेक्ष्य पूर्वमेवाभिभाषते।
स्मितपूर्वाभिभाषी च तस्य लोकः प्रसीदति।। शान्ति 84/6

जो सभी को देखकर पहले ही बात करता है और सबसे मुस्कुरा कर बोलता है उससे सब लोग प्रसन्न रहते हैं।

दानमेव हि सर्वत्र सान्त्वेनानभिजल्पितम्।
न प्रीणयति भूतानि निर्व्यञ्जनमिवाशनम्।। शान्ति 84/7

जैसे मिर्च मसालों, मिठाई, आदि व्यंजनों के बिना भोजन अच्छा नहीं लगता वैसे ही मधुर वचन बोले बिना दिया हुआ दान लोगों को प्रसन्न नहीं करता।

सुकृतस्य हि सान्त्वस्य श्लक्ष्णस्य मधुरस्य च।
सम्यगासेव्यमानस्य तुल्यं जातु न विद्यते।। शान्ति 84/10

यदि अच्छी तरह मधुर, स्नेह युक्त और उचित बात कही जाय तो इसके जैसा दूसरा कोई वशीकरण मन्त्र नहीं है।

वात्सल्यात्सर्वभूतेभ्यो वाच्याः श्रोत्रसुखा गिरः।
परितापोपघातश्च पारुष्यं चात्र गर्हितम्।। शान्ति 191/14

ऐसी वाणी बोलनी चाहिये जिसमें सभी प्राणियों के लिये स्नेह हो, तथा जो सुनने में अच्छी लगे। किसी को दुःख देना, मारना या कड़वा बोलना अनुचित है।

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः सत्यं वदेद् व्याहृतं तद् द्वितीयम्।
वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं प्रियं धर्मं वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम्।।

शान्ति 299/38

व्यर्थ बोलने की अपेक्षा चुप रहना अच्छा है। सत्य बोलना वाणी की दूसरी विशेषता है। प्रिय बोलना वाणी की तीसरी विशेषता है और धर्म सम्मत बोलना वाणी की चौथी विशेषता है।

मुक्तपुरुष

क्षुत्पिपासादयो भावा जिता यस्येह देहिनः।
क्रोधो लोभस्तथा मोहः सत्त्ववान् मुक्त एव सः।। शा० 288/25

जिस व्यक्ति ने भूख, प्यास, क्रोध, लोभ और मोह पर विजय प्राप्त कर ली है। आत्मिक और मानसिक बल से युक्त ऐसा पुरुष संसार के बन्धनों और विषय भोगों से सदा मुक्त रहता है। उसे संसार की कोई भी वस्तु अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकती।

द्यूते पाने तथा स्त्रीषु मृगयायां च यो नरः।
न प्रमाद्यति सम्मोहात् सततं मुक्त एव सः।। शान्ति 288/26

जो व्यक्ति जुए, शराब, स्त्रियों, शिकार आदि व्यसनों में अपने अज्ञान के कारण नहीं फंसता वह पुरुष सदा मुक्त होता है।

आत्मभावं तथा स्त्रीषु मुक्तमेव पुनः पुनः।
यः पश्यति सदा युक्तो यथावन्मुक्त एव सः।। शान्ति 288/28

जो योग के द्वारा मन एकाग्र रखकर स्त्रियों के प्रति अपना मन नहीं लगाता वह व्यक्ति सदा मुक्त ही है।

सम्भवं च विनाशं च भूतानां चेष्टितं तथा।
यस्तत्त्वतो विजानाति लोकेऽस्मिन् मुक्त एव सः।। शान्ति 288/29

जो मनुष्य इस संसार में प्राणियों के जन्म और मृत्यु तथा उनकी चेष्टाओं के बारे में ठीक प्रकार जान लेता है वह मुक्त ही है।

प्रस्थं वाहसहस्त्रेषु यात्रार्थं चैव कोटिषु।
प्रासादे मञ्चकं स्थानं यः पश्यति स मुच्यते।। शा० 288/30

जो हजारों और करोड़ों गाड़ियों में भरे हुए अन्न में से अपने पेट भरने लायक

थोड़े से अन्न को पर्याप्त समझता है और बड़े महल में खाट बिछाने जितनी जगह को पर्याप्त समझता है वह संसार के सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त होता है।

मृत्युनाभ्याहतं लोकं व्याधिभिश्चोपपीडितम्।
अवृत्तिकर्शितं चैव यः पश्यति स मुच्यते।। शान्ति 288/31

जो पुरुष यह भली-भाँति समझ लेता है कि इस संसार के सभी प्राणी मरने वाले हैं। वे रोगों से भी दुःखी हैं और जीविका न मिलने से परेशान है। ऐसा ज्ञानवान मनुष्य मुक्त ही होता है।

यः पश्यति स संतुष्टो न पश्यंश्च विहन्यते।
यश्चाप्यल्पेन संतुष्टो लोकेऽस्मिन् मुक्त एव सः।। शान्ति 288/32

जो इस संसार की असारता को समझ लेता है वह अपने जीवन की सभी अवस्थाओं में सन्तुष्ट रहता है किन्तु जो यह बात नहीं समझ पाता वह दुःखी रहता है और मारा जाता है। जो व्यक्ति थोड़ा मिलने पर भी संतुष्ट रहता है वह सदा मुक्त ही होता है।

अग्नीषोमाविदं सर्वमिति यश्चानुपश्यति।
न च संस्पृष्यते भावैरद्भुतैर्मुक्त एव सः।। शान्ति 288/33

जो इस जगत् की सभी वस्तुओं को अग्नि (भोक्ता) और सोम (भोज्य अर्थात् भोगने योग्य) के रूप में जान लेता है और स्वयं इस संसार के भोग्य पदार्थों के आकर्षण से दूर रहता है वह मुक्त ही होता है।

पर्यङ्कशय्या भूमिश्च समाने यस्य देहिनः।
शालयश्च कदन्नं च यस्य स्यान्मुक्त एव सः।। शान्ति 288/34

जिस व्यक्ति के लिये पलंग पर बिछा बिस्तरा और भूमि एक जैसी होती है और बढ़िया चावल तथा मोटे अनाज में भी उसे कोई अच्छा-बुरा नहीं लगता वह पुरुष मुक्त ही होता है।

क्षौमं च कुशचीरं च कौशेयं वल्कलानि च।
आविकं चर्म च समं यस्य स्यान्मुक्त एव सः।। शान्ति 288/35

जिस व्यक्ति के लिये सन, कुशा, रेशम, पेड़ों की छाल, ऊन और मृग चर्म से बने वस्त्र एक जैसे ही होते हैं वह मुक्त ही होता है।

पञ्चभूतसमुद्भूतं लोकं यश्चानुपश्यति।
तथा च वर्तते दृष्ट्वा लोकेऽस्मिन् मुक्त एव सः।। शा० 288/36

जो यह समझ जाता है कि इस संसार की सारी वस्तुएँ और प्राणी पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँच महाभूतों के संयोग से बने हैं और यह जानकर वह सांसारिक वस्तुओं के प्रति किसी प्रकार की आसक्ति या आकर्षण नहीं रखता तो वह मुक्त ही होता है।

सुखदुःखे समे यस्य लाभालाभौ जयाजयौ।
इच्छद्वेषौ भयोद्वेगौ सर्वथा मुक्त एव सः।। शान्ति 288/37

जिसकी दृष्टि में सुख-दुःख, लाभ-हानि, हार-जीत, इच्छा-द्वेष, डर और घबराहट एक ही जैसे होते हैं वह मुक्त ही होता है।

रक्तमूत्रपुरीषाणां दोषाणां संचयांस्तथा।
शरीरं दोषबहुलं दृष्ट्वा चैव विमुच्यते।। शान्ति 288/38

हमारे शरीर में खून, मल-मूत्र और अनेक तरह की गन्दगी भरी हुई है और इस शरीर में अनेक दोष हैं यह समझकर मनुष्य मुक्त हो जाता है।

वलीपलितसंयोगे कार्श्यं वैवर्ण्यमेव च।
कुब्जभावं च जरया यः पश्यति स मुच्यते।। शान्ति 288/39

बुढ़ापा आने पर यह शरीर झुर्रियों से भर जायेगा, सिर के बाल सफेद हो जायेंगे। शरीर दुर्बल और कान्तिरहित हो जायगा तथा कमर झुक जायेगी। यह जान लेने पर मनुष्य मुक्त हो जाता है।

पुंस्त्वोपघातं कालेन दर्शनोपरमं तथा।
बाधिर्यं प्राणमन्दत्वं यः पश्यति स मुच्यते।। शा० 288/40

जो यह समझ लेता है कि यौवन ढलने पर पौरुष शक्ति नष्ट हो जायेगी, आँखें देख नहीं पायेंगी, कान सुन नहीं पायेंगे और प्राणों की गति धीमी पड़ जायेगी। वह व्यक्ति मुक्त हो जाता है।

गतानृषींस्तथा देवानसुरांश्च तथा गतान्।
लोकादस्मात् परं लोकं यः पश्यति स मुच्यते।। शा० 288/41

इस संसार में जो ऋषि, देवता और असुर आये थे वे सब दूसरे लोक में चले गये यह जान लेने वाला मनुष्य मुक्त हो जाता है।

प्रभावैरन्वितास्तैस्तैः पार्थिवेन्द्राः सहस्रशः।
ये गताः पृथिवीं त्यक्तत्वा इति ज्ञात्वा विमुच्यते।। शा० 288/43

हजारों प्रभावशाली राजा यह पृथ्वी छोड़कर परलोक सिधार गये यह समझ लेने वाला मनुष्य मुक्त हो जाता है।

अर्थांश्च दुर्लभाँल्लोके क्लेशांश्च सुलभांस्तथा।
दुःखं चैव कुटुम्बार्थे यः पश्यति स मुच्यते।। शान्ति 288/43

इस संसार में धन बड़ी मुश्किल से मिलता है किन्तु दुःख आसानी से मिल जाते हैं। परिवार का पालन-पोषण करने के लिये भी तरह-तरह के दुःख उठाने पड़ते हैं। यह बात भली-भाँति समझ लेने वाला मनुष्य इस संसार के माया-मोह से छूट जाता है।

अपत्यानां च वैगुण्यं जनं विगुणमेव च।
पश्यन् भूयिष्ठशो लोके को मोक्षं नाभिपूजयेत्।। शा० 288/44

अपनी सन्तान ही बिगाड़ जाती है और संसार में अधिकतर खराब लोगों से ही पाला पड़ता है। यह देख कौन व्यक्ति मुक्त होना नहीं चाहेगा?

शास्त्राल्लोकाच्च यो बुद्धः सर्वं पश्यति मानवः।
असारमिव मानुष्यं सर्वथा मुक्त एव सः।। शान्ति 288/45

जो मनुष्य शास्त्रों को पढ़कर तथा संसार में अनुभवों से यह जान लेता है कि मनुष्यों के साथ मेरा सारा व्यवहार असार और बेमतलब है ऐसा पुरुषा मुक्त ही होता है।

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थान् यश्चरत्यात्मवशैरिह।
असज्जमानः शान्तात्मा निर्विकारः समाहितः।। शान्ति 329/15

आत्मभूतैरतद्भूतः सह चैव विनैव च।
स विमुक्तः परं श्रेयो नचिरेणाधितिष्ठति।। शान्ति 329/16

जो मनुष्य अपने वश में की हुई इन्द्रियों से अनासक्त भाव से इन्द्रियों के विषय भोगों का सेवन करता है। जिसका मन काम-क्रोधादि किसी भी विकार से रहित, शान्त और एकाग्र रहता है। हमें शरीर और इन्द्रियाँ अपनी लगती हैं किन्तु जो अपने शरीर और इन्द्रियों के सुख-दुःख, इच्छा-द्वेष आदि से अलग रहता है ऐसा मुक्त पुरुष जल्दी ही श्रेय को प्राप्त करता है।

अदर्शनमसंस्पर्शस्तथासम्भाषणं सदा।
यस्य भूतैः सह मुने स श्रेयो विन्दते परम्।। शा० 329/17

हे मुनि! जिस की नजर किसी प्राणी की ओर नहीं उठती। जो किसी प्राणी का स्पर्श नहीं करता और किसी से नहीं बोलता वह परम कल्याण को प्राप्त करता है।

विद्या कर्म च शौचं च ज्ञानं च बहुविस्तरम्।
अर्थार्थमनुसार्यन्ते सिद्धार्थश्च विमुच्यते।। शान्ति 329/36

अर्थ (परमात्मा) को प्राप्त करने के लिये विद्या, सत्कर्म, पवित्रता और विस्तृत ज्ञान का सहारा लिया जाता है। परमात्मा की प्राप्ति हो जाने पर जीव मुक्त हो जाता है।

हित्वा गुणमयं सर्वं कर्म हित्वा शुभाशुभम्।
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा एवं भवति निर्गुणः।। शान्ति 351/11

अपनी देह, इन्द्रियों आदि त्रिगुणों से युक्त सभी पदार्थों में ममता त्याग कर, शुभ और अशुभ कर्मों को त्याग कर तथा सत्य और असत्य को त्याग कर मनुष्य त्रिगुणातीत हो जाता है।

यः स्यादेकायने लीनस्तूष्णीं किंचिदचिन्तयन्।
पूर्वं पूर्वं परित्यज्य स तीर्णो बन्धनाद् भवेत्।। आश्व 19/1

जो मनुष्य अपने स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीन शरीरों में से पहले स्थूल शरीर का, फिर सूक्ष्म शरीर और बाद में अपने कारण शरीर का अभिमान या अपनापन त्यागकर सांसारिक विषयों आदि के बारे में कुछ भी नहीं सोचता अपितु मौन रहकर सभी प्राणियों के एकमात्र आश्रय परब्रह्म के चिन्तन में लीन रहता है वह इस संसार के सभी बन्धनों से छूट जाता है और मुक्त हो जाता है।

सर्वमित्रः सर्वसहः शमे रक्तो जितेन्द्रियः।
व्यपेतभयमन्युश्च आत्मवान् मुच्यते नरः।। आश्व 19/2

जो सबका मित्र, गर्मी-सर्दी, मान-अपमान, आदि सब कुछ सहन करने वाला, मन को शान्त करने के लिये प्रयत्नशील, जितेन्द्रिय, भय और क्रोध से रहित तथा आत्मज्ञानी है वह मुक्त हो जाता है।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यश्चरेन्नियतः शुचिः।
अमानी निरभीमानः सर्वतो मुक्त एव सः।। आश्व 19/3

जो शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान इन पाँचों नियमों का पालन करता है, अपने मन को पवित्र रखता है, सभी प्राणियों को अपने जैसा ही मानता है, जिसे सम्मान पाने की इच्छा नहीं है और जो घमण्ड नहीं करता। वह इस संसार के बन्धनों से सदा मुक्त रहता है।

जीवितं मरणं चोभे सुखदुःखे तथैव च।
लाभालाभे प्रियद्वेष्ये यः समः स च मुच्यते।। आश्व 19/4

जो जीवन-मरण, सुख-दुःख, हानि-लाभ और प्रिय-अप्रिय इन द्वन्द्वों में समान रहता है वह संसार के बन्धनों से छूट जाता है।

न कस्यचित् स्पृहयते नावजानाति किंचन।
निर्द्वन्द्वो वीतरागात्मा सर्वथा मुक्त एव सः।। आश्व 19/5

जो किसी की कोई वस्तु नहीं लेना चाहता, किसी का अपमान नहीं करता, जिसके मन पर सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों का असर नहीं होता, जिसके चित्त से सांसारिक पदार्थों के प्रति लगाव दूर हो गया है। ऐसा मनुष्य संसार से मुक्त ही होता है।

अनमित्रश्च निर्बन्धुरनपत्यश्च यः क्वचित्।
त्यक्तधर्मार्थकामश्च निराकाङ्क्षी च मुच्यते।। आश्व 19/6

जो किसी को भी अपना मित्र, बन्धु और सन्तान नहीं मानता। जिसने किसी इच्छा से किये जाने वाले धर्म, अर्थ और काम को त्याग दिया है, तथा जो सभी तरह की आकांक्षाओं से रहित है वह मुक्त हो जाता है।

नैव धर्मी न चाधर्मी पूर्वोपचितहायकः।
धातुक्षयप्रशान्तात्मा निर्द्वन्द्वः स विमुच्यते।। आश्व 19/7

जिसकी धर्म में या अधर्म में आसक्ति नहीं रहती, जो पूर्वजन्मों के इकट्ठे हुए कर्मों को त्याग चुका है, वासनाएँ नष्ट हो जाने के कारण जिसका चित्त शान्त हो चुका है, जो सभी तरह के द्वन्द्वों से उठ चुका है। वह मनुष्य मुक्त हो जाता है।

अकर्मवान् विकाङ्क्षश्च पश्येज्जगदशाश्वतम्।
अश्वत्थसदृशं नित्यं जन्ममृत्युजरायुतम्।। आश्व 19/8

वैराग्यबुद्धिः सततमात्मदोष व्यपेक्षकः।
आत्मबन्धविनिर्मोक्षं स करोत्यचिरादिव।। आश्व 19/9

जो किसी भी कर्म का कर्ता नहीं बनता, जिसके मन में कोई कामना नहीं रही है, जो इस संसार को अश्वत्थ-कल तक न रहने वाला-अर्थात् अनित्य समझ लेता है, तथा जो अपने शरीर को सदा जन्म, मरण और बुढ़ापे से घिरा जान लेता है, जिसकी बुद्धि वैराग्य युक्त हो गई है, जो सदा अपने दोषों पर ध्यान देता है। वह जल्दी ही अपने बन्धनों को नष्ट कर देता है।

अगन्धमरसमस्पर्शमशब्दमपरिग्रहम् ।
अरूपमनभिज्ञेयं दृष्ट्वाऽऽत्मानं विमुच्यते।। आश्व 19/10

जो आत्मा को गन्ध, रस, स्पर्श, शब्द, रूप और परिग्रह (वस्तुओं को इकट्ठा करना) से रहित तथा अज्ञेय जान लेता है वह संसार से मुक्त हो जाता है।

पञ्चभूतगुणैर्हीनममूर्तिमदहेतुकम्।
अगुणं गुणभोक्तारं यः पश्यति स मुच्यते।। आश्व 19/11

जो यह जान लेता है कि आत्मा, पंच महाभूतों पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश के गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द इन गुणों रहित है, निराकार है, कारण रहित है, निर्गुण होते हुए भी माया या प्रकृति के सम्बन्ध से पाँच महाभूतों के गुणों का भोग करता है, वह मनुष्य संसार के सभी बन्धनों से छूट जाता है।

विहाय सर्वसंकल्पान् बुद्ध्या शारीरमानसान्।
शनैर्निर्वाणमाप्नोति निरिन्धन इवानलः।। आश्व 19/12

जो बुद्धि से विचार करके शरीर और मन की सभी इच्छाओं को त्याग देता है वह धीरे-धीरे मुक्ति को उसी तरह प्राप्त कर लेता है जैसे लकड़ियाँ न रहने पर आग बुझ जाती है।

ज्ञानं त्वेवं परं विद्मः संन्यासं तप उत्तमम्।
यस्तु वेद निराबाधं ज्ञानतत्त्वं विनिश्चयात्।
सर्वभूतस्थमात्मानं स सर्वगतिरिष्यते।। आश्व 35/16

परमार्थ का ज्ञान ही परब्रह्म का ज्ञान है। संन्यास सबसे श्रेष्ठ तपस्या है। जो व्यक्ति इस बाधारहित ज्ञानमय तत्त्व को निश्चयपूर्वक जान लेता है और सभी प्राणियों में अपनी सत्ता को समझने लगता है वह सर्वव्यापक (सर्वगति) माना जाता है।

यो न कामयते किञ्चिन्न किंचिदभिमन्यते।
इहलोकस्थ एवैष ब्रह्मभूयाय कल्पते।। आश्व 35/18

जो व्यक्ति किसी वस्तु की कामना नहीं करता तथा जिसके मन में किसी तरह का अभिमान नहीं होता वह इस संसार में रहता हुआ भी ब्रह्मभाव को पा लेता है।

कामानात्मनि संयम्य क्षीणतृष्णः समाहितः।
सर्वभूतसुहृन्मित्रो ब्रह्मभूयाय कल्पते।। आश्व 42/47

जो व्यक्ति अपने मन में कामनाओं को वश में रखकर, तृष्णा को त्यागकर, एकाग्रचित्त तथा सभी प्राणियों का मित्र होता है उसे ब्रह्म प्राप्त हो जाता है।

यदा पश्यति भूतानि प्रसन्नात्माऽऽत्मनो हृदि।
स्वयंज्योतिस्तदा सूक्ष्मात् सूक्ष्मं प्राप्नोत्यनुत्तमम्।। आश्व 42/50

जब योगी प्रसन्नचित्त होकर अपने हृदय में सभी प्राणियों को देखने लगता है तब वह स्वयं ज्योतिस्वरूप होकर सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और सर्वोत्कृष्ट परमात्मा को पा लेता है।

यो विद्वान् सहवासं च विवासं चैव पश्यति। आश्व 35/17
तथैवैकत्वनानात्वे स दुःखात् प्रतिमुच्यते।। आश्व 47/7

जो ज्ञानी पुरुष संयोग को भी वियोग के रूप में ही देखता है और नाना प्रकार की वस्तुओं और प्राणियों में एक ही परमात्मतत्त्व को देखता है। वह दु:खों से छूट जाता है।

यो न कामयते किंचिन्न किंचिदवमन्यते।
इहलोकस्थ एवैष ब्रह्मभूयाय कल्पते।। आश्व 47/8

जो किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं करता तथा किसी का तिरस्कार नहीं करता वह इस संसार में रहता हुआ भी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

प्रधानगुणतत्वज्ञः सर्वभूतप्रधानवित्। आश्व 35/19
निर्ममो निरहंकारो मुच्यते नात्र संशयः।। आश्व 47/9

जो सब भूतों में प्रधान अर्थात् प्रकृति को तथा प्रकृति के सत्त्व, रजस्, तमस् इन गुणों को और प्रकृति के तत्त्व को अच्छी तरह समझ लेता है। ममता और अहंकार से परे रहता है वह निश्चय ही मुक्त हो जाता है।

हित्वा गुणमयं सर्वं कर्म जन्तुः शुभाशुभम्।
उभे सत्यानृते हित्वा मुच्यते नात्र संशयः।। आश्व 47/11

जो अच्छे और बुरे सारे त्रिगुणात्मक कार्यों को और झूठ तथा सच इन दोनों को भी छोड़ देता है ऐसा संन्यासी व्यक्ति मुक्त हो जाता है।

हित्वा सङ्गमयान् पाशान् मृत्युजन्मजरोदयान्।
निर्ममो निरहंकारो मुच्यते नात्र संशयः।। आश्व 47/15

जो जन्म, मरण और बुढ़ापे के चक्कर में डालने वाले आसक्ति रूप बन्धनों को तोड़ डलता है तथा ममता और अहंकार से छूट जाता है वह निस्संदेह मुक्त हो जाता है।

उच्छ्वासमात्रमपि चेद् योऽन्तकाले समो भवेत्।
आत्मानमुपसङ्गम्य सोऽमृतत्वाय कल्पते।। आश्व 48/2

जो मनुष्य अन्त समय में आत्मा का ध्यान करके सांस लेने भर के समय तक भी समभाव में स्थित हो जाता है वह मोक्ष पाने का अधिकारी बन जाता है।

निमेषमात्रमपि चेत् संयम्यात्मानमात्मनि।
गच्छत्यात्मप्रसादेन विदुषां प्राप्तिमव्ययाम्।। आश्व 48/3

जो मनुष्य एक क्षण के लिये भी अपने मन को आत्मा में एकाग्र कर लेता है वह अन्त:करण की प्रसन्नता प्राप्त करके विद्वानों को मिलने वाली अक्षय गति को प्राप्त कर लेता है।

मूर्ख

यः सौहृदे पुरुषं स्थापयित्वा पश्चादेनं दूषयते स बालः।। सभा 64/13

जो व्यक्ति किसी से मित्रता कर फिर उसे दोष देता है वह मूर्ख होता है।

न श्रेयसे नीयते मन्दबुद्धिः स्त्री श्रोत्रियस्येव गृहे प्रदुष्टा।
ध्रुवं न रोचेद् भरतर्षभस्य पतिः कुमार्या इव षष्टिवर्षः।। सभा 64/14

मूर्ख को उसी तरह श्रेय मार्ग पर नहीं चलाया जा सकता जैसे ब्राह्मण के घर में कुलटा स्त्री को यज्ञ आदि में नहीं लगाया जा सकता। दुर्योधन तुम्हें मेरी बात उसी तरह अच्छी नहीं लगती जैसे कुमारी कन्या को साठ वर्ष का पति।

शास्त्रं न शास्ति दुर्बुद्धिं श्रेयसे चेतराय च।
न वै वृद्धो बालमतिर्भवेद् राजन् कथंचन।। सभा 75/7

राजन्! खोटी बुद्धि वाले पुरुष को शास्त्र भी भला-बुरा नहीं सिखा सकते। बालबुद्धि (मन्दमति) व्यक्ति वृद्धों जैसा विवेकशील नहीं बन सकता।

असन्तोषपरा मूढ़ा सन्तोषं यान्ति पण्डिताः।। वन 2/45

मूर्ख मनुष्य असन्तुष्ट रहते हैं किन्तु विद्वान् सन्तुष्ट रहते हैं।

मूर्खान् सर्वत्र वर्जयेत्।। वन 150/45

मूर्खों को सभी कामों से अलग रखना चाहिये।

मृदुं वै मन्यते पापो भाषमाणमशक्तिकम्।
जितमर्थं विजानीयादबुधो मार्दवे सति।। उद्योग 4/6

पापी और मूर्ख व्यक्ति शान्तिपूर्ण बात करने वाले को दुर्बल समझता है। वह शान्ति का व्यवहार देखकर यह मानने लगता है कि मैंने इसका धन जीत लिया।

विद्याशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धांश्च भारत।
धनाभिजात वृद्धांश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते।। उद्योग 38/34

मूर्ख व्यक्ति; विद्यावृद्ध, शीलवृद्ध, वयोवृद्ध, बुद्धिवृद्ध, धनवृद्ध और अभिजनवृद्ध इन छह प्रकार के लोगों का सदा अपमान करता है।

अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम् ।
अनर्थाः क्षिप्रमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा।। उद्योग 38/35

दुश्चरित्र, मूर्ख, ईर्ष्यालु, अधार्मिक, कटुभाषी और क्रोधी पुरुष जल्दी ही मुसीबतों में पड़ जाते हैं।

यथा चाल्पश्रुतो मूढो धर्माणामविभागवित्।
वृद्धानपृष्ट्वा सन्देहं महच्छ्वभ्रमिवार्हति।। कर्ण 69/53

जिस व्यक्ति ने थोड़े बहुत शास्त्र पढ़े हैं और जो धर्म की बारीकियों को नहीं जानता वह यदि अपने सन्देह के बारे में अनुभवी वृद्ध पुरुष से नहीं पूछता तो संकट में पड़ जाता है।

शास्त्रदृष्टानविद्वान् यः समतीत्य जिघांसति। सौप्तिक 6/20
स पथः प्रच्युतो धर्मात् कुपथे प्रतिहन्यते। सौप्तिक 6/21

जो मूर्ख शास्त्रों को जानने वालों की सलाह न मानकर दूसरों को मारना चाहता है वह धर्म के रास्ते से भ्रष्ट होकर कुमार्ग में पड़कर स्वयं मारा जाता है।

स्वयमुत्पादयित्वाग्निं वस्त्रेण परिवेष्टयन्।
दह्यमानो मनस्तापं भजते न स पण्डितः।। स्त्री 1/39

जो मनुष्य स्वयं आग जलाकर उसे कपड़े में लपेटने की कोशिश करने पर मन ही मन दुःखी होता है उसे बुद्धिमान् नहीं कहा जाता।

गृहस्नेहावबद्धानां नराणामल्पमेधसाम्।
कुस्त्री खादति मांसानि माघमां सेगवा इव।। शान्ति 139/89

अपने घर के मोह में बंधे हुए मूर्ख मनुष्यों का मांस कुटिल स्त्री खा जाती है अर्थात् उसे चूस डालती है जैसे केकड़े की मादा को उसकी सन्तानें ही नष्ट कर देती हैं।

गृहं क्षेत्राणि मित्राणि स्वदेश इति चापरे।
इत्येवमवसीदन्ति नरा बुद्धिविपर्यये।। शान्ति 139/90

बुद्धि भ्रष्ट हो जाने पर कई मनुष्य घर, खेतों, मित्रों और अपने देश आदि की चिन्ता में डूबकर दुःख पाते रहते हैं।

प्रमाणमप्रमाणं वै यः कुर्यादबुधो जनः।
न स प्रमाणतामर्हो विवादजननो हि सः।। अनु 162/25

जो मूर्ख मनुष्य प्रमाण को भी अप्रमाण बना देता है तो इससे उसकी बात प्रामाणिक नहीं बन जाती क्योंकि वह केवल विवाद पैदा करता है।

सहस्त्रेणापि दुर्मेधा न बुद्धिमधिगच्छति।। आश्व 50/17

हजार उपाय करने पर भी मूर्ख पुरुष बुद्धिमान नहीं बनता।

मृत्यु

न स्म मृत्युं वयं विद्म रात्रौ वा यदि वा दिवा।
न चापि कंचिदमरमयुद्धेनानुशुश्रुम।। सभा 17/2

हम नहीं जानते कि मृत्यु दिन में आयेगी या रात में। न ही हमें यह पता है कि कोई व्यक्ति युद्ध न करने के कारण अमर हो गया है।

न व्याधयो नापि यमः प्राप्तुं श्रेयः प्रतीक्षते।
यावदेव भवेत्कल्पस्तावच्छ्रेयः समाचरेत्।। सभा 56/10

रोग और मृत्यु यह प्रतीक्षा नहीं करती कि मनुष्य का काम हो गया है या नहीं। इसलिये शरीर में जब तक शक्ति हो हमें अपने काम कर लेने चाहियें।

निमेषादपि कौन्तेय यस्यायुरपचीयते।
सूच्येवाञ्जनचूर्णस्य किमिति प्रतिपालयेत्।। वन 35/3

कुन्तीपुत्र! सलाई से थोड़ा-थोड़ा उठाये जाने वाले सुरमे की भाँति एक एक क्षण में मनुष्य की आयु क्षीण हो रही है। क्या ऐसा मनुष्य प्रतीक्षा कर सकता है?

शरीरिणां हि मरणं शरीरे नित्यमाश्रितम्।। वन 35/6

देहधारियों की मृत्यु सदा उनके शरीर में बैठी रहती है।

न मृतो जयते शत्रूञ्जीवन् भद्राणि पश्यति।। वन 252/39

मरा हुआ मनुष्य शत्रुओं को नहीं जीत सकता। जीवित पुरुष ही सुख के दिन देखता है।

अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुङ्क्ते वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून्।
द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः।। उद्योग 40/16

मृत पुरुष का धन दूसरे लोग भोगते हैं। उसका शरीर पक्षी और अग्नि खा जाते हैं। मनुष्य पाप और पुण्य कर्मों से बंधा हुआ परलोक में जाता है।

उत्सृज्य विनिवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदः सुताः।
अपुष्पानफलान् वृक्षान् यथा तात पतत्रिणः।। उद्योग 40/17

तात! जैसे पक्षी फल फूल से रहित पेड़ों को छोड़ देते हैं वैसे ही मृतक के सम्बन्धी, मित्र और पुत्र उसे चिता में छोड़कर लौट जाते हैं।

अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयंकृतम्।
तस्मात् तु पुरुषो यत्नाद् धर्मं संचिनुयाच्छनैः।। उद्योग 40/18

अग्नि में डाले हुए पुरुष के साथ उसके किये हुए कर्म जाते हैं। इसलिये मनुष्य को प्रयत्नपूर्वक धीरे-धीरे धर्म का संग्रह करना चाहिये।

उभे सत्ये क्षत्रियैतस्य विद्धि मोहान्मृत्युः सम्मतोऽयं कवीनाम्।
प्रमादं वै मृत्युरहं ब्रवीमि तथाप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि।।
उद्योग 42/4

मृत्यु है और वह ब्रह्मचर्य पालन रूप कर्म से दूर होती है और मृत्यु नहीं है, ये दोनों ही बातें ठीक हैं। विद्वान् मोह को मृत्यु मानते हैं किन्तु मैं प्रमाद को ही मृत्यु मानता हूँ और अप्रमाद को अमरता।

प्रमादाद् वै असुराः पराभवन्न प्रमादाद् ब्रह्मभूताः सुराश्च।
नैव मृत्युर्व्याघ्र इवात्ति जन्तून् न ह्यस्य रूपमुपलभ्यते हि।। उद्योग 42/5

प्रमाद से असुर हारे और अप्रमाद से देवों ने ब्रह्मपद पा लिया। मृत्यु बाघ की तरह प्राणियों को नहीं खाती और न ही मृत्यु का कोई प्रकट रूप है।

यमं त्वेके मृत्युमतोऽन्यमाहुरात्मावसन्नममृतं ब्रह्मचर्यम्।
पितृलोके राज्यमनुशास्ति देवः शिवः शिवानामशिवोऽशिवानाम्।।
उद्योग 42/6

एक विचार यह है कि यम ही मृत्यु है। कुछ का कहना है कि ब्रह्मचर्य का

पालन करता हुआ आत्मा अमृत का रूप है। यमदेव पितृलोक में शासन करते हैं। वे पुण्यात्माओं के लिये मंगलमय और पापियों के लिये अमंगलकारी हैं।

अस्यादेशान्निसरते नराणां क्रोधः प्रमादः लोभरूपश्च मृत्युः।
अहंगतेनैव चरन् विमार्गान् च चात्मनो योगमुपैति कश्चित्।।

उद्योग 42/7

यम के आदेश से ही मृत्यु; क्रोध, प्रमाद और लोभ के रूप में मनुष्यों को नष्ट कर रही है। अहंकार के कारण गलत रास्तों पर चलता हुआ मनुष्य परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

ते मोहितास्तद्वशे वर्तमाना इतः प्रेतास्तत्र पुनः पतन्ति।
ततस्तान् देवा अनुविप्लवन्ते अतो मृत्युर्मरणाख्यामुपैति।। उद्योग 42/8

मनुष्य क्रोध, लोभ और प्रमाद से मोहित होकर तथा अहंकार के वश में पड़कर इस लोक से जाकर फिर जन्म मरण के चक्र में पड़ते हैं। मरने पर मनुष्य के प्राण, इन्द्रियाँ और मन भी साथ जाते हैं। शरीर से प्राण और इन्द्रियों का वियोग हो जाने से मृत्यु 'मरण' कहलाती है।

सोऽभिध्यायन्नुत्पतितान् निहन्यादनादरेणप्रतिबुध्यमानः।
नैनं मृत्युरिवात्ति भूत्वा एवं विद्वान् यो विनिहन्ति कामान्।।

उद्योग 42/12

मृत्यु को जीतना चाहने वाले मनुष्य को परमात्मा का ध्यान करके और विषय भोगों को तुच्छ मानकर इन विषयों की कामना पैदा होते ही भोगों की इच्छा को नष्ट कर देना चाहिये। जो विवेकशील मनुष्य भोगों की इच्छा को नष्ट कर देता है उसे मृत्यु साधारण मनुष्यों की तरह नहीं खाती अर्थात् वह जन्म मरण के चक्र से छूट जाता है।

न चास्त्रेण न शौर्येण तपसा मेधया न च।
न धृत्या न पुनस्त्यागान्मृत्योः कश्चिद् विमुच्यते।। भीष्म 14/60

कोई भी मनुष्य न अस्त्र से, न वीरता से, न तपस्या से, न बुद्धि से, न धैर्य से और न ही त्याग करने से मृत्यु से छूट सकता है।

न ह्येव ब्रह्मचर्येण न वेदाध्ययनेन च।। द्रोण 11/44
न क्रियाभिर्न चास्त्रेण मृत्योः कश्चिन्निवार्यते। द्रोणा 11/45

न तो ब्रह्मचर्य का पालन करने से, न ही वेद पढ़ने से, न कर्मकाण्ड करने से और न ही हथियारों के द्वारा मनुष्य अपने को मृत्यु से बचा सकता है।

पक्वानां हि वधे सूत वज्रायन्ते तृणान्युत।। द्रोण 11/48

जो लोग काल से पक गये हैं उनकी मृत्यु के लिये तिनके भी वज्र का काम देते हैं।

देवदानवगन्धर्वान् मृत्युर्हरति भारत।। द्रोण 52/11

भरतनन्दन युधिष्ठिर! मृत्यु देवताओं, राक्षसों और गन्धर्वों के प्राण हर लेती है।

लोभःक्रोधोऽभ्यसूयेर्ष्या द्रोहो मोहश्च देहिनाम्।। द्रोण 54/38

अह्रीश्चान्योन्यपरुषा देहं भिन्द्युः पृथग्विधाः।। द्रोण 54/39

लोभ, क्रोध, असूया, ईर्ष्या, द्रोह, मोह, निर्लज्जता और एक दूसरे को कही गई कठोर वाणी ये बुराइयाँ ही देहधारियों की देह को नष्ट करें।

सर्वे देवाः प्राणिभिः प्रायणान्ते गत्वा वृत्ताः संनिवृत्तास्तथैव।।

द्रोण 54/46

आयु का अन्त होने पर सारी इन्द्रियाँ प्राणियों के साथ परलोक में चली जाती हैं और फिर प्राणी के साथ इस लोक में लौट आती हैं।

न नूनं देहभेदोऽस्ति काले राजननागते।। द्रोण 187/42

राजन्! अन्त समय आये बिना किसी का शरीर नष्ट नहीं होता।

प्राज्ञस्य मूढस्य च जीवितान्ते नास्ति प्रमोक्षोऽन्तकसत्कृतस्य।।

कर्ण 37/25

कोई व्यक्ति चाहे विद्वान् हो या मूर्ख हो। आयु समाप्त होने पर वह यमराज से नहीं बच सकता।

दुःखं नूनं कृतान्तस्य गतिं ज्ञातुं कथंचन।। शल्य 65/16

मृत्यु या काल की गति किसी भी तरह से जान सकना कठिन ही है।

विनाशः सर्वभूतानां कालपर्यायमागतः।। शल्य 65/23

काल-क्रम से एक न एक दिन सभी प्राणियों के नाश की घड़ी आ ही जाती है।

दुर्मरं पुनरप्राप्ते काले भवति केनचित्।। स्त्री 20/24

मृत्यु का समय आये बिना किसी का मरना बड़ा कठिन होता है।

नौषधानि न मन्त्राश्च न होमा न पुनर्जपाः।
त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया चापि मानवम्।। शान्ति 28/35

बुढ़ापे और मृत्यु के वश में पड़े हुए मनुष्य को दवाएँ, मन्त्र, जप और यज्ञ आदि भी नहीं बचा पाते हैं।

प्राज्ञो वा यदि वा मूर्खः सधनो निर्धनोऽपि वा।
सर्वः कालवशं याति शुभाशुभसमन्वितः।। शान्ति 153/43

कोई चाहे बुद्धिमान हो या मूर्ख, धनवान हो या निर्धन सभी लोग अपने अच्छे और बुरे कर्मों के साथ काल के वश में पड़ते ही हैं।

यौवनस्थांश्च बालांश्च वृद्धान् गर्भगतानपि।
सर्वानाविशते मृत्युरेवंभूतमिदं जगत्।। शान्ति 153/45

मृत्यु; युवा, बालक, वृद्ध और गर्भ के शिशु को मार देती है। इस संसार की यही दशा है।

तपसापि हि संयुक्ता धनवन्तो महाधियः।
सर्वे मृत्युवशं यान्ति तदिदं प्रेतपत्तनम्।। शान्ति 153/72

बड़े-बड़े तपस्वी, विद्वान और धनवान ये सभी मृत्यु के वश में आ जाते हैं। यह श्मशान तो प्रेतों का शहर है।

मृत्युनाभ्याहतो लोको जरया परिवारितः।
अहोरात्राः पतन्त्येते ननु कस्मान्न बुध्यसे।। शान्ति 175/9

इस संसार को मृत्यु मारती जा रही है। हमें बुढ़ापे ने घेर रखा है और रात-दिन सभी प्राणियों की आयु छीनते जा रहे हैं फिर भी हम समझ नहीं पाते।

अनवाप्तेषु कामेषु मृत्युरभ्येति मानवम्।। शान्ति 175/12

मनुष्य की इच्छाएँ पूरी भी नहीं होतीं कि मृत्यु आ जाती है।

शष्पाणीव विचिन्वन्तमन्यत्रगत मानसम्।
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति।। शान्ति 175/13

जैसे घास चरते हुए मेमने को बाघिन दबोच लेती है वैसे ही तरह-तरह की बातें सोचते हुए मनुष्य को मृत्यु ले जाती है।

अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो मा त्वां कालोऽत्यगादयम्।
अकृतेष्वेव कार्येषु मृत्युर्वै सम्प्रकर्षति।। शान्ति 175/14

जो कल्याण के काम हैं उन्हें आज ही कर लेना चाहिये। समय को निकलने नहीं देना चाहिये क्योंकि काम अधूरे रह जायेंगे और मृत्यु आ जायेगी।

तं पुत्रपशुसम्पन्नं व्यासक्तमनसं नरम्।
सुप्तं व्याघ्रो मृगमिव मृत्युरादाय गच्छति।। शान्ति 175/18

जैसे सोते हुए हरिण को बाघ उठा ले जाता है वैसे ही पुत्रों और पशुओं से युक्त और इन्हीं में मन लगाये रखने वाले मनुष्य को मृत्यु ले जाती है।

संचिन्वानकमेवैनं कामानामवितृप्तकम्।
व्याघ्रः पशुमिवादाय मृत्युरादाय गच्छति।। शान्ति 175/19

मनुष्य अभी तरह तरह की वस्तुएँ जमा कर रहा होता है और उसकी इच्छाएँ भी पूरी नहीं होतीं कि उसे मृत्यु आकर उसी तरह ले जाती है जैसे पशु को बाघ उठाकर ले जाता है।

इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत् कृताकृतम्।
एवमीहासुखासक्तं कृतान्तः कुरुते वशे।। शान्ति 175/20

मैंने यह काम कर लिया और अभी यह काम करना है। इस तरह अनेक कामों में फंसे हुए और इच्छाओं तथा सुख में बंधे हुए मनुष्य को मृत्यु अपने वश में कर लेती है।

कृतानां फलमप्राप्तं कर्मणां कर्मसंज्ञितम्।
क्षेत्रापणगृहासक्तं मृत्युरादाय गच्छति।। शान्ति 175/21

मनुष्य को अपने कर्मों का फल मिलने भी नहीं पाता कि खेत, दुकान या घर के कामों में लगे हुए व्यक्ति को मृत्यु ले जाती है।

मृत्युर्जरा च व्याधिश्च दुःखं चानेककारणम्।
अनुषक्तं यदा देहे किं स्वस्थ्य इव तिष्ठसि।। शान्ति 175/23

इस शरीर में मृत्यु, बुढ़ापा, बीमारी और अनेक कारणों से होने वाले दुःख लगे हुए हैं फिर भी तुम निश्चिन्त से हो क्यों बैठे हो?

जातमेवान्तकोऽन्ताय जरा चान्वेति देहिनम्।
अनुषक्ता द्वयेनैते भावाः स्थावरजङ्गमाः।। शान्ति 175/24

जीव के जन्म लेते ही उसका अन्त करने के लिये मृत्यु और बुढ़ापा उसके पीछे लग जाते हैं। सारे चर और अचर प्राणी इन दोनों से बंधे हुए हैं।

मृत्युनाभ्याहतो लोको जरया परिवारितः।
अहोरात्राः पतन्तीमे तच्च कस्मान्न बुध्यसे।। शान्ति 277/9

मृत्यु सभी प्राणियों को मार रही है। सभी को बुढ़ापा घेर लेता है। दिन और रात हम पर टूटे पड़ते हैं। यह देखकर भी प्राणी क्यों नहीं समझते?

रात्र्यां रात्र्यां व्यतीतायामायुरल्पतरं यदा।
गाधोदके मत्स्य इव सुखं विन्देत कस्तदा।। शान्ति 277/11

प्रत्येक रात बीतने के साथ ही आयु घटती जा रही है। ऐसी हालत में छिछले पानी में रहने वाली मछली की तरह कौन व्यक्ति सुखी होगा?

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य न वा कृतम्।। शान्ति 277/13

कल का काम आज ही कर लेना चाहिये और तीसरे पहर करने वाला काम सवेरे ही कर लेना चाहिये, क्योंकि मृत्यु यह प्रतीक्षा नहीं करती कि किसी ने अपना काम पूरा कर लिया है या नहीं।

दुर्बलं बलवन्तं च प्राज्ञं शूरं जडं कविम्। शान्ति 175/22
अप्राप्तसर्वकामार्थं मृत्युरादाय गच्छति।। शान्ति 277/22

कोई मनुष्य कमजोर हो या शक्तिशाली, बुद्धिमान हो या शूरवीर, मूर्ख हो या विद्वान्, मृत्यु मनुष्य की सारी इच्छाएँ पूरी होने से पहले ही उसे उठाकर ले जाती है।

न मृत्युसेनामायान्तीं जातु कश्चित् प्रबाधते।
बलात् सत्यमृते त्वेकं सत्ये ह्यमृतमाश्रितम्।। शा० 277/25

एकमात्र सत्य के सिवाय कोई भी मनुष्य आती हुई मृत्यु की सेना को बलपूर्वक नहीं रोक सकता। सत्य में ही अमृत प्रतिष्ठित है।

तस्मात् सत्यव्रताचारः सत्यव्रतपरायणः।
सत्यकामः समो दान्तः सत्येनैवान्तकं जयेत्।। शान्ति 277/29

इसलिये मनुष्य को सत्यव्रत का आचरण करना चाहिये, उसे सत्य का पालन करना चाहिये और सत्य की कामना करनी चाहिये। मनुष्य को सबके प्रति समान भाव रखना चाहिये, जितेन्द्रिय बनना चाहिये और सत्य से मृत्यु पर विजय पानी चाहिये।

मृत्युरापद्यते मोहात् सत्येनापद्यतेऽमृतम्।। शान्ति 277/30

मोह से मृत्यु आती है और सत्याचरण से अमरत्व की प्राप्ति होती है।

न मातृपुत्रबान्धवा न संस्तुतः प्रियो जनः।
अनुव्रजन्ति संकटे व्रजन्तमेकपातिनम्।। शान्ति 321/50

जीव अकेले ही परलोक जाता है। इस संकट के समय उसके माता, पुत्र, भाई तथा अन्य प्रशंसित प्रियजन भी उसका साथ नहीं देते।

यदेव कर्म केवलं पुरा कृतं शुभाशुभम्।
तदेव पुत्र सार्थिकं भवत्यमुत्र गच्छतः।। शान्ति 321/51

पुत्र! परलोक जाते समय पहले किया हुआ अच्छा और बुरा कर्म ही साथ रहता है।

हिरण्यरत्नसंचयाः शुभाशुभेन सञ्चिताः।
न तस्य देहसंक्षये भवन्ति कार्यसाधकाः।। शान्ति 321/52

अच्छे और बुरे उपायों से इकट्ठे किये सोने और रत्नों के भण्डार भी मृत्यु के समय काम नहीं आते।

परत्रगामिकस्य ते कृताकृतस्य कर्मणः।
न साक्षि आत्मा समो नृणामिहास्ति कश्चन।। शान्ति 321/53

परलोक जाते हुए तुम्हारे किये और न किये गये कर्मों का गवाह आत्मा के सिवाय और कोई नहीं होता।

किं ते धनेन किं बन्धुभिस्ते किं ते पुत्रैः पुत्रक यो मरिष्यसि।
आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं पितामहास्ते क्व गताश्च सर्वे।।

शा० 321/72

बेटा! जब तुम्हें एक न एक दिन मरना ही है तो धन, बन्धु-बान्धवों और पुत्रों से तुम्हें क्या लेना है? इसलिये तुम हृदय की गुफा में छिपे हुए आत्मतत्त्व को खोजो। आज़ तुम्हारे पितामह और पूर्वज कहाँ चले गये?

अनुगम्य विनाशान्ते निवर्तन्ते ह बान्धवाः।
अग्नौ प्रक्षिप्य पुरुषं ज्ञातयः सुहृदस्तथा।। शान्ति 321/74

मरने के बाद भाई-बन्धु, सम्बन्धी और मित्र श्मशान तक पीछे-पीछे जाते हैं और मृत पुरुष को चिता में जलाकर लौट आते हैं।

सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
तथाऽऽत्मानं समादध्याद् भ्रश्यते न पुनर्यथा।। शान्ति 321/80

यह दुर्लभ मनुष्य शरीर स्वर्ग की सीढ़ी जैसा है। इसे पाकर अपने को इस प्रकार धर्म में लगाओ जिससे स्वर्ग से न गिरना पड़े।

मातृपितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
अनागतान्यतीतानि कस्य ते कस्य वा वयम्।। शान्ति 321/85

हमारे पहले जन्मों में हजारों माता-पिता और सैकड़ों पुत्र तथा पत्नियां हो चुकी हैं और भविष्य में भी होंगी। हम उनमें से किसके हैं और वे हममें से किसके हैं?

अहमेको न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित्।
न तं पश्यामि यस्याहं तन्न पश्यामि यो मम।। शान्ति 321/86

मैं अकेला हूँ। कोई दूसरा मेरा नहीं है और न ही मैं किसी का हूँ। मैं ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं देखता जिसका मैं होऊँ या जो मेरा हो।

न तेषां भवता कार्यं न कार्यं तव तैरपि।
स्वकृतैस्तानि यातानि भवांश्चैव गमिष्यति।। शान्ति 321/87

तुम उनका कुछ नहीं कर सकते। वे भी तुम्हारा कुछ नहीं कर सकते। वे अपने कर्मों के साथ चले गये। तुम भी अपने कर्मों के साथ चले जाओगे।

युवैव धर्मशीलः स्यादनिमित्तं हि जीवितम्। शान्ति 277/15
फलानामिव पक्वानां सदा हि पतनाद् भयम्।। अनु 145 दा० पा०XIV

मनुष्य को युवावस्था से ही धर्म का पालन करना चाहिये क्योंकि जीवन का कोई ठिकाना नहीं है। शरीर को पके हुए फल की तरह कभी भी गिर जाने का डर लगा ही रहता है।

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
कोऽपि तद् वेद यत्रासौ मृत्युना नाभिवीक्षितः।। अनु 145 दा० पा०XIV

कल का काम आज ही कर डालना चाहिये और तीसरे पहर का काम दोपहर से पहले ही कर लेना चाहिये। क्या कोई भी व्यक्ति ऐसे स्थान को जानता है जिसे मृत्यु न जानती हो?

मोक्ष

अनादिनिधनो ह्यात्मा तं बुद्ध्वा विचरेन्नरः।
अक्रुध्यन्नप्रहृष्यंश्च नित्यं विगतमत्सरः।। शान्ति 249/5

आत्मा, आदि और अन्त से रहित है। उसे जानकर मनुष्य हर्ष, क्रोध और ईर्ष्या से रहित होकर विचरता रहे।

इत्येवं हृदयग्रन्थिं बुद्धिचिन्तामयं दृढम्।
अनित्यं सुखमासीत अशोचंश्छिन्न संशयः।। शान्ति 249/6

बुद्धि की चिन्ता आदि से मजबूत हुई हृदय की अविद्या युक्त अनित्य गाँठ को उपर्युक्त ढंग से काटकर शोक और सन्देह से रहित होकर सुखपूर्वक परमात्म स्वरूप में स्थित हो जाये।

एवं बुद्ध्वा नरः सर्वं भूतानामागतिं गतिम्।
समवेक्ष्य च वैषम्यं लभते शममुत्तमम्।। शान्ति 249/9

जो मनुष्य प्राणियों के आवागमन (जन्म-मरण) को जानता है और उनकी विषम अवस्था या दुःखी अवस्था पर विचार करता है उसे परम शन्ति प्राप्त होती है।

एतद् वै जन्मसामर्थ्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः।
आत्मज्ञानं शमश्चैव पर्याप्तं तत्परायणम्।। शान्ति 249/10

मनुष्य में यह आत्मज्ञान प्राप्त करने का सामर्थ्य है विशेष रूप से ब्राह्मण में यह सामर्थ्य अधिक है। मन और इन्द्रियों का संयम (शम) और आत्मज्ञान ये दोनों मोक्षप्राप्ति के लिये पर्याप्त साधन हैं।

मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं परमं तपः।
तज्ज्यायः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते।। शान्ति 250/4

मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही सबसे बड़ी तपस्या है। यही सब धर्मों में श्रेष्ठतम परम धर्म बताया जाता है। इसी तपस्या से मोक्ष मिलता है।

तानि सर्वाणि संधाय मनः षष्ठानि मेधया।
आत्मतृप्त इवासीत बहुचिन्त्यमचिन्तयन्।। शान्ति 250/5

मन सहित सारी इन्द्रियों को बुद्धि द्वारा स्थिर करके और तरह तरह की बातें न सोचते हुए आत्मा में तृप्त होकर ध्यान करे।

गोचरेभ्यो निवृत्तानि यदा स्थास्यन्ति वेश्मनि।
तदा त्वमात्मनाऽऽत्मानं परं द्रक्ष्यसि शाश्वतम्।। शान्ति 250/6

जब ये इन्द्रियाँ अपने विषयों से हटकर अपने निवास स्थान में आ जायेंगी तब तुम स्वयं उस परमात्मा को देख लोगे।

सर्वात्मानं महात्मानं विधूममिव पावकम्।
तं पश्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा ये मनीषिणः।। शान्ति 250/7

धूमरहित अग्नि के समान देदीप्यमान वह परमात्मा ही सबका आत्मा और परम महान है। महात्मा और तत्त्ववेत्ता ज्ञानी ही उस परमात्मा को देख पाते हैं।

ज्ञानदीपेन दीप्तेन पश्यत्यात्मानमात्मनि।
दृष्ट्वा त्वमात्मनाऽऽत्मानं निरात्मा भव सर्ववित्।। शान्ति 250/10

मनुष्य प्रज्वलित ज्ञान दीप के द्वारा ही अपने अन्तःकरण में परमात्मा के दर्शन करता है। तुम भी आत्मा के द्वारा परमात्मा को साक्षात् करके सर्वज्ञ और अभिमान से रहित हो जाओ।

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो मुक्तत्वच इवोरगः।
परां बुद्धिमवाप्येह विपाप्मा विगतज्वरः।। शान्ति 250/11

केंचुली छोड़कर निकले हुए साँप की तरह सभी पापों से छूट कर और उत्तम बुद्धि (ज्ञान) पाकर तुम पाप और चिन्ता से मुक्त हो जाओ।

करणे घटस्य या बुद्धिर्घटोत्पत्तौ न सा मता।
एवं धर्माभ्युपायेषु नान्यधर्मेषु कारणम्।। शान्ति 274/3

घड़ा बनाने के लिये बुद्धि लगाई जाती है उसी तरह की बुद्धि घड़ा बन जाने पर आवश्यक नहीं रहती। इसी प्रकार चित्तशुद्धि के लिये यज्ञ आदि कर्मों का लक्ष्य पूरा हो जाने पर मोक्ष के लिये ये जरूरी नहीं रहते।

क्षमया क्रोधमुच्छिन्द्यात् कामं संकल्पवर्जनात्।
सत्त्वसंसेवनाद् धीरो निद्रां च च्छेत्तुमर्हति।। शान्ति 274/5

मुमुक्षु पुरुष को क्षमा से क्रोध को और संकल्पों के त्याग से इच्छाओं को नष्ट करना चाहिये। ज्ञान, ध्यान आदि सात्त्विक उपायों से धैर्यशाली पुरुष को नींद पर काबू पाना चाहिये।

अप्रमादाद् भयं रक्षेच्छ्वासं क्षेत्रज्ञशीलनात्।
इच्छां द्वेषं च कामं च धैर्येण विनिवर्तयेत्।। शान्ति 274/6

सावधान रहकर भय को दूर करना चाहिये। आत्मा का चिन्तन करके श्वास की रक्षा करनी चहिये। और धैर्य के द्वारा इच्छा, द्वेष तथा काम को वश में करना चाहिये।

भ्रमं सम्मोहमावर्तमभ्यासाद् विनिवर्तयेत्।
निद्रां च प्रतिभां चैव ज्ञानाभ्यासेन तत्त्ववित्।। शान्ति 274/7

तत्त्ववेत्ता पुरुष शास्त्र पढ़कर भ्रम, मोह और संशय को दू करे। निद्रा-आलस्य और अनेक विषयों में भटकने वाली बुद्धि को ज्ञान के अभ्यास से वश में रखे।

उपद्रवांस्तथा रोगान् हितजीर्णमिताशनात्।
लोभं मोहं च सन्तोषाद् विषयांस्तत्वदर्शनात्।। शा० 274/8

शरीर के कष्टों और रोगों को हितकर, सुपच और परिमित भोजन से तथा लोभ और मोह को सन्तोष से और विषय भोगों को इन भोगों के परिणाम दु:ख आदि पर विचार करने से दूर करना चाहिये।

अनुक्रोशादधर्मं च जयेद् धर्ममवेक्षया।
आयत्या च जयेदाशामर्थं संगविवर्जनात्।। शान्ति 274/9

अधर्म को दया से जीतना चाहिये। भली-भाँति विचार करके धर्म पालन करना चाहिये। भविष्य का विचार करके आशा पर और लगाव छोड़कर अर्थ (धन) पाने की इच्छा पर विजय पानी चाहिये।

अनित्यत्वेन च स्नेहं क्षुधां योगेन पण्डितः।
कारुण्येनात्मनो मानं तृष्णां च परितोषतः।। शान्ति 274/10

ज्ञानी पुरुष को सभी वस्तुओं की अनित्यता को सोचकर स्नेह और आसक्ति को, योगाभ्यास के द्वारा भूख को, करुणा के द्वारा आत्माभिमान को और सन्तोष से तृष्णा को वश में करना चाहिये।

उत्थानेन जयेत् तन्द्रीं वितर्कं निश्चयाज्जयेत्।
मौनेन बहुभाष्यं च शौर्येण भयं त्यजेत्।। शान्ति 274/11

उद्योग और पुरुषार्थ से आलस्य पर, विपरीत तर्क को शास्त्रों के प्रति दृढ़ विश्वास रखकर, बहुत बोलने की आदत को मौन रहकर और भय पर वीरता के द्वारा विजय पानी चाहिये।

यच्छेद् वाङ्मनसी बुद्ध्या तां यच्छेज्ज्ञानचक्षुषा।
ज्ञानमात्मावबोधेन यच्छेदात्मानमात्मना।। शान्ति 274/12
तदेतदुपशान्तेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा ।

मुमुक्षु, वाणी और मन सहित सभी इन्द्रियाँ को बुद्धि से वश में करे। ज्ञान और विवेक के नेत्र से बुद्धि को वश में करे। आत्मज्ञान द्वारा विवेक ज्ञान को वश में करे

और आत्मा को परमात्मा में लीन कर दे। पवित्र आचार-विचार वाले साधक को सब ओर से उपरत होकर शान्त मन से परमात्मा का चिन्तन करना चाहिये।

योगदोषान् समुच्छिद्य पञ्च यान् कवयो विदुः।। शा० 274/13

कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम्।
परित्यज्य निषेवेत यतवाग् योगसाधनान्।। शान्ति 274/14

काम, क्रोध, लोभ, भय और निद्रा, योग के इन पाँच दोषों को नष्ट करके वाणी को संयम में रखते हुए योगसाधना करनी चाहिये।

ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीरार्जवं क्षमा।
शौचमाहारतः शुद्धिरिन्द्रियाणां च संयमः।। शान्ति 274/15
एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानमुपहन्ति च।
सिध्यन्ति चास्य संकल्पा विज्ञानं च प्रवर्तते।। शान्ति 274/16

ध्यान, स्वाध्याय, दान, सत्य, लज्जा, सरल व्यवहार, क्षमा, मन और शरीर की पवित्रता, शुद्ध सात्त्विक भोजन और इन्द्रिय संयम ये सब योग साधना के लिये आवश्यक हैं। इनका पालन करने से साधक का तेज बढ़ता है और वह अपने पाप नष्ट कर डालता है। साधक के संकल्प पूरे होने लगते हैं और हृदय में आत्मज्ञान प्रकट होने लगता है।

धूतपापः स तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निनीषेद् ब्राह्मणः पदम्।। शान्ति 274/17

सारे पाप धुल जाने पर और साधक के तेजस्वी, मिताहारी और जितेन्द्रिय बन जाने पर साधक काम-क्रोध को वश में करके अपने आप को ब्रह्म के पद में प्रतिष्ठित करने की इच्छा करे।

अमूढत्वमसंगित्वं कामक्रोध विवर्जनम्।
अदैन्यमनुदीर्णत्वमनुद्वेगो व्यवस्थितिः।। शान्ति 274/18
एष मार्गो हि मोक्षस्य प्रसन्नो विमलः शुचिः।
तथा वाक्कायमनसां नियमः कामतोऽन्यथा।। शान्ति 274/19

मूढ़ता और आसक्ति का न होना, काम-क्रोध का सर्वथा त्याग, दीनता, उद्दण्डता तथा उद्वेग से रहित रहना, चित्त को स्थिर रखना तथा निष्काम भाव से वाणी, मन तथा इन्द्रियों का संयम, यह मोक्ष का स्वच्छ, निर्मल और पवित्र पथ है।

मोक्षधर्मेषु निरतो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
प्राप्नोति परमं स्थानं यत् परं प्रकृतेर्ध्रुवम्।। शान्ति 278/2

मोक्षधर्म का पालन करने वाला, कम खाने वाला और इन्द्रियों को वश में रखने वाला व्यक्ति प्रकृति से परे परब्रह्म परमात्मा को निश्चय ही पा लेता है।

स्वगृहादभिनिस्सृत्य लाभेऽलाभे समो मुनिः।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत्।। शान्ति 278/3

मोक्ष चाहने वाले पुरुष को लाभ और हानि का विचार न करके और भोगों के उपस्थित होने पर भी भोगों के प्रति उदासीन रहकर मुनियों जैसा जीवन बिताना चाहिये और अपना घर त्यागकर संन्यास ले लेना चाहिये।

न चक्षुषा न मनसा न वाचा दूषयेदपि।
न प्रत्यक्षं परोक्षं वा दूषणं व्याहरेत् क्वचित्।। शा० 278/4

उसे आँख से, मन से और वाणी से दूसरों के दोष नहीं देखने, कहने और सोचने चाहिये। उसे किसी के सामने या पीठ पीछे किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिये।

न हिंस्यात् सर्वभूतानि मैत्रायणगतश्चरेत्।
नेदं जीवितमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित्।। शा० 278/5

उसे किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिये। सबके प्रति मित्रता की भावना रखनी चाहिये और इस जीवन के कारण किसी के साथ वैर नहीं करना चाहिये।

अतिवादांस्तितिक्षेत नाभिमन्येत कंचन।
क्रोध्यमानः प्रियं ब्रूयादाक्रुष्टः कुशलं वदेत्।। शा० 278/6

यदि कोई निन्दा या अपमान करे और बुरा-भला कहे तो इन बातों को सह लेना चाहिये। किसी बात पर अभिमान नहीं करना चाहिये। यदि कोई गुस्सा करे तो उससे भी मीठा बोले। यदि कोई गाली दे तो भी उसके लिये हितकारी बात कहे।

लाभं साधारणं नेच्छेन्न भुञ्जीताभिपूजितः।
अभिपूजितलाभं हि जुगुप्सेतैव तादृशः।। शान्ति 278/11

उसे सांसारिक (साधारण) लाभों की इच्छा नहीं करनी चाहिये। जहां विशेष आदर मिले वहाँ भोजन नहीं करना चाहिये। मुमुक्षु को आदर-सत्कार की निन्दा ही करनी चाहिये।

न चान्नदोषान् निन्देत न गुणानभिपूजयेत्।
शय्यासने विविक्ते च नित्यमेवाभिपूजयेत्।। शान्ति 278/12

भिक्षा में मिले अन्न की बुराई नहीं करनी चाहिये और न ही भिक्षा के भोजन की प्रशंसा करनी चाहिये। उसे एकान्त में सोने और बैठने का सदा प्रयत्न करना चाहिये।

शून्यागारं वृक्षमूलमरण्यमथवा गुहाम्।
अज्ञातचर्यां गत्वान्यां ततोऽन्यत्रैव संविशेत्।। शा० 278/13

वह एकान्त कुटिया में, पेड़ के नीचे, वन में, गुफा में अथवा अन्य किसी एकान्त स्थान में किसी को बताये बिना रहकर आत्मचिन्तन करे।

अनुरोधविरोधाभ्यां समः स्यादचलो ध्रुवः।
सुकृतं दुष्कृतं चोभे नानुरुध्येत कर्मणा।। शान्ति 278/14

उसे लोगों के अनुरोध और विरोध दोनों ही परिस्थितियों में समान भाव से रहना चाहिये। वह निश्चल और स्थिरचित्त बना रहे। उसे अपने कर्मों द्वारा पुण्य और पाप कर्मों का अनुसरण नहीं करना चाहिये।

नित्यतृप्तः सुसन्तुष्टः प्रसन्नवदनेन्द्रियः।
विभीर्जप्यपरो मौनी वैराग्यं समुपाश्रितः।। शान्ति 278/15

वह सदा तृप्त और सन्तुष्ट रहे। सदा प्रसन्न रहे। अपनी इन्द्रियों को शान्त बनाये रखे। किसी भी प्रकार का भय मन में न आने दे। प्रणव आदि का जप करता रहे और मौन रहकर संसार के प्रति वैराग्य से रहे।

अभ्यस्तं भौतिकं पश्यन् भूतानामागतिं गतिम्।
निःस्पृहः समदर्शी च पक्वापक्वेन वर्तयन्।
आत्मना यः प्रशान्तात्मा लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।। शान्ति 278/16

पंचभूतों से बना यह देह और इन्द्रियाँ आदि सभी पदार्थ नष्ट होने वाले हैं। संसार में प्राणियों का आना-जाना लगा रहता है। यह सब देखकर मुमुक्षु को किसी भी प्राणी या वस्तु के प्रति आसक्ति नहीं होनी चाहिये। वह सबके प्रति समान भाव बनाये रखे। पके हुए भोजन से या कन्दमूल-फल आदि बिना पकाये गये भोजन से निर्वाह करे। आत्मज्ञान के लिये अपने मन को शान्त रखे, मिताहार करे और जितेन्द्रिय रहे।

वाचोवेगं मनसः क्रोधवेगं हिंसावेगमुदरोपस्थवेगम्।
एतान् वेगान् विषहेद् वै तपस्वी निन्दा चास्य हृदयं नोपहन्यात्।।

शा० 278/17

मुमुक्षु को तपस्वी बनकर वाणी, मन, क्रोध, हिंसा, उदर और उपस्थ (शिश्न) के वेगों को वश में रखना चाहिये। यदि कोई निन्दा करे तो निन्दा से अपने हृदय में दु:ख अनुभव न करे।

मध्यस्थ एव तिष्ठेत प्रशंसानिन्दयोः समः।
एतत् पवित्रं परमं परिव्राजक आश्रमे।। शा० 278/18

अपनी निन्दा और प्रशंसा होने पर समान भाव रखकर उदासीन रहना चाहिये। संन्यास आश्रम में यह आचरण सबसे पवित्र होता है।

महात्मा सर्वतो दान्तः सर्वत्रैवानपाश्रितः।
अपूर्वचारकः सौम्यो अनिकेतः समाहितः।। शान्ति 278/19

संन्यासी को महामनस्वी, सब प्रकार से जितेन्द्रिय, सभी दृष्टियों से संगरहित, सौम्य स्वभाव, मठ और आश्रम में न रहने वाला तथा एकाग्रचित्त होना चाहिये। उसे पहले आश्रमों के अपने परिचित स्थानों पर नहीं जाना चाहिये।

वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां न संसृज्येत कर्हिचित्।
अज्ञातलिप्सं लिप्सेत न चैनं हर्ष आविशेत्।। शा० 278/20

मुमुक्ष को वानप्रस्थियों और गृहस्थियों से सम्पर्क नहीं रखना चाहिये। अपनी रुचि बताये बिना ही उसे जो कुछ मिल जाये उसी वस्तु को ले लेना चाहिये। उसके मन में प्रसन्नता का आवेश नहीं आना चाहिये।

विजानतां मोक्ष एष श्रमः स्यादविजानताम्।। शान्ति 278/21

यह संन्यासाश्रम ज्ञानियों के लिये तो मोक्ष रूप है किन्तु अज्ञानी पुरुषों के लिये परिश्रम ही है।

वैराग्यं पुनरेतस्य मोक्षस्य परमो विधिः।
ज्ञानादेव वैराग्यं जायते येन मुच्यते।। शान्ति 320/29

वैराग्य ही इस मोक्ष का प्रधान कारण है। वैराग्य, ज्ञान से ही प्राप्त होता है और वैराग्य से मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

आकिंचन्ये न मोक्षोऽस्ति किंचन्ये नास्ति बन्धनम्।
किंचन्ये चेतरे चैव जन्तुर्ज्ञानेन मुच्यते।। शान्ति 320/50

न तो दरिद्रता (अकिंचनता) में मोक्ष है और न ही सम्पन्नता में बन्धन है। दरिद्रता और सम्पन्नता दोनों ही अवस्थाओं में ज्ञान से ही मुक्ति होती है।

सर्वभूतदया धर्मो न चैकग्रामवासिता।
आशापाशविमोक्षश्च शस्यते मोक्षंकाङ्क्षिणाम्।। अनु 141/81

मोक्ष पाना चाहने वाले को सभी प्राणियों पर दया करनी चाहिये। उसे एक ही गाँव में नहीं रहना चाहिये और आशा का बन्धन तोड़ देना चाहिये।

न कुट्यां नोदके सङ्गो न वाससि न चासने।
न त्रिदण्डे न शयने नाग्नौ न शरणलये।। अनु 141/82

मोक्षाभिलाषी को कुटिया में, जल में, वस्त्र में, आसन में, त्रिदण्ड में, शय्या में, अग्नि में और किसी निवास में आसक्ति नहीं होनी चाहिये।

अध्यात्मगतिचित्तो यस्तन्मनास्तत्परायणः।
युक्तो योगं प्रति सदा प्रतिसंख्यानमेव च।। अनु 141/83

मुमुक्षु पुरुष को अध्यात्मज्ञान का ही सदा चिन्तन, मनन और निदिध्यासन करना चाहिये। उसे सदा योगाभ्यास करना चाहिये और आत्मतत्त्व का चिन्तन करते रहना चाहिये।

वृक्षमूलपरो नित्यं शून्यागारनिवेशनः।
नदी पुलिनशायी च नदीतीररतिश्च यः।। अनु 141/84
विमुक्तः सर्वसंगेषु स्नेहबन्धेषु च द्विजः।
आत्मन्येवात्मनो भावं समासज्जेत वै द्विजः।। अनु 141/85

मोक्ष के लिये प्रयत्नशील ब्राह्मण को सब प्रकार की आसक्तियों और स्नेह के बन्धनों से छूटकर सदा वृक्ष के नीचे, सूने घर या नदी के किनारे रहना चाहिये और नदी तट की रेत पर सोना चाहिये। उसे अन्तःकरण में परमात्मा का ध्यान करना चाहिये।

स्थाणुभूतो निराहारो मोक्षदृष्टेन कर्मणा।
परिव्रजेति यो युक्तस्तस्य धर्मः सनातनः।। अनु 141/86

जो पुरुष दृढ़निश्चय करके संन्यास लेता है और मोक्ष के लिये सहायक श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि कार्यों में समय बिताता है। विषय भोगों से दूर (निराहार) रहता है और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में सूखे काठ की भाँति स्थिर और अविचल रहता है उसे सनातन मोक्षरूप धर्म प्राप्त होता है।

न चैकत्र समासक्तो न चैकग्रामगोचरः।
मुक्तो ह्यटति निर्मुक्तो न चैकपुलिनेशयः।। अनु 141/87

मुमुक्षु को किसी एक ही जगह पर लगाव नहीं होना चाहिये। उसे एक ही गाँव में नहीं रहना चाहिये और न ही नदी के एक ही किनारे पर सोना चाहिये। उसे तो सभी तरह के लगावों और आसक्तियों से छूटकर स्वच्छन्द होकर विचरना चाहिये।

द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्। आश्व 51/29

ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम्।। आश्व 13/3

मम (यह मेरा है) ये दो अक्षर ही मृत्युरूप हैं और 'न मम' (मेरा नहीं है) ये तीन अक्षर ही सनातन ब्रह्म को प्राप्त करने के कारण हैं। अर्थात् ममता मृत्यु है और ममता का त्याग सनातन अमृतत्व है।

ब्रह्ममृत्यू ततो राजन्नात्मन्येव व्यवस्थितौ।

अदृश्यमानौ भूतानि योधयेतामसंशयम्।। आश्व 13/4

राजा युधिष्ठिर! अमृत (ब्रह्म) और मृत्यु ये दोनों हमारे शरीर में ही हैं। ये दोनों अदृश्य रहकर प्राणियों को आपस में लड़ाते रहते हैं। अर्थात् किसी को अपना मानना और किसी को अपना न मानना यही आपसी संघर्ष कराता है।

लब्ध्वा हि पृथ्वीं कृत्स्नां सह स्थावरजङ्गमाम्।

ममत्वं यस्य नैव स्यात् किं तया स करिष्यति।। आश्व 13/6

चल और अचल प्राणियों सहित सारी पृथ्वी पाकर भी जिस पुरुष की इस सारे साम्राज्य के प्रति ममता (यह मेरा है) का भाव नहीं होता तो यह सारी सम्पत्ति उसका कोई बुरा नहीं कर सकती।

अथवा वसतः पार्थ वने वन्येन जीवतः।

ममता यस्य द्रव्येषु मृत्योरास्ये स वर्तते।। आश्व 13/7

हे पार्थ! जो मनुष्य जंगल में रहकर जंगल के कन्दमूल और फल खाकर पेट भरता है यदि उसकी भी संसार के पदार्थों में आसक्ति (ममता) है तो वह मौत के मुँह में ही बैठा हुआ है।

कामात्मानं न प्रशंसन्ति लोके नेहाकामा काचिदस्ति प्रवृत्तिः।

सर्वे कामा मनसोऽङ्गभूता यान् पण्डितः संहरते विचिन्त्य।।

आश्व 13/9

जिस व्यक्ति का मन कामनाओं में फंसा रहता है लोग उसकी प्रशंसा नहीं करते। हम कोई भी काम किसी इच्छा के बिना नहीं करते। सारी कामनाएँ मन से ही पैदा होती हैं। इसलिये ज्ञानी पुरुष इच्छाओं पर नियन्त्रण रखते हैं।

भूयो भूयो जन्मनोऽभ्यासयोगाद् योगी योगं सारमार्गं विचिन्त्य।
दानं च वेदाध्ययनं तपश्च काम्यानि कर्माणि च वैदिकानि।।

आश्व 13/10

व्रतं यज्ञान् नियमान् ध्यानयोगान् कामेन यो नारभते विदित्वा।
यद् यच्चायं कामयते स धर्मो न यो धर्मो नियमस्तस्य मूलम्।।

आश्व 13/11

योगी पुरुष अनेक जन्मों के योगाभ्यास से यह जान लेता है कि योग से ही मोक्ष मिल सकता है इसलिये वह अपनी सारी कामनाओं को नष्ट कर डालता है। यह बात जानने वाला मनुष्य दान, वेदों का स्वाध्याय, तपस्या और तरह-तरह की कामनाएँ पूरी करने वाले यज्ञ आदि वैदिक काम्य कर्म तथा व्रत, यज्ञ, नियम-पालन और ध्यान योग आदि का अनुष्ठान किसी कामना को पूरा करने के लिये नहीं करता। ऐसा ज्ञानी पुरुष यही जानता है कि जिस कर्म को वह किसी तरह की इच्छा पूरी करने के लिये करता है वह धर्म नहीं है। मन की इच्छाओं को वश में रखना ही वास्तव में धर्म है और ऐसा धर्म ही मोक्ष का कारण है।

मौन

दहत्यग्निरवाक्यस्तु तूष्णीं भवति दिवाकरः।
तूष्णीं धारयते लोकान् वसुधा सचराचरान्।। विराट 50/3

अग्नि शोर किये बिना ही जलाती है। सूर्य मौन रहकर ही प्रकाश करता है। पृथ्वी भी चुपचाप स्थावर जंगम सभी प्राणियों का पालन करती है।

मौने ज्ञानफलावाप्तिर्दानेन च यशो महत्।
वाग्मित्वं सत्यवाक्येन परत्र च महीयते।। शान्ति 36/10

मौन रहने से ज्ञान प्राप्त होता है। दान देने से यश मिलता है। सत्य बोलने से वाणी की चतुराई और स्वर्ग मिलता है।

यज्ञ

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।। भीष्म 27/9; गीता 3/9

हे कुन्तीपुत्र! यज्ञ के लिये किये जाने वाले कर्मों के अतिरिक्त दूसरे कर्म करने से मनुष्य कर्मों के बन्धन में बंधता है इसलिये तुम आसक्ति और कामना का त्याग करके कर्म करो।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।। भीष्म 27/10; गीता 3/10

सृष्टि के आरम्भ में प्रजापति ने यज्ञ के साथ प्रजाओं को उत्पन्न करके कहा कि तुम इस यज्ञ से फलो-फूलो और यज्ञ तुम्हारी सभी इच्छाओं को पूरा करे।

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।। भीष्म 27/11; गीता 3/11

तुम यज्ञ के द्वारा देवों अर्थात् प्रकृति और विश्व की शक्तियों को बढ़ाओ और ये शक्तियाँ तुम्हारा हित सम्पादन करें। एक दूसरे को बढ़ाते हुए तुम परम कल्याण को प्राप्त करो।

इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायेभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।। भीष्म 27/12; गीता 3/12

तुम्हारे विश्वयज्ञ से प्रसन्न होकर प्रकृति की शक्तियाँ तुम्हें मनवांछित भोग्यपदार्थ देंगी। इन पदार्थों को देवों को अर्पित किये बिना जो भोगता है वह चोर होता है। अर्थात् जो व्यक्ति अपने लिये खाता-कमाता है वह चोर है। समाज और विश्व के एक अंग के रूप में जीवित रहना यज्ञ है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापाः ये पचन्त्यात्मकारणात्।।

भीष्म 27/12; गीता 3/13

यज्ञ से बचे हुए पदार्थों का उपभोग करने वाले श्रेष्ठ पुरुषों को किसी प्रकार का पाप नहीं लगता। किन्तु जो लोग केवल अपने लिये खाते-कमाते हैं वे तो पाप की कमाई ही खाते हैं।

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।

भीष्म 27/14; सभी 3/14; गीता 3/14

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।। भीष्म 27/15

अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं। वर्षा से अन्न पैदा होता है। यज्ञ से वर्षा होती है। इस प्रकार यज्ञ, निष्काम कर्म से उत्पन्न होता है अर्थात् यज्ञ और निष्काम कर्म एक दूसरे के पर्याय है या परस्पर एक दूसरे पर निर्भर हैं। कर्म, वेद से उत्पन्न हुए हैं और वेद, अविनाशी परमात्मा से। इसलिये सर्वव्यापी परम अविनाशी परमात्मा यज्ञ में सदा प्रतिष्ठत हैं।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।। भीष्म 27/16; गीता 3/16

जो व्यक्ति इस यज्ञमय सृष्टिचक्र में अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं करता वह इन्द्रियों के भोगों में फंसा हुआ व्यर्थ ही पापपूर्ण जीवन बिताता है।

सात्त्विक यज्ञ अफलकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः।।

भीष्म 41/11; गीता 17/11

सात्त्विक यज्ञ वह है जो किसी इच्छा के बिना विधिपूर्वक किया जाता है। यज्ञ करना ही चाहिये ऐसा सोचकर ही सात्त्विक यज्ञ किया जाता है।

राजसिक यज्ञ अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्।।

भीष्म 41/12; गीता 17/12

हे श्रेष्ठ भरतवंशी! राजसिक यज्ञ वह है जो कोई फल पाने के लिये और पाखण्ड के लिये या अहंकार से किया जाता है।

तामसिक यज्ञ विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते।।

भीष्म 41/13; गीता 17/13

शास्त्रीय विधि से रहित, अन्नदान के बिना, मन्त्रोच्चरण न करके, दक्षिणा न देकर और श्रद्धा के बिना किया गया यज्ञ तामसिक होता है।

न हि यज्ञसमं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।। शान्ति 60/45

तीनों लोकों में यज्ञ के समान और कुछ भी नहीं है।

नैव कन्या न युवतिर्नामन्त्रज्ञो न बालिशः।। शान्ति 165/21
परिवेष्टाग्निहोत्रस्य भवेन्नासंस्कृतस्था।

कन्या, युवती, मन्त्र न जानने वाले, मूर्ख और संस्कारहीन पुरुष को यज्ञ करने का अधिकार नहीं है।

हुतेन शाम्यते पापं स्वाध्यायैः शान्तिरुत्तमा।
दानेन भोगानित्याहुस्तपसा स्वर्गमाप्नुयात्।। शान्ति 191/2

यज्ञ से पाप नष्ट होते हैं। स्वाध्याय से मन को बहुत शान्ति मिलती है। दान से भोग-ऐश्वर्य मिलता है और तपस्या से स्वर्ग।

आज्येन पयसा दध्ना शकृताऽऽभिक्षया त्वचा।
बालैः शृङ्गेण पादेन सम्भवत्येव गौर्मखम्।। शान्ति 268/28

घी, दूध, दही, गोबर, छेना और छाछ, चमड़ा, बाल, सींग और खुर इनके द्वारा गाय यज्ञ का सम्पादन करती है।

ब्राह्मणप्रभवो यज्ञो ब्राह्मणार्पण एव च।
अनुयज्ञं जगत् सर्वं यज्ञश्चानुजगत् सदा।। शान्ति 268/34

वेदों के ब्राह्मण भाग से यज्ञ प्रारम्भ हुए हैं। यज्ञ ब्राह्मणों को ही अर्पित किये जाते हैं। यज्ञ के पीछे सारा जगत् है और इस जगत् के पीछे यज्ञ सदा रहते हैं।

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञानां परश्चेति विनिश्चयः।। शान्ति 268/40

यह निश्चित है कि जो लोग यज्ञ नहीं करते उनके लिये यह संसार सुखदायक नहीं होता और उन्हें परलोक में भी सुख नहीं मिलता।

बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः।
अजसंज्ञानि बीजानि च्छागं नो हन्तुमर्हथ।। शा० 337/4

यज्ञों में बीजों से यज्ञ करना चाहिये, ऐसी वैदिकी श्रुति है। बीजों का नाम ही अज है इसलिये बकरे का वध करना उचित नहीं है।

नैष धर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः।
इदं कृतयुगं श्रेष्ठं कथं वध्येत वै पशुः।। शान्ति 337/5

देवताओ! जहाँ पशु को मारा जाता है वह श्रेष्ठ पुरुषों का धर्म नहीं होता। यह श्रेष्ठ सतयुग है इसमें पशुवध कैसे किया जा सकता है।

इदं तु सकलं द्रव्यं दिवि वा भुवि वा प्रिये।
यज्ञार्थं विद्धि तत् सृष्टं लोकानां हितकाम्यया।। अनु 145 दा० पा०XI

प्रिये! स्वर्गलोक या पृथ्वी लोक में जितने भी पदार्थ हैं वे सब विधाता ने संसार की भलाई की इच्छा से यज्ञ के लिये बनाये हैं।

शुद्धैर्द्रव्योपकरणैर्यष्टव्यमिति निश्चयः।। अनु 145 दा० पा०XI

शुद्ध और पवित्र पदार्थों तथा साधनों से यज्ञ करना चाहिये।

देवाः संतोषिता यज्ञैर्लोकान् संवर्धयन्त्युत।। अनु 145 दा० पा०XI

यज्ञों से सन्तुष्ट हुए देव (अग्नि, वायु आदि प्राकृतिक शक्तियाँ) सभी लोकों का उपकार करते हैं।

नास्ति यज्ञसमं दानं नास्ति यज्ञसमो निधिः।
सर्वधर्मसमुद्देशो देवि यज्ञे समाहितः।। अनु 145 दा० पा०XI

हे देवि! यज्ञ के बराबर कोई दान नहीं है। यज्ञ के समान कोई खजाना नहीं है। सभी धर्मों के आदर्श यज्ञ में प्रतिष्ठित हैं।

असुराश्च सुराश्चैव पुण्यहेतोर्मखक्रियाम्।
प्रयतन्ते महात्मानस्तस्माद् यज्ञः परायणम्।। आश्व 3/6

देवता-दानव और महात्मा पुण्य कमाने के लिये यज्ञ करते हैं अतः यज्ञ ही सबका सहारा है।

यज्ञैरेव महात्मनो बभूवुरधिकाः सुराः।
ततो देवाः क्रियावन्तो दानवानभ्यधर्षयन्।। आश्व 3/7

यज्ञों से ही देवताओं का महत्त्व बढ़ा है। यज्ञों की क्रिया में लगे देवताओं ने दानवों को परास्त किया है।

अद्रोहः सर्वभूतेषु सन्तोषः शीलमार्जवम्।
तपो दमश्च सत्यं च प्रदानं चेति सम्मितम्।। आश्व 90/120

किसी भी प्राणी से वैर न करना, सन्तोष करना, चरित्रवान बनना, सरल व्यवहार करना, तपस्या, मन और इन्द्रियों का संयम, सत्य व्यवहार और न्यायपूर्वक प्राप्त वस्तु का दान ये सब गुण बड़े बड़े यज्ञों के बराबर हैं।

यज्ञे सक्ता नृपतयस्तपःसक्ता महर्षयः।
शान्तिव्यवस्थिता विप्राः शमे दम इति प्रभो।। आश्व 91/1

प्रभु! राजा यज्ञ करते हैं। महर्षि तपस्या में लगे रहते हैं। ब्राह्मण मन को शान्त रखने का प्रयत्न करते हैं। मन शान्त हो जाने पर इन्द्रियाँ स्वयं वश में हो जाती हैं।

न हि यज्ञे पशुगणा विधिदृष्टा पुरंदर।। आश्व 91/13

हे इन्द्र! यज्ञ में पुशओं की बलि का शास्त्रों में विधान नहीं है।

धर्मोपघातकस्त्वेष समारम्भस्तव प्रभो।
नायं धर्मकृतो यज्ञो न हिंसा धर्म उच्यते।। आश्व 91/14

प्रभु! आपने जो यह यज्ञ आरम्भ किया है उससे धर्म का नाश होगा, क्योंकि यह यज्ञ धर्म के अनुसार नहीं है। हिंसा को कभी भी धर्म नहीं कहा जा सकता।

यदधीतेऽन्वहं शक्त्या तत् स्वाध्यायं प्रचक्षते।। आश्व 92 दा०पा०अ०IX

अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रतिदिन अध्ययन करने को 'स्वाध्याय कहा जाता है।

तर्पणं ऋभुयज्ञः स्यात् स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञकः।
भूतयज्ञो बलिर्यज्ञो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।
पितॄनुद्दिश्य यत् कर्म पितृ यज्ञः प्रकीर्तितः।। आश्व 92 दा० पा० अ० IX

तर्पण को 'ऋभुयज्ञ' कहाँ जाता है। स्वाध्याय 'ब्रह्मयज्ञ' कहलाता है। सभी प्राणियों को अन्न खिलाना 'भूतयज्ञ' होता है। अतिथि का सत्कार 'नृयज्ञ' माना गया है। पितरों के लिये श्राद्ध आदि 'पितृयज्ञ' होता है।

अग्निष्टोमसहस्त्रस्य वाजपेयं च तत्समम्।
वाजपेयसहस्त्रस्य अश्वमेधं च तत्समम्।
अश्वमेधसहस्त्रस्य राजसूयं च तत्समम्।।

आश्व 92 दा० पा० अ X

एक हजार अग्निष्टोम यज्ञों के समान एक वाजपेय यज्ञ होता है। एक हजार वाजपेय यज्ञों के बराबर एक अश्वमेघ यज्ञ होता है। एक हजार अश्वमेघों के समान एक राजसूय यज्ञ होता है।

यस्माद् वै त्रायते दुःखाद् यजमानं हुतोऽनलः।
तस्मात् तु विधिवत् प्रोक्तमग्निहोत्रमिति श्रुतौ।।

आश्व 92 दा० पा० अ XVI

विधिपूर्वक यज्ञ करने से अग्नि यजमान की दुःखों से रक्षा करती है (त्राण)। इसलिये यज्ञ को वेदशास्त्रों में 'अग्निहोत्र' कहा गया है।

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम्।
रतिपुत्रफला दारा दत्तभुक्तफलं धनम्।। आश्व 92 दा० पा० अ XVI

वेद पढ़ने का लाभ अग्निहोत्र है। शास्त्रज्ञान का लाभ चरित्र और सदाचार है। स्त्री का लाभ रतिसुख और पुत्र प्राप्ति है। धन की सफलता दान में और उपभोग में है।

यश

नष्टकीर्तेमनुष्यस्य जीवितं ह्यफलं स्मृतम्।। आदि 202/10

जिस व्यक्ति का यश नष्ट हो जाता है उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है।

नष्टकीर्तिस्तु नश्यति।। आदि 202/11

जिस मनुष्य की कीर्ति नष्ट हो जाती है उसका जीवन ही नष्ट हो जाता है।

युक्तं हि यशसा युक्तं मरणं लोकसम्मतम्।। वन 300/28

यश के साथ यदि मृत्यु हो जाय तो यशस्वी पुरुष की मृत्यु सराहनीय होती है।

कीर्तिमानश्नुते स्वर्गं हीनकीर्तिस्तु नश्यति।। वन 300/31

यशस्वी पुरुष को स्वर्ग का सुख मिलता है। नष्ट कीर्ति मनुष्य स्वयं नष्ट हो जाता है।

कीर्तिर्हि पुरुषं लोके संजीवयति मातृवत्।
अकीर्तिर्जीवितं हन्ति जीवतोऽपि शरीरिणः।। वन 300/32

इस संसार में यश मनुष्य को माता की तरह नया जीवन प्रदान करता है। किन्तु अपयश, जीवित मनुष्य के जीवन को भी नष्ट कर देता है।

कीर्तिरायु नरस्य ह।। वन 300/33

यश ही मनुष्य का जीवन है।

पुरुषस्य परे लोके कीर्तिरेव परायणम्।
इह लोके विशुद्धा च कीर्तिरायुर्विवर्द्धनी।। वन 300/34

परलोक में यश ही मनुष्य का सहारा होता है। इस संसार में भी निष्कलंक यश मनुष्य की आयु को बढ़ाता है।

कीर्तिश्च जीवतः साध्वी पुरुषस्येति विद्धि तत्।। वन 301/13

हे साध्वी! जीवित पुरुष को ही यश का लाभ मिलता है।

धर्ममूला सतां कीर्तिर्मनुष्याणां जनाधिप।। शल्य 32/16

राजन्! सज्जनों के यश का मूल कारण धर्म का पालन करना ही है।

युग

काष्ठा निमेषा दश पञ्चैव त्रिंशस्तु काष्ठा गणयेत् कलां ताम्।
त्रिंशत्कलश्चापि भवेन्मुहूर्तो भागः कलाया दशमश्च यः स्यात्।।

शा० 231/12

पन्द्रह निमेष (पल झपकना) की एक काष्ठा और तीस काष्ठा की एक कला गिननी चाहिये। तीस कलाओं का एक मुहूर्त्त होता है किन्तु इसमें कला का दसवाँ भाग और होता है अर्थात् तीस कलाओं और तीन काष्ठाओं का एक मुहूर्त होता है।

त्रिंशन्मुहूर्त्तं तु भवेदहश्च रात्रिश्च संख्या मुनिभिः प्रणीता।
मासः स्मृतो रात्र्यहनी च त्रिंशत् संवत्सरो द्वादश मास उक्तः।।

शा० 231/13

तीस मुहूर्त का एक दिन-रात होता है। तीस रात-दिन का एक मास होता है और बारह मासों का एक वर्ष मुनियों ने बताया है।

संवत्सरं द्वे त्वयने वदन्ति संख्याविदो दक्षिणमुत्तरं च।। शा० 231/14

गणना के विद्वान् दो अयनों को मिलाकर एक संवत्सर कहते हैं। वर्ष में दक्षिणायन और उत्तरायण ये दो अयन होते हैं।

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुष लौकिके।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः।। शान्ति 231/15

सूर्य मनुष्य लोक के दिन-रात का विभाग करते हैं। रात प्राणियों के सोने के लिये है और दिन काम करने के लिये।

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः।
शुक्लोऽहः कर्मचेष्टायां कृष्णः स्वप्नाय शर्वरी।। शा० 231/16

मनुष्यों के एक मास में पितरों का एक रात-दिन होता है। शुक्ल पक्ष उनके काम करने के लिये दिन है और कृष्ण पक्ष सोने के लिये रात।

दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद् दक्षिणायनम्।। शान्ति 231/17

मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं के एक दिन और एक रात के बराबर होता है। उत्तरायण देवताओं का दिन होता है और दक्षिणायन रात।

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः।। शा० 231/20

देवताओं के चार हजार वर्षों (दिव्य वर्षों) का एक सत्ययुग होता है। सत्य युग में चार सौ दिव्य वर्षों की संध्या होती है और चार सौ दिव्य वर्षों का संध्यांश भी होता है। इस प्रकार सत्ययुग में चार हजार आठ सौ दिव्य वर्ष होते हैं।

इतरेषु ससंध्येषु संध्यांशेषु ततस्त्रिषु।
एक पादेन ह्रीयन्ते सहस्राणि शतानि च।। शान्ति 231/21

शेष तीन युगों में संध्या और संध्यांशों सहित दिव्य वर्षों की संख्या क्रमशः एक-एक चौथाई घटती जाती है। अर्थात् सत्य युग के 4800 दिव्य वर्षों में से एक हजार दो सौ दिव्य वर्ष कम करके अर्थात् 3600 दिव्य वर्षों का त्रेता युग, 2400 दिव्य वर्षों का द्वापर युग और 1200 दिव्य वर्षों का कलियुग होता है।

चतुष्पात् सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे।
नाधर्मेणागमः कश्चित् परस्तस्य प्रवर्तते।। शान्ति 231/23

सत्ययुग में धर्म और सत्य के चारों चरण रहते हैं अर्थात् सत्ययुग में धर्म और सत्य का पूरी तरह पालन किया जाता है। उस समय कोई भी शास्त्र अधर्म से युक्त नहीं होता। शास्त्र का पूरी तरह पालन होता है।

इतरेष्वागमाद् धर्मः पादशस्त्ववरोप्यते।
चौर्यकानृतमायाभिरधर्मश्चोपचीयते।। शान्ति 231/24

अन्य युगों में शास्त्रों का धर्म क्रमशः एक-एक चरण घटता जाता है। चोरी, झूठ और छल कपट के द्वारा अधर्म धीरे धीरे बढ़ने लगता है।

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः।
कृते त्रेतायुगे त्वेषां पादशो ह्रसते वयः।। शान्ति 231/25

सत्ययुग में मनुष्य नीरोग होते हैं। उनकी सभी कामनाएँ पूरी होती हैं। उनकी आयु चार सौ वर्ष की होती है। त्रेतायुग में मनुष्यों की आयु एक चौथाई घटकर तीन सौ वर्ष, द्वापर में दो सौ वर्ष और कलियुग में एक सौ वर्ष रह जाती है।

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुत्तमम्।
द्वापरे यज्ञमेबाहुर्दानमेकं कलौ युगे।। शान्ति 231/28

सत्ययुग में तपस्या को, त्रेता में ज्ञान को, द्वापर में यज्ञ को और कलियुग में दान को सबसे अच्छा माना जाता है।

एतां द्वादशसाहस्त्रीं युगाख्यां कवयो विदुः।
सहस्त्रपरिवर्तं तत् ब्राह्मं दिवसमुच्यते।। शान्ति 231/29

इस प्रकार देवताओं के 12000 वर्षों की एक चतुर्युगी होती है। इतने ही हजार चतुर्युगों को ब्रह्मा का एक दिन बताया जाता है। इतने ही युगों की ब्रह्मा की एक रात होती है।

त्रेतायां द्वापरे चैव कलिजाश्च ससंशयाः।
तपस्विनः प्रशान्ताश्च सत्त्वस्थाश्च कृते युगे।। शान्ति 238/7

त्रेता, द्वापर तथा कलियुगों में मनुष्य परमार्थ तत्त्व के बारे में सन्देहशील होते हैं किन्तु सत्ययुग के लोग तपस्वी और सत्त्वगुणी होने के कारण प्रशान्त (संशय-रहित) होते हैं।

अपृथग्दर्शनाः सर्वे ऋक्सामसु यजःषु च।
कामद्वेषौ पृथक् कृत्वा तपः कृत उपासते।। शान्ति 238/8

सत्ययुग में सभी ब्राह्मण ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद में भेददृष्टि न रखते हुए राग-द्वेष को मन से हटाकर तपस्या करते हैं।

त्रेतादौ केवला वेदा यज्ञा वर्णाश्रमास्तथा।
संरोधादायुषस्त्वेते व्यस्यन्ते द्वापरे युगे।। शान्ति 238/14

सत्ययुग और त्रेतायुग में वेदों, यज्ञों और वर्णाश्रम धर्मों का विशुद्ध रूप से पालन किया जाता है। किन्तु द्वापर युग में मनुष्यों की आयु कम हो जाने के कारण ये भी क्षीण होने लगते हैं।

द्वापरे विप्लवं यान्ति वेदाः कलियुगे तथा।
दृश्यन्ते नापि दृश्यन्ते कलेरन्ते पुनः किल।। शान्ति 238/15

द्वापर और कलियुग में वेद प्रायः लुप्त हो जाते हैं। कलियुग के अन्त में तो वेद कभी दिखाई देते हैं और कभी दिखाई नहीं देते।

उत्सीदन्ति स्वधर्माश्च तत्राधर्मेण पीडिताः।
गवां भूमेश्च ये चापामोषधीनां च ये रसाः।। शान्ति 238/16

उस समय अधर्म से पीड़ित होने के कारण सभी वर्णों के अपने अपने धर्म नष्ट हो जाते हैं। गौ, जल, भूमि और औषधियों के रस भी प्रायः नष्ट हो जाते हैं।

अधर्मान्तर्हिता वेदा वेदधर्मास्तथाऽऽश्रमाः।
विक्रियन्ते स्वधर्मस्थाः स्थावराणि चराणि च।। शा० 238/17

वेद, वैदिक धर्म तथा स्वधर्मपरायण आश्रम ये सब उस समय अधर्म से ढककर अदृश्य हो जाते हैं। स्थावर और जंगम प्राणी भी अपने धर्म से विकृत हो जाते हैं अर्थात् सभी प्राणियों में विकार आ जाते हैं।

यथा सर्वाणि भूतानि वृष्टिर्भौमानि वर्षति।
सृजते सर्वतोऽङ्गानि तथा वेदा युगे युगे।। शान्ति 238/18

जैसे वर्षा पृथ्वी के सारे प्राणियों को उत्पन्न करती है वैसे ही वेद सभी युगों में सम्पूर्ण योगांगों का पोषण करते हैं।

पादोनेनापि धर्मेण गच्छेत् त्रेतायुगे तथा।
द्वापरे तु द्विपादेन पादेन त्वधरे युगे।। शान्ति 267/33

त्रेतायुग में धर्म का प्रचार एक चौथाई कम हो जाता है। द्वापर में धर्म के दो पाद ही रह जाते हैं और कलियुग में धर्म का चौथा भाग रह जाता है।

युद्ध

सम्प्रवृत्ते तु संग्रामे भावाभावौ जयाजयौ।
अवश्यमेकं स्पृशतो दृष्टमेतदसंशयम्।। विराट 52/13

युद्ध छिड़ने पर एक पक्ष की हार होती है या लाभ होता है। दूसरे पक्ष की पराजय या हानि होती है। यह सदा होता है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

युद्धेऽनयो भविता नेह सोऽर्थः।। उद्योग 2/14

युद्ध में अनीति ही अपनाई जाती है और अनीति से कोई लाभ नहीं होता।

सर्वक्षयो दृश्यते यत्र कृत्स्नः पापोदयो निरयोऽभावसंस्थः।
कस्तत् कुर्याज्जातु कर्म प्रजानन् पराजयो यत्र समो जयश्च।।

उद्योग 25/7

जिसमें सबका विनाश होता है, जिससे पापाचरण फैलता है, जिससे नरक मिलता है और अन्त में अभाव ही हाथ लगता है और जिसमें हार जीत दोनों ही समान होती हैं ऐसे युद्ध को कौन करना चाहेगा?

युद्धे विनाशः कृत्स्नस्य कुलस्य भविता ध्रुवम्।। उद्योग 53/14

युद्ध में सारा कुंल अवश्य नष्ट हो जायेगा।

जयो नैवोभयोर्दृष्टो नोभयोश्च पराजयः।
तथैवापचयो दृष्टो व्यपयाने क्षयव्ययौ।। उद्योग 72/52

युद्ध में दोनों पक्षों की न तो जीत होती है और न ही हार। दोनों ही पक्षों की धन सम्पत्ति अवश्य नष्ट हो जाती है। पीठ दिखाकर भागने वाले की भी जन और धन दोनों ही की हानि होती है।

नैकान्तसिद्धिर्वक्तव्या शत्रुभिः सह संयुगे।। उद्योग 77/13

युद्ध में शत्रुओं से भिड़ने पर अवश्य विजय होगी यह निश्चित नहीं होता।

न युद्धे तात कल्याणं न धर्मार्थौ कुतः सुखम्।
न चापि विजयो नित्यं मा युद्धे चेत आधिथाः।। उद्योग 129/40

युद्ध से कोई लाभ नहीं होता। इससे न धर्म और अर्थ की सिद्धि होती है, न ही सुख मिलता है। युद्ध में विजय भी सदा नहीं होती अतः बेटे युद्ध करने की मत सोचो।

युद्धमेकायनं मत्वा पतोल्मुक इवारिषु।। उद्योग 134/29

युद्ध को एकमात्र मार्ग जानकर तू शत्रुओं पर ज्वाला की भाँति टूट पड़।

न वधः पूज्यते वेदे हितं नैव कथंचन।। भीष्म 3/54

वेद, हिंसा (युद्ध) को अच्छा नहीं कहते। इससे कोई भला नहीं होता।

जघन्य एष विजयो यो युद्धेन विशाम्यते।। भीष्म 3/81

राजन्! युद्ध की मारकाट से प्राप्त विजय सबसे बुरी होती है।

महादोषः संनिपातस्तस्याद्यः क्षय उच्यते।। भीष्म 3/82

युद्ध बहुत बुरा होता है। इसकी सबसे बड़ी बुराई है हर तरह का विनाश।

न बाहुल्येन सेनाया जयो भवति नित्यशः।
अध्रुवो हि जयो नाम दैवं चात्र परायणम्।
जयवन्तो हि संग्रामे कृतकृत्या भवन्ति हि।। भीष्म 3/85

अधिक सेना होने से ही युद्ध में सदा विजय नहीं होती। युद्ध में विजय प्रायः अनिश्चित ही होती है। विजय के लिये भाग्य का भी बहुत हाथ होता है। युद्ध में जीतने वाले कृतकार्य हो जाते हैं।

संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून्।। भीष्म 19/4

यदि शत्रु सेना कम हो तो अपनी सेना को संगठित कर के लड़ना चाहिये। यदि शत्रु की सेना अधिक हो तो अपनी सेना को फैलाकर मोर्चा लगाना चाहिये।

सूचीमुखमनीकं स्यादल्पानां बहुभिः सह।। भीष्म 19/5

थोड़े से सैनिकों से बड़ी सेना के साथ युद्ध करने के लिये 'सूची मुख' व्यूह अच्छा होता है।

कोऽन्यः स्थास्यति संग्रामे भीतो भीते व्यपाश्रये।। द्रोण 122/13

जब आश्रयदाता या नेता ही युद्ध से डर जायेगा तो उसके साथी भी डर जायेंगे।

पराजयो वा मृत्युर्वा श्रेयान् मृत्युर्न निर्जयः।। द्रोण 200/29

युद्ध में हार या मृत्यु इनमें से मृत्यु ही अच्छी है, हार नहीं।

यदाशूरं च भीरुं च मारयत्यन्तकः सदा।
को नु मूढो न युध्येत पुरुषः क्षत्रियो ध्रुवम्।। शल्य 19/62

जब मृत्यु कायर और वीर दोनों को ही मार डालती है तब ऐसा कौन मूर्ख है जो क्षत्रिय होकर युद्ध नहीं करेगा।

सुखः सांग्रामिको मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम्।। शल्य 19/63

क्षत्रिय धर्म के अनुसार युद्ध करने वाले वीर की युद्ध में हुई मृत्यु सुखद होती है।

पुनरावर्तमानानां भग्नानां जीवितैषिणाम्।
भेतव्यमरिशेषाणामेकायनगता हि ते।। शल्य 58/15

युद्ध में मरने से बचे हुए शत्रु यदि जान बचाने के लिये भाग गये हों और फिर युद्ध करने के लिये लौटने लगें तो उनसे डरना चाहिये क्योंकि वे कोई निश्चय करके (मरने या मारने का निश्चय करके) लौटते हैं।

हतोऽपि लभते स्वर्गं हत्वा च लभते यशः।
उभयं नो बहुगुणं नास्ति निष्फलता रणे।। स्त्री 2/14

युद्ध में मारा जाने वाला वीर स्वर्ग में जाता है और जो शत्रु को मारता है उसे यश मिलता है। इसलिये हमारा दोनों ही तरह लाभ है। युद्ध में विफलता नहीं है।

न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्न तपोभिर्न विद्यया।
स्वर्गं यान्ति तथा मर्त्या यथा शूरा रणे हताः।। स्त्री 2/15

युद्ध में मारे गये वीर जिस तरह आसानी से स्वर्ग प्राप्त कर लेते हैं उस तरह यज्ञ करने, दक्षिणा देने, तपस्या करने या विद्या पढ़ने से स्वर्ग नहीं मिलता।

एवं राजंस्तवाचक्षे स्वर्ग्यं पन्थानमुत्तमम्।
न युद्धादधिकं किंचित् क्षत्रियस्येह विद्यते।। स्त्री 2/18

राजन्! इसीलिये मैं आपसे कहता हूँ कि क्षत्रिय के लिये इस जगत् में धर्म से बढ़कर स्वर्ग पाने का कोई और अच्छा उपाय नहीं है।

संनिपातो न मन्तव्यः शक्ये सति कथंचन।
सान्त्वभेदप्रदानानां युद्धमुत्तरमुच्यते।। शान्ति 102/22

जब तक किसी तरह सन्धि हो सकती हो तब तक युद्ध का निश्चय नहीं करना चाहिये। यदि साम, दाम, और भेद की नीति से काम न चले तभी युद्ध का निश्चय करना चाहिये।

विषयो व्यथते राजन् सर्वः सस्थाणुजङ्गमः।
अस्य प्रताप तप्तानां मज्जा सीदति देहिनाम्।। शान्ति 102/25

राजन्! युद्ध होने पर चल-अचल प्राणियों सहित सारा राष्ट्र ही परेशान हो जाता है। युद्ध की आग से मनुष्यों की मज्जा भी सूख जाती है।

न जातु कलहेनेच्छेन्नियन्तुमपकारिणः।
बालैरासेवितं ह्येतद् यदमर्षो यदक्षमा।। शान्ति 103/7

शत्रु को या बुरा करने वालों को युद्ध या झगड़े से वश में नहीं करना चाहिये क्योंकि क्षमा न करना और सहन न करना मूर्खों या बच्चों के काम होते हैं।

न सन्निपातः कर्त्तव्यः सामान्ये विजये सति।। शान्ति 103/13

युद्ध में कोई भी जीत सकता है इसलिये युद्ध शुरू नहीं करना चाहिये।

अनिश्चयो हि युद्धेषु द्वयोर्विवदमानयोः।
एकः प्राप्नोति विजयमेकश्चैव पराजयम्।। शान्ति 227/24

दो व्यक्तियों में युद्ध या विवाद शुरू होने पर यह पता नहीं होता कि कौन जीतेगा। युद्ध में एक की हार होती है और दूसरे की जीत।

युधिष्ठिर

न मे वागनृतं प्राह नाधर्मे धीयते मतिः।। आदि 194/30, 195।13

मैं कभी झूठ नहीं बोलता। मेरी बुद्धि अधर्म का काम नहीं करती।

यस्मिन् धृतिरनुक्रोशः क्षमा सत्यं पराक्रमः।
नित्यानि पाण्डवे ज्येष्ठे स जीयेत रणे कथम्।। आदि 204/19

जिस ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर में धैर्य, दया, क्षमा, सत्य और पराक्रम आदि गुण हैं उसे युद्ध में कैसे हराया जा सकता है।

भीमार्जुनावुभौ नेत्रे मनो मन्ये जनार्दनम्।
मनश्चक्षुर्विहीनस्य कीदृशं जीवितं भवेत्।। सभा 16/2

भीम और अर्जुन ये मेरे दोनों नेत्र हैं और श्रीकृष्ण मेरे मन। अतः आँखें और मन खोकर मेरा जीवन न जाने कैसा हो जायेगा।

अव्युत्पन्नं समानार्थं तुल्यमित्रं युधिष्ठिरम्।
अद्विषन्तं कथं द्विष्यात् त्वादृशो भरतर्षभ।। सभा 54/2

युधिष्ठिर किसी के साथ छल-कपट नहीं करते। उनकी और तुम्हारी सम्पत्ति भी समान है, वे तुम्हारे मित्रों के भी मित्र हैं और तुम से युधिष्ठिर द्वेष भी नहीं करते फिर तुम्हें उनसे द्वेष क्यों करना चाहिये?

आहूतोऽहं न निवर्ते कदाचित् तदाहितं शाश्वतं वै व्रतं मे।। सभा 58/16

चुनौती मिलने पर मैं कभी पीछे नहीं हटूंगा यह मैंने निश्चय कर रखा है।

निकृत्या कामये नाहं सुखान्युत धनानि वा।। सभा 59/13

मैं छल-कपट से सुख या धन नहीं पाना चाहता।

आनृशंस्यमनुक्रोशो धृतिः शीलं दमः शमः।
पाण्डवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषोत्तमम्।। सभा 79/31 दा० पा०

पुरुषों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर में कोमलता, दया, धैर्य, सदाचार, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह ये छह गुण शोभायमान हैं।

न धर्माच्चलते बुद्धिर्धर्मराजस्य धीमतः।। सभा 80/10

बुद्धिमान धर्मराज युधिष्ठिर की बुद्धि धर्म से कभी विचलित नहीं होती।

सत्येन धर्मेण यथार्हवृत्त्या ह्रिया तथा सर्वभूतान्यतीत्य।
यशश्च तेजश्च तवापि दीप्तं विभावसोर्भास्करस्येव पार्थ।।

वन 25/17

युधिष्ठिर! तुम अपने, सत्य, धर्म, यथायोग्य व्यवहार तथा लज्जा आदि गुणों से सभी प्राणियों में श्रेष्ठ हो। तुम्हारा यश और तेज, अग्नि और सूर्य की तरह दैदीप्यमान है।

मम प्रतिज्ञां च निबोध सत्यां वृणे धर्मममृताज्जीविताच्च।। वन 34/22

मेरी प्रतिज्ञा सत्य है। मैं धर्म को अपने जीवन और अमृत से भी बढ़कर मानता हूँ।

यन्न मोहान्न कार्पण्यान्न लोभान्न भयादपि।
अनृतं किंचिदुक्तं ते न कामान्नार्थकारणात्।। वन 33/77

आपने तो कभी मोह से, दीनता से, लोभ से, भय से, किसी प्रकार की इच्छा से या धन पाने के लिये जरा-सा भी झूठ नहीं बोला।

अनृतं नोत्सहे वक्तुं न ह्येतन्मम विद्यते।। वन 52/38

मैं झूठ नहीं बोल सकता। झूठ बोलने की मेरी आदत भी नहीं है।

वासवः स्मरते यस्य को नामाभ्यधिकस्ततः।। वन 92/14-15

जिसे इन्द्र याद करते हों उससे बढ़कर सौभाग्यशाली कौन है?

स्वाभ्यां भुजाभ्यामर्जितां तु भूमिं नेच्छेत् कुरूणामृषभः कथंचित्।।

वन 120/23

युधिष्ठिर अपने बाहुबल से विजित भूमि के अतिरिक्त कौरवों की कोई भूमि नहीं लेना चाहते।

न ह्येष कामान्न भयान्न लोभाद् युधिष्ठिरो जातु जह्यात् स्वधर्मम्।।

वन 120/24

युधिष्ठिर; किसी कामना, भय या लोभ के कारण कभी भी धर्म को नहीं छोड़ सकते।

सत्यं तु मे रक्ष्यतमं न राज्यम्।। वन 120/27

मैं तो सत्य की ही रक्षा करना चाहता हूँ। मैं राज्य नहीं चाहता।

सत्यार्जवाभ्यां चरता स्वधर्मं जितस्त्वयायं च परश्च लोकः।। वन 183/16

आपने सत्य और सरलता के द्वारा अपने धर्म का पालन करते हुए इहलोक और परलोक दोनों को ही जीत लिया है।

कामान्न किंचित् कुरुषे नरेन्द्र न चार्थलोभात् प्रजहासि धर्मम्।।
वन 183/18

हे राजेन्द्र! आप किसी कामना से प्रेरित होकर कोई काम नहीं करते तथा पैसे के लोभ से धर्माचरण नहीं छोड़ते।

दानं च सत्यं च तपश्च राजन् श्रद्धा च बुद्धिश्च क्षमा धृतिश्च।
अवाप्य राष्ट्राणि वसूनि भोगानेषा परा पार्थ सदा रतिस्ते।।
वन 183/19

युधिष्ठिर! राज्य, धन सम्पत्ति और भोगैश्वर्य पाकर भी आप की रुचि दान, सत्य, तपस्या, श्रद्धा, विवेक, क्षमा और धैर्य जैसे गुणों में ही सदा रहती है।

भवन्ति भेदा ज्ञातीनां कलहाश्च वृकोदर।
प्रसक्तानि च वैराणि कुलधर्मो न नश्यति।। वन 243/2

भीम! भाई बन्धुओं में मतभेद और लड़ाई झगड़े होते ही रहते हैं। उनमें वैर भी हो जाता है फिर भी कुल का धर्म अर्थात् अपनापन नष्ट नहीं होता।

परैः परिभवे प्राप्ते वयं पञ्चोत्तरं शतम्।
परस्पर विरोधे तु वयं पञ्च शतं तु ते।। वन 243/4

शत्रु का आक्रमण होने पर हम 105 हैं किन्तु आपसी कलह में वे सौ हैं और हम पाँच।

अधर्मयुक्तं न च कामयेत राज्यं सुराणामपि धर्मराजः।। उद्योग 1/14

धर्मराज युधिष्ठिर धर्म के विरुद्ध काम करके देवताओं का राज्य भी नहीं चाहते।

धर्मार्थयुक्तं महीपतित्वं ग्रामेऽपि कस्मिंश्चिदयं बुभूषेत्।। उद्योग 1/15

यदि धर्म और अर्थपूर्वक किसी गांव का भी राज्य मिलता हो तो ये उसे लेना चाहेंगे।

क्षमा दमश्च सत्यं च अहिंसा च युधिष्ठिर।
अद्भुतश्च पुनर्लोकस्त्वयि राजन् प्रतिष्ठितः।। उद्योग 8/35

राजा युधिष्ठिर! आप में क्षमा, इन्द्रिय दमन, सत्य, अहिंसा तथा संसार में विचित्र दीखने वाली बातें हैं।

मृदुर्वदान्यो ब्रह्मण्यो दाता धर्मपरायणः।
धर्मास्ते विदिता राजन् बहवो लोकसाक्षिकाः।। उद्योग 8/36

हे राजन! आप का व्यवहार कोमल और उदार है। आप ब्राह्मण भक्त, दानी और धर्म परायण हैं। आप ऐसे अनेक धर्म जानते हैं जिन्हें संसार ने आप में देखा है।

महातपा ब्रह्मचर्येण युक्तः संकल्पोऽयं मानसस्तस्य सिद्ध्येत्।। उद्योग 22/35

युधिष्ठिर; महान तप और ब्रह्मचर्य से संयुक्त हैं इसलिये उनके मन का संकल्प पूरा होकर ही रहेगा।

उद्भासते ह्यञ्जनबिन्दुवत् तच्छुभ्रे वस्त्रे यद् भवेत् किल्विषं वः।।

उद्योग 25/6

यदि आप में कोई दोष होता तो वह सफेद कपड़े पर पड़े काले धब्बे की तरह दीखता।

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखाः।
माद्रीपुत्रौ पुष्पफले समृद्धे मूलं त्वहं ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च।।

उद्योग 29/53

युधिष्ठिर साक्षात् धर्मरूपी विशाल वृक्ष हैं। इस पेड़ का तना अर्जुन है, भीम शाखा है तथा नकुल-सहदेव इस धर्मवृक्ष के फूल और फल हैं। मैं, वेद और ब्राह्मण इस धर्म वृक्ष की जड़ हैं।

परो धर्मात् पाण्डवस्यानृशंस्यं धर्मः परो वित्तचयान्मतोऽस्य।
सुखप्रिये धर्महीनेऽनपायेर्थेऽनुरुध्यते भारत तस्य बुद्धिः।।

उद्योग 32/12

भारत! युधिष्ठिर सब धर्मों की अपेक्षा दया को ही परम धर्म मानते हैं। वे धनसंग्रह की अपेक्षा धर्मपालन को ही श्रेष्ठ मानते हैं। उनकी बुद्धि धर्महीन और निष्प्रयोजन सुखों तथा प्रिय वस्तुओं में नहीं लगती।

युधिष्ठिरो धृतिमति सत्यसत्त्वान्।। द्रोण 2/16

युधिष्ठिर में धैर्य, बुद्धि, सत्य और सत्व गुण बहुत अधिक है।

कृपालुर्नित्यशो वीरस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि।। स्त्री 8/43

राजा युधिष्ठिर वीर हैं और वे पशु-पक्षियों पर भी दया करते हैं।

ह्रीमान् सत्यधृतिर्दान्तो भूतानामनुकम्पिता।
कामद्वेषौ वशे कृत्वा सतां वर्त्मानुवर्तते।। उद्योग 90/18

युधिष्ठिर; लज्जाशील, सत्य को धारण करने वाले, जितेन्द्रिय, प्राणियों पर दया करने वाले हैं। वे कामनाओं और द्वेष को वश में रखकर सत्पथ पर चलते हैं।

स सत्यसंधः स तथाप्रमत्तः शास्त्रे स्थितो बन्धुजनस्य साधुः।

प्रियः प्रजानां सुहृदानुकम्पी जितेन्द्रियः साधुजनस्य भर्ता।। उद्योग 149/33

युधिष्ठिर; सत्यप्रतिज्ञ, प्रमादरहित, शास्त्रों के अनुसार चलने वाले, बन्धुओं के हितचिन्तक, प्रजा के प्रिय, मित्रों पर कृपा करने वाले, जितेन्द्रिय और सज्जनों का पालन-पोषण करने वाले हैं।

क्षमा तितिक्षा दम आर्जवं च सत्यव्रतत्वं श्रुतमप्रमादः।

भूतानुकम्पा ह्यनुशासनं च युधिष्ठिरे राजगुणाः समस्ताः।।

उद्योग 149/34

युधिष्ठिर में क्षमा, सहनशीलता, इन्द्रियसंयम, सरलता, सत्यपरायणता, शास्त्र ज्ञान, प्रमादशून्यता, प्राणिदया और अनुशासन ये सब राजोचित्त गुण हैं।

ब्रह्मण्यः सत्यवाग् दान्तो गुरुदैवतपूजकः।
नित्यं धर्मरतश्चैव कृतास्त्रश्च विशेषतः।। द्रोण 158/36
धृतिमांश्च कृतज्ञश्च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।। द्रोण 158/37

धर्मपुत्र युधिष्ठिर ब्राह्मणों का आदर करने वाले, सत्य बोलने वाले, जितेन्द्रिय, गुरुओं और देवताओं का सम्मान करने वाले, सदा धर्म का पालन करने वाले, अस्त्र विद्या में कुशल, धैर्यशाली और उपकार मानने वाले हैं।

धर्मस्यांश प्रसूतोऽसि धर्मिष्ठोऽसि स्वभावतः।। शान्ति 198/2

युधिष्ठिर! तुम धर्म के अंश से उत्पन्न हुए हो और स्वभाव से ही धर्मात्मा हो।

धर्मपुत्रे हि धर्मज्ञे कृतज्ञे सत्यवादिनि।
सत्यं धर्मो मतिश्चाग्र्या स्थितिश्च सततं स्थिरा।। आश्व 15/24

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर धर्म को जानने वाले, कृतज्ञ और सत्य बोलने वाले हैं। उनमें सत्य, धर्म, अच्छी बुद्धि और धैर्य ये गुण सदा रहते हैं।

दीर्घदर्शी मृदुर्दान्तः सदा वैश्रवणो यथा।। आश्रमवास 10/42
अक्षुद्रसचिवश्चायं कुन्तीपुत्रो महामनाः।

ये कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर कुबेर की तरह सदा दीर्घदर्शी, कोमल-स्वभाव के और जितेन्द्रिय हैं। इनके मन्त्री भी पवित्र आचरण वाले हैं। युधिष्ठिर का हृदय उदार है।

आनृशंस्या हि मे मतिः।। महाप्रस्थान 3/8

मेरी बुद्धि निष्ठुर नहीं है।

योग

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। भीष्म 26/48, गीता 2/48

सफलता और असफलता के अवसरों पर एक जैसी बुद्धि रहनी चाहिये, इसी ज्ञान योग को समत्वयोग कहा जाता है।

योगः कर्मसु कौशलम्।। भीष्म 26/50, गीता 2/50

निष्काम कर्म योग की दृष्टि से कर्मों में कौशल या प्रवीणता को योग कहा जाता है।

एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।। भीष्म 29/5; गीता 5/5

जो व्यक्ति ज्ञान योग और निष्काम कर्म योग को एक ही देखता है, अर्थात् उनके बीच भेद नहीं करता वही वास्तविकता को जानता है।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।। भीष्म 29/19; गीता 5/19

जिन ज्ञानी पुरुषों के मन में समता का भाव बना रहता है वे इस संसार को इसी जीवन में जीत लेते हैं अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाते हैं।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। भीष्म 33/22; गीता 9/22

मेरा निरन्तर चिन्तन करने वालों की मैं सभी आवश्यकताएं पूरी करता हूँ और उन की हर प्रकार से रक्षा करता हूँ।

तं पूर्वापररात्रेषु युञ्जानः सततं बुधः।
लघ्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यामानमात्मनि।। शान्ति 187/29

जो बुद्धिमान् पुरुष कम भोजन करके रात के पहिले और पिछले पहर में सदा मन एकाग्र करता है वह अन्तःकरण शुद्ध होने पर अपने ही हृदय में उस आत्मा को साक्षात् देख लेता है।

तस्मात् समाहितं बुद्ध्या मनो भूतेषु धारयेत्।
नापध्यायेन्न स्पृहयेन्नाबद्धं चिन्तयेदसत्।। शा० 215/8

अथामोघप्रयत्नेन मनो ज्ञाने निवेशयेत्।
वाचामोघप्रयासेन मनोज्ञं तत् प्रवर्तते।। शान्ति 215/9

बुद्धि के द्वारा मन को एकाग्र करके सभी प्राणियों में स्थित परमात्मा में मन लगाये। किसी का बुरा न सोचे। न मिल सकने वाली वस्तु के बारे में सोचे। मिथ्या पदार्थों के बारे में भी न सोचे। फिर सफल प्रयत्न करके मन को ज्ञान की साधना में लगाये। अच्छी तरह सफल प्रयत्न करने से उत्तम ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

धृतिमानात्मवान् बुद्धिं निगृह्णीयादसंशयम्।
मनो बुद्ध्या निगृह्णीयाद् विषयान्मनसाऽऽत्मनः।। शा० 215/18

धीर स्वभाव वाले विवेकी पुरुष को निश्चय ही बुद्धि वश में करनी चाहिये। फिर बुद्धि से मन को वश में करना चाहिये। मन के द्वारा इन्द्रियों को विषयों से रोककर अपने अधीन करना चाहिये।

आहारनियमं चैव देशे काले च सात्त्विकम्।
तत् परीक्ष्यानुवर्तेत तत्प्रवृत्त्यनुपूर्वकम्।। शान्ति 215/23

देश और काल (ऋतु) के अनुसार सात्त्विक भोजन करने का नियम रखना चाहिये। आहार के गुण-दोषों की परीक्षा करके यदि आहार योगाभ्यास के अनुकूल हो तो उसे खाना चाहिये।

प्रवृत्तं नोपरुन्धेत शनैरग्निमिवेन्धयेत्।
ज्ञानान्वितं तथा ज्ञानमर्कवत् सम्प्रकाशते।। शान्ति 215/24

योगाभ्यास आरम्भ कर देने पर बीच में ही छोड़ नहीं देना चाहिये। जैसे आग धीरे-धीरे प्रज्वलित की जाती है वैसे ही योगाभ्यास को धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये। ज्ञानपूर्वक किया गया योगाभ्यास ज्ञान को सूर्य की भाँति प्रकाशित कर देता है।

हेतुमच्छक्यमाख्यातुमेतावज्ज्ञान चक्षुषा ।
प्रत्याहारेण वा शक्यमक्षरं ब्रह्म वेदितुम्।। शान्ति 216/20

ज्ञानसम्पन्न दृष्टि वाले महात्मा ही ब्रह्म के बारे में युक्ति संगत बात कह सकते हैं। अथवा मन और इन्द्रियों को भोग विषयों से हटाकर एकाग्रमन से चिन्तन करने से भी ब्रह्म का ज्ञान और साक्षात्कार हो सकता है।

यच्छेद् वाङ्मनसी बुद्ध्या य इच्छेज्ज्ञानमुत्तमम्।। शान्ति 236/4

जो साधक उत्तम ज्ञान प्राप्त करना चाहता हो उसे बुद्धि के द्वारा मन और वाणी पर नियन्त्रण रखना चाहिये।

ज्ञानेन यच्छेदात्मानं य इच्छेच्छान्तिमात्मनः।। शा०236/5

जो साधक शान्ति पाना चाहता हो उसे ज्ञान के द्वारा बुद्धि को परमात्मा के चिन्तन में लगाना चाहिये।

निर्मुच्यमानः सूक्ष्मत्वाद् रूपाणीमानि पश्यतः।
शैशिरस्तु यथा धूमः सूक्ष्मः संश्रयते नभः।। शान्ति 236/17

साधक जब स्थूलदेह के अभिमान से मुक्त होकर ध्यान लगाता है तब सूक्ष्म दृष्टि से युक्त होने के कारण उसे ऐसा दीखता है कि कुहरे जैसी कोई सूक्ष्म वस्तु सारे आकाश में फैलती जा रही है।

एकत्वं बुद्धिमनसोरिन्द्रियाणां च सर्वशः।। शान्ति 240/2
आत्मनो व्यापिनस्तात ज्ञानमेतदनुत्तमम् ।

तात! इन्द्रियों, मन और बुद्धि की वृत्तियों को सब ओर से रोककर सर्वव्यापी आत्मा के साथ उन वृत्तियों की एकता स्थापित करना ही सर्वोत्तम ज्ञान है।

तदेतदुपशान्तेन दान्तेनाध्ययनशीलिना।। शान्ति 240/3
आत्मारामेण बुद्धेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा।

आत्मा के साथ मन, बुद्धि और इन्द्रियों की एकता स्थापित करने के लिये मन को सब ओर से हटाकर जितेन्द्रिय हो कर शान्त मन से आत्मतत्त्व का चिन्तन करना चाहिये। एकमात्र परमात्मा में ही रमण करना चाहिये। ज्ञानवान पुरुषों से ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और शास्त्रों के अनुसार कर्त्तव्य पवित्र कर्म निष्काम भाव से करने चाहियें।

योगदोषान् समुच्छिद्य पञ्च यान् कवयो विदुः।। शा० 240/4
कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम्।
क्रोधं शमेन जयति कामं संकल्पवर्जनात्।। शान्ति 240/5
सत्त्वसंसेवनाद् धीरो निद्रामुच्छेतुमर्हति।

विद्वानों ने योग के पाँच दोष (विघ्न) बताये हैं। ये हैं– काम, क्रोध, लोभ, भय और नींद। क्रोध को मन की शान्ति से जीता जा सकता है। मन के संकल्प न करने से काम को वश में किया जाता है और सात्विक आहार-विहार से नींद को रोका जाता है।

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा।। शा० 240/6

चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनोवाचं च कर्मणा।
अप्रमादाद् भयं जह्याद् दम्भं प्राज्ञोपसेवनात्।। शान्ति 240/7

धैर्य के द्वारा शिश्न अर्थात् विषय भोग और और उदर अर्थात् भोजन की चिन्ता दूर करनी चाहिये। आँखों से हाथ-पैर की, मन से आँख-कान की, तथा कर्म से मन और वाणी की रक्षा करनी चाहिये। सावधान रहकर डर को भगा देना चाहिये और विद्वानों के सत्संग से घमण्ड को दूर कर देना चाहिये।

वर्जयेदुशतीं वाचं हिंसायुक्तां मनोनुदाम्।। शान्ति 240/9

साधक को मन को चोट पहुंचानी वाली हिंसा युक्त जली-कटी बातें नहीं बोलनी चाहियें।

ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीरार्जवं क्षमा।। शान्ति 240/10

शौचमाचारसंशुद्धिरिन्द्रियाणां च निग्रहः।
एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानं चापकर्षति।। शान्ति 240/11

ध्यान, स्वाध्याय, दान, सत्यभाषण, लज्जा, विनम्रता, क्षमा, पवित्रता, आचार-व्यवहार में शुद्धता और इन्द्रियों को वश में रखने से मनुष्य का तेज बढ़ता है और उसके पाप नष्ट होते हैं।

धूतपाप्मा तु तेजस्वी लघ्वाहरो जितेन्द्रियः।
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निनीषेद् ब्रह्मणः पदम्।। शान्ति 240/13

साधक को अपने पाप धो डालने चाहियें। उसे तेजस्वी, मिताहारी और जितेन्द्रिय बनकर काम और क्रोध को वश में करना चाहिये तथा ब्रह्मपद पाने की इच्छा करनी चाहिये।

मनसश्चेन्द्रियाणां च कृत्वैकाग्र्यं समाहितः।
पूर्वरात्रापरार्धं च धारयेन्मन आत्मनि।। शान्ति 240/14

मन और इन्द्रियों को एकाग्र करके ध्यान लगाकर रात के पहले और पिछले पहर में मन को आत्मा में लगाना चाहिये।

जन्तोः पञ्चेन्द्रियस्यास्य यदेकं छिद्रमिन्द्रियम्।
ततोऽस्य स्त्रवते प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम्।। शान्ति 240/15

मशक में एक छेद होने पर जैसे सारा पानी बह जाता है वैसे ही पाँच ज्ञानेन्द्रियों में से किसी एक ज्ञानेन्द्रिय पर भी नियन्त्रण न होने पर साधक विषयों में प्रवृत्त होकर विवेक खो देता है।

मनस्तु पूर्वमादद्यात् कुमीनमिव मत्स्यहा।
ततः श्रोत्रं ततश्चक्षुर्जिह्वां घ्राणं च योगवित्।। शान्ति 240/16

जैसे मछलीमार सबसे पहिले दुष्ट मछली को मारता है वैसे ही साधक को सबसे पहिले मन को वश में करना चाहिये। इसके बाद उसे कान, आंख, जीभ और नाक को वश में करना चाहिये।

तत एतानि संयम्य मनसि स्थापयेद् यतिः।
तथैवापोह्य संकल्पान्मनो ह्यात्मनि धारयेत्।। शान्ति 240/17

साधक, इन ज्ञानेन्द्रियों को वश में करके इन्हें मन में स्थापित करे। फिर संकल्पों को छोड़कर मन को बुद्धि में लीन करना चाहिये।

विधूम इव दीप्तार्चिरादित्य इव दीप्तिमान्।। शा० 240/19
वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे दृश्यतेऽऽत्मा तथाऽऽत्मनि।

योगी अपने अन्तःकरण में धुएं से रहित प्रज्वलित अग्नि, दीप्तिमान सूर्य और आकाश में चमकती हुई बिजली के समान प्रकाश स्वरूप आत्मा का दर्शन करता है।

प्रमोहो भ्रम आवर्तो घ्राणं श्रवणदर्शने।
अद्भुतानि रसस्पर्शे शीतोष्णे मारुताकृतिः।। शान्ति 240/23

योगसाधना के काल में साधक को मोह, भ्रम और चक्करों आदि विघ्नों का सामना करना पड़ता है। फिर दिव्य गन्ध, दिव्य शब्द, दिव्य दृश्य दीखने लगते हैं। विचित्र रसों और स्पर्शों का अनुभव होने लगता है। इच्छानुसार गर्मी और सर्दी अनुभव होती है तथा वायु रूप होकर आकाश में चलने-फिरने की योग्यता शरीर में आ जाती है।

प्रतिभामुपसर्गांश्चाप्युपसंगृह्य योगतः।
तांस्तत्वविदनादृत्य आत्मन्येव निवर्तयेत्।। शा० 240/24

योगी की प्रतिभा बढ़ जाती है। उसके सामने दिव्य भोग स्वयं उपस्थित हो जाते हैं। किन्तु तत्त्ववेत्ता योगी इस प्रकार की सिद्धियों में न फंसे क्योंकि ये सिद्धियाँ योगमार्ग की रुकावटें ही हैं। अतः इनसे मुख मोड़कर मन को आत्मा में लगाये।

येनोपायेन शक्येत संनियन्तुं चलं मनः।
तं च युक्तो निषेवेत न चैव विचलेत् ततः।। शान्ति 240/27

जिस किसी भी उपाय से चंचल मन को वश में किया जा सके उस उपाय को अपनाना चाहिये और मन को वश में करने के उस साधन को नहीं छोड़ना चाहिये।

नाभिष्वजेत् परं वाचा कर्मणा मनसापि वा।
उपेक्षको यताहारो लब्धालब्धे समो भवेत्।। शान्ति 240/29

साधक को अपने मन, वचन और कर्म से किसी भी व्यक्ति या वस्तु में आसक्त नहीं होना चाहिये। उसे सबकी ओर उपेक्षा का भाव रखना चाहिये, नियमित और परिमित भोजन करना चाहिये, तथा हानि-लाभ में भी समान भाव रखना चाहिये।

अपि वर्णावकृष्टस्तु नारी वा धर्मकाङ्क्षिणि।
तावप्येतेन मार्गेण गच्छेतां परमां गतिम्।। शान्ति 240/34

कोई नीच वर्ण का पुरुष हो चाहे धर्म का पालन करने वाली स्त्री वे दोनों ही योगाभ्यास के रास्ते पर चलकर परम गति प्राप्त करते हैं।

निरापद्धर्म आचारो ह्यप्रमादोऽपराभवः।। शान्ति 269/36

योग के रास्ते पर चलना आपत्ति रहित और प्रमाद रहित है। वह काम आदि से पराजित नहीं होता।

प्रत्यक्षमिह पश्यन्ति भवन्तः सत्पथे स्थिताः।। शान्ति 269/40

आप सन्मार्ग पर चलकर योगधर्म का फल यहाँ प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

यथा समुद्रमभितः संश्रिताः सरितोऽपराः।
तथाद्या प्रकृतिर्योगादभिसंश्रियते सदा।। शान्ति 298/34

जैसे चारों ओर से आने वाली नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं वैसे ही योग के द्वारा वश में किया हुआ मन मूल प्रकृति में लीन हो जाता है।

रागं मोहं तथा स्नेहं कामं क्रोधं च केवलम्।
योगाच्छित्त्वा ततो दोषान् पञ्चैतान् प्राप्नुवन्ति तत्।। शा० 300/11

योगी पुरुष योग बल से राग, मोह, स्नेह, काम और क्रोध इन पाँचों दोषों को जड़ से नष्ट करके परम पद को प्राप्त कर लेते हैं।

अप्रमत्तो यथा धन्वी लक्ष्यं हन्ति समाहितः।
युक्तः सम्यक् तथा योगी मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम्।। शा० 300/31

जैसे सावधान रहने वाला धनुर्धारी मन एकाग्र करके लक्ष्य को बींध देता है वैसे ही अपने मन को परमात्मा में लगा देने वाला योगी मोक्ष पद पा जाता है।

सुस्थेयं क्षुरधारासु निशितासु महीपते।
धारणासु तु योगस्य दुःस्थेयमकृतात्मभिः।। शान्ति 300/54

राजन्! छुरे की तेज़ धार पर कोई व्यक्ति आराम से खड़ा रह सकता है किन्तु जिनका चित्त शुद्ध नहीं है ऐसे मनुष्यों का योग की धारणाओं में स्थिर रहना बहुत कठिन है।

कामक्रोधौ भयं निद्रा पञ्चमः श्वास उच्यते।
एते दोषाः शरीरेषु दृश्यन्ते सर्वदेहिनाम्।। शान्ति 301/55

सभी देहधारियों के शरीरों में काम, क्रोध, भय, नींद और श्वास ये पाँच दोष देखे जाते हैं।

छिन्दन्ति क्षमया क्रोधं कामं संकल्पवर्जनात्।
सत्त्वसंसेवनान्निद्रामप्रमादाद् भयं तथा।। शान्ति 301/56
छिन्दति पञ्चमं श्वासमल्पहारतया नृप।। शान्ति 301/57

राजन्! सज्जन क्षमा से क्रोध का, संकल्पों या कामनाओं के त्याग से काम का, सत्त्वसंसेवन से नींद का, प्रमाद के त्याग से भय का और कम भोजन से श्वास इन पाँच दोषों का नाश करते हैं। नींद न आने देने के लिये शरीर को स्थिर रखने का अभ्यास और मस्तिष्क को शान्त रखने के लिये मन को एकाग्र करना चाहिये। यही सत्त्वसंसेवन का अभ्यास कहलाता है।

इन्द्रियैः सह सुप्तस्य देहिनः शत्रुतापन।
सूक्ष्मश्चरति सर्वत्र नभसीव समीरणः।। शान्ति 301/88

शत्रुओं को तपाने वाले राजन्! जब शरीरधारी प्राणी इन्द्रियों समेत सो जाता है तब उसका सूक्ष्म शरीर आकाश में वायु की तरह सब जगह घूमने लगता है अर्थात् स्वप्न देखने लगता है। विज्ञानमय, मनोमय और प्राणमय इन तीनों कोशों वाला

शरीर, सूक्ष्म शरीर कहलाता है। पाँच महाभूतों को बनाने वाले सूक्ष्म भूतों से बने ज्योतिर्मय कोश के अन्दर दस इन्द्रियों और मन तथा बुद्धि सहित सत्रह तत्त्वों से सूक्ष्म शरीर बना हुआ है।

ज्योतिरात्मनि नान्यत्र सर्वजन्तुषु तत् समम्।
स्वयं च शक्यते द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा।। शान्ति 326/32

अपने अन्दर ही प्रकाश है और कहीं नहीं है। वह ज्योति सभी प्राणियों में समान रूप से है। मन को खूब एकाग्र करके यह ज्योति देखी जा सकती है।

संयोज्य मनसा ऽऽत्मानमीर्ष्यामुत्सृज्य मोहनीम्।
त्यक्त्वा कामं च मोहं च तदा ब्रह्मत्वमश्नुते।। शा० 326/35

जब साधक मोह में फंसाने वाली ईर्ष्या, काम और मोह को त्याग कर अपने मन को आत्मा में लगा देता है तब वह ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

यदा श्राव्ये च दृश्ये च सर्वभूतेषु चाप्ययम्।
समो भवति निर्द्वन्द्वो ब्रह्म सम्पद्यते तदा।। शान्ति 326/36

जब साधक देखने और सुनने योग्य सभी वस्तुओं और सभी प्राणियों के प्रति एक जैसे मन वाला हो जाता है तथा सुख-दुःख आदि सभी प्रकार के द्वन्द्वों से छूट जाता है तब वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

प्रसार्येह यथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः।
तथेन्द्रियाणि मनसा संयन्तव्यानि भिक्षुणा।। शान्ति 326/39

जैसे कछुआ अपने हाथ पैर निकाल कर फिर अन्दर कर लेता है वैसे ही संन्यासी को मन से अपनी सभी इन्द्रियों पर नियन्त्रण करना चाहिये।

तमः परिगतं वेश्म यथा दीपेन दृश्यते।
तथा बुद्धिप्रदीपेन शक्य आत्मा निरीक्षितुम्।। शान्ति 326/40

जैसे अन्धेरे कमरे को दीपक के प्रकाश से देखा जाता है वैसे ही अपनी बुद्धि रूपी दीपक के प्रकाश से आत्मा का साक्षात् किया जा सकता है।

न चायुक्तेन शक्योऽयं द्रष्टुं देहे महेश्वरः।
युक्तस्तु पश्यते बुद्ध्या संनिवेश्य मनो हृदि।। अनु 96 दा० पा०

योगाभ्यास न करने वाला पुरुष अपने शरीर में परमात्मा का दर्शन नहीं कर सकता। योगयुक्त व्यक्ति ही बुद्धि से मन को हृदय में स्थापित करके परमात्मा का साक्षात् कर सकता है।

इन्द्रियाणि तु संहृत्य मन आत्मनि धारयेत्।
तीव्रं तप्त्वा तपः पूर्वं मोक्षयोगं समाचरेत्।। आश्व 19/17

अपनी आँख, कान आदि इन्द्रियों को विषय-भोगों से हटाकर मन को आत्मचिन्तन में लगाना चाहिये। शुरू में कठोर तपस्या करके फिर मोक्ष के लिये उपयोगी उपाय अपनाने चाहियें।

यथा हि पुरुषः स्वप्ने दृष्ट्वा पश्यत्यसाविति।
तथा रूपमिवात्मानं साधु युक्तः प्रपश्यति।। आश्व 19/21

जैसे मनुष्य सपने में किसी अपरिचित व्यक्ति को देखकर जागने पर उस व्यक्ति को फिर देखकर पहिचान लेता है कि यह वही है। इसी तरह योगी समाधि में आत्मा को जिस रूप में देखता है उसी रूप में वह बाद में भी देखता रहता है।

इषीकां च यथा मुञ्जात् कश्चिन्निष्कृष्य दर्शयेत्।
योगी निष्कृष्य चात्मानं तथा पश्यति देहतः।। आश्व 19/22

जैसे कोई मनुष्य मूंज से सींक को अलग करके दिखा दे वैसे ही योगी आत्मा को अपनी देह से अलग करके देखता है।

अन्यान्याश्चैव तनवो यथेष्टं प्रतिपद्यते।
विनिवृत्य जरां मृत्युं न शोचति न हृष्यति।। आश्व 19/25

योगी अपनी इच्छा के अनुसार तरह-तरह के शरीर धारण कर सकता है। वह बुढ़ापे और मृत्यु को भगा देता है। वह कभी भी न तो शोक करता है और न ही प्रसन्नता प्रकट करता है।

दुःखशोकमयैर्घोरैः सङ्गस्नेह समुद्भवैः।
न विचाल्यति युक्तात्मा निःस्पृहः शान्तमानसः।। आश्व 19/28

शान्तचित्त और निःस्पृह योगी आसक्ति और स्नेह के कारण होने वाले भयंकर दुःखों और शोकों से विचलित नहीं होता।

सम्यग्युक्त्वा स आत्मानमात्मन्येव प्रतिष्ठते।
विनिवृत्तजरादुःखः सुखं स्वपिति चापि सः।। आश्व 19/30

वह योगी अपने मन को आत्मा में लगाकर अपनी आत्मा में ही लीन हो जाता है। वह बुढ़ापे और दुखों से छुटकारा पाकर आराम से सोता है।

सम्युग्युक्तो यदाऽऽत्मानमात्मन्येव प्रपश्यति।
तदैव न स्पृहयते साक्षादपि शतक्रतोः।। आश्व 19/32

योगी अपने मन को भली-भाँति आत्मा में लगाकर आत्म साक्षात्कार करता है। इस स्थिति में वह साक्षात् इन्द्र का पद भी नहीं पाना चाहता।

समानव्यानयो र्मध्ये प्राणापानौ विचेरतुः।। आश्व 20/15
तस्मिंल्लीने प्रलीयेत समानो व्यान एव च।
अपान प्राणयोर्मध्ये उदानो व्याप्य तिष्ठति।
तस्माच्छ्यानं पुरुषं प्राणापानौ न मुञ्चतः।। आश्व 20/16

शरीर की समान और व्यान इन दो वायुओं के बीच में प्राण और अपान वायु विचरते हैं। अपान सहित प्राण वायु के लीन होने पर समान और व्यान वायुओं का भी लय हो जाता है। अपान और प्राण वायुओं के बीच में उदान सब को व्याप्त करके रहता है इसीलिये सोये हुए पुरुष को प्राण और अपान नहीं छोड़ते हैं।

तेषामन्योन्यभक्षाणां सर्वेषां देहचारिणाम्।
अग्निर्वैश्वानरो मध्ये सप्तधा दीव्यतेऽन्तरा।। आश्व 20/17

एक-दूसरे के सहारे रहने वाले तथा सभी प्राणियों के देह में संचार करने वाले इन पाँच प्राण वायुओं के मध्य भाग में समान वायु का स्थान नाभिमण्डल है। इस नाभिमण्डल में स्थित वैश्वानर अग्नि सात रूपों में प्रकाशमान रहता है।

घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक् च श्रोत्रं च पञ्चमम्।
मनो बुद्धिश्च सप्तैता जिह्वा वैश्वानरार्चिषः।। आश्व 20/19
घ्रेयं दृश्यं च पेयं च स्पृश्यं श्रव्यं तथैव च।
मन्तव्यमथ बोद्धव्यं ताः सप्त समिधो मम।। आश्व 20/20

नाक, जीभ, आँख, त्वचा और पाँचवाँ कान तथा मन और बुद्धि ये सात वैश्वानर अग्नि की सात जीभ हैं। सूंघने योग्य गन्ध, देखने योग्य रूप, पीने योग्य रस, छूने योग्य वस्तु, सुनने योग्य शब्द, मन के द्वारा मनन करने योग्य और बुद्धि के द्वारा समझने योग्य विषय ये सात वैश्वानर अग्नि की समिधाएँ हैं।

योगान्नास्ति परं सुखम्।। आश्व 30/31

ध्यान योग से बढ़कर कोई और उत्तम सुख का साधन नहीं है।

ध्यानयोगमुपागम्य प्रसन्नमतयः सदा।
सुखोपचयमव्यक्तं प्रविशन्त्यात्मवित्तमाः।। आश्व 51/23

जो साधक ध्यान योग का अभ्यास करके सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं वे आत्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ पुरुष आनन्द की राशि अव्यक्त परमात्मा में प्रविष्ट होते हैं।

चित्तं चित्तादुपागम्य मुनिरासीत संयतः।
यच्चित्तं तन्मयो वश्यं गुह्यमेतत् सनातनम्।। आश्व 51/27

मुनि को चिन्तन–मनन के द्वारा चेतन–तत्त्व का ज्ञान पाकर मन और इन्द्रियों को वश में करके परमात्मा का ध्यान करना चाहिये। जिसका मन जिस वस्तु में लगा होता है उसका मन उसी वस्तु जैसा हो जाता है। यह सनातन रहस्य है।

राजधर्म

दयावान् सर्वभूतेषु हितो रक्तोऽनसूयकः।। वन 191/23
सत्यवादी मृदुर्दान्तः प्रजानां रक्षणे रतः।
चर धर्मं त्यजाधर्मं पितॄन् देवांश्च पूजय।। वन 191/24
अलं ते मानमाश्रित्य सततं परवान् भव।। वन 191/25

राजन्! तुम सब प्राणियों पर दया करो, सबका भला करो, सबसे स्नेह करो, किसी के दोष मत देखो, सत्यवादी, कोमल स्वभाव, जितेन्द्रिय, और प्रजापालन करते हुए धर्म का पालन करो, अधर्म को छोड़ दो तथा पितरों और देवताओं को सम्मान की दृष्टि से देखो। अहंकार को अपने पास न फटकने दो और अपने को सदा पराधीन समझते रहो।

जयेत् कदर्यं दानेन सत्येनानृतवादिनम्।
क्षमया क्रूरकर्माणमसाधुं साधुना जयेत्।। वन 194/6

नीच पुरुष को दान देकर, झूठे को सत्य बोल कर, क्रूर को क्षमा करके और दुष्ट के साथ भला करके वश में लाना चाहिये।

नित्यमेव प्रियं कार्यं राज्ञो विषयवासिभिः।। वन 249/39

राजा के राज्य में रहने वालों को सदा राजा का भला करना चाहिये।

न चानुशिष्याद् राजानमपृच्छन्तं कदाचन।
तूष्णीं त्वेनमुपासीत काले समभिपूजयेत्।। विराट 4/16

बिना पूछे राजा को कभी सलाह नहीं देनी चाहिये। चुप रहकर ही राजा की सेवा करनी चाहिये। उपयुक्त अवसर पर राजा की प्रशंसा करे।

नैषां दारेषु कुर्वीत मैत्रीं प्राज्ञः कदाचन।
अन्तःपुर चरा ये च द्वेष्टि यानहिताश्च ये।। विराट 4/18

बुद्धिमान पुरुष को रानियों से मेल जोल नहीं करना चाहिये। उसे रनिवास में आने-जाने वाले सेवकों से, राजा का अहित चाहने वालों से और राजा जिन लोगों से द्वेष करता हो उनसे भी मित्रता नहीं करनी चाहिये।

विदिते चास्य कुर्वीत कार्याणि सुलघून्यपि।
एवं विचरतो राज्ञो न क्षतिर्जायते क्वचित्।। विराट 4/19

छोटे से छोटा काम भी राजा को बता कर ही करना चाहिये। ऐसा आचरण करने से मनुष्य को कभी नुकसान नहीं होता।

न हि पुत्रं न नप्तारं न भ्रातरमरिंदमाः।
समतिक्रान्तमर्यादं पूजयन्ति नराधिपाः।। विराट 4/21

राजा; मर्यादा का उल्लघंन करने वाले अपने पुत्र, नाती-पोते और भाई का भी आदर नहीं करते।

यत्नाच्चोपचरेदेनमग्निवद् देववत् त्विह।
अनृतेनोपचीर्णो हि हन्यादेव न संशयः।। विराट 4/22

राजा को आग की तरह जलाने वाला समझकर उसके बहुत पास नहीं रहना चाहिये। राजा को देवता की तरह मानना चाहिये क्योंकि वह किसी को भी दण्ड दे सकता है या कृपा कर सकता है। जो गलत रास्ते अपना कर राजा की सेवा करता है वह एक न एक दिन मारा जाता है।

यद् यद् भर्तानुयुञ्जीत तत् तदेवानुवर्तयेत्।
प्रमादमवलेपं च कोपं च परिवर्जयेत्।। विराट 4/23

राजा जो कार्य करने को कहे उसे करे। लापरवाही, अभिमान और क्रोध को छोड़ दे।

शूरोऽस्मि न दृप्तःस्याद् बुद्धिमानिति वा पुनः।
प्रियमेवाचरन् राज्ञः प्रियो भवति भोगवान्।। विराट 4/32

अपने को वीर या बुद्धिमान समझकर घमण्ड नहीं करना चाहिये। राजा को

अच्छे लगने वाले काम करने वाला पुरुष राजा का प्रिय तथा ऐश्वर्य सम्पन्न हो जाता है।

न चोष्ठौ न भुजौ जानू न च वाक्यं समाक्षिपेत्।
सदा वातं च वाचं च ष्ठीवनं चाचरैच्छनैः।। विराट 4/35

राजा के सामने अपने ओठों, हाथों और घुटनों को हिलाना नहीं चाहिये। व्यर्थ की बात भी नहीं कहनी चाहिये। सदा धीरे बोलना चाहिये। थूकने और अपान वायु छोड़ने का पता किसी को नहीं चलना चाहिये।

प्रगृहीतश्च योऽमात्यो निगृहीतस्त्वकारणैः।
न निर्वदति राजानं लभते सम्पदं पुनः।। विराट 4/40

यदि कोई मन्त्री पहले राजा का कृपा पात्र रहा हो और बाद में उसे बिना कारण दण्ड भोगना पड़ा हो तो भी उसे राजा की निन्दा नहीं करनी चाहिये। ऐसा करने से वह फिर अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है।

समवेषं न कुर्वीत नोच्चै संनिहितो वसेत्।
न मन्त्रं बहुधा कुर्यादेवं राज्ञः प्रियो भवेत्।। विराट 4/48

राजा के जैसे कपड़े न पहने, उसके सामने ऊँचे आसन पर न बैठे और राजा के बहुत पास न रहे। राजा के साथ की गई गुप्त मंत्रणा किसी से न कहे। ऐसा व्यक्ति राजा का प्रिय होता है।

न कर्माणि नियुक्तःसन् धनं किञ्चिदपि स्पृशेत्।
प्राप्नोति हि हरन् द्रव्यं बन्धनं यदि वा वधम्।। विराट 4/49

राजा द्वारा किसी काम पर नियुक्त करने पर थोड़ी सी भी घूस नहीं लेनी चाहिये। घूस लेने वाले राज कर्मचारी को एक दिन जेल या मृत्यु का मुंह देखना पड़ता है।

मित्रता सर्वभूतेषु दानमध्ययनं तपः।
ब्राह्मणस्यैव धर्मः स्यान्न राज्ञो राजसत्तम।। शान्ति 14/15

श्रेष्ठ राजन्! सभी प्राणियों के प्रति मित्रता की भावना, दान, स्वाध्याय और तपस्या ये सब बातें ब्राह्मण के लिये हैं राजा के लिये नहीं।

असतां प्रतिषेधश्च सतां च परिपालनम्।
एष राज्ञां परो धर्मः समरे चापलायनम्।। शान्ति 14/16

दुष्टों को दण्ड देना और सज्जनों की रक्षा करना तथा युद्ध में पीठ दिखाकर न भागना ही राजाओं का श्रेष्ठ धर्म होता है।

यस्मिन् क्षमा च क्रोधश्च दानादाने भयाभये।
निग्रहानुग्रहौ चोभौ स वै धर्मविदुच्यते।। शान्ति 14/17

जिस राजा में अवसर के अनुसार क्षमा करने और क्रोध दिखाने, दान देने या न देने, डराने या अभय दान देने की तथा दुष्टों को दण्ड देने की और दीनों पर कृपा करने की योग्यता होती है वही धर्मज्ञ राजा होता है।

राज्यं हि सुमहत् तन्त्रं धार्यते नाकृतात्मभिः।
न शक्यं मृदुना वोढुमायासस्थानमुत्तमम्।। शान्ति 58/21

राज्य बहुत जटिल और बड़ा तन्त्र है। जिन लोगों की इन्द्रियाँ और मन वश में नहीं रहता वे राज–काज नहीं चला सकते। कोमल स्वभाव के लोग भी राज्य नहीं कर सकते। उन्हें राजकाज जंजाल और भार लगता है।

राज्यं सर्वामिषं नित्यमार्जवेनेह धार्यते।। शान्ति 58/22

राज्य सबके उपभोग की वस्तु है। इसे सरल भाव से ही चलाया जा सकता है।

बाह्वायत्तं क्षत्रियैर्मानवानां लोकश्रेष्ठं धर्ममासेवमानैः।
सर्वे धर्माः सोपधर्मास्त्रयाणां राज्ञो धर्मादिति वेदाच्छृणोमि।।

शान्ति 63/24

राजधर्म बाहुबल के आधीन होता है। यह धर्म क्षत्रिय के लिये संसार का सर्वश्रेष्ठ धर्म है। राजधर्म पर चलने वाले क्षत्रिय मनुष्य मात्र की रक्षा करते हैं। इसलिये तीनों वर्णों के सारे धर्म और उपधर्म राजधर्म से ही सुरक्षित रह सकते हैं ऐसा हमने वेदों से सुना है।

यथा राजन् हस्तिपदे पदानि संलीयन्ते सर्वसत्त्वोद्भवानि।
एवं धर्मान् राजधर्मेषु सर्वान् सर्वावस्थान् सम्प्रलीनान् निबोध।।

शान्ति 63/25

राजन्! जैसे हाथी के पैर में सब प्राणियों के पैर समा जाते हैं वैसे ही सब धर्म सभी अवस्थाओं में राजधर्म के अन्तर्गत समझो।

अल्पाश्रयानल्पफलान् वदन्ति धर्मानन्यान् धर्मविदो मनुष्याः।
महाश्रयं बहुकल्याणरूपं क्षात्रं धर्मं नेतरं प्राहुरार्याः।।

शान्ति 63/26

धर्म जानने वाले पुरुषों का कहना है कि दूसरे सारे धर्मों का आश्रय और फल थोड़ा ही होता है किन्तु क्षात्र धर्म (राजधर्म) का आश्रय महान है और इसका फल बहुत और कल्याणकारी होता है अतः इसके समान कोई दूसरा धर्म नहीं है।

सर्वे धर्मा राजधर्मप्रधानाः सर्वे वर्णाः पाल्यमाना भवन्ति।
सर्वस्त्यागो राजधर्मेषु राजंस्त्यागं धर्मं चाहुरग्र्यं पुराणम्।। शान्ति 63/27

राजन्! सभी धर्मों में राजधर्म प्रधान है क्योंकि उसी से सभी वर्णों का पालन होता है। राजधर्म में सभी तरह के त्याग सम्मिलित हैं और त्याग को सर्वश्रेष्ठ और प्राचीन धर्म बताया जाता है।

मज्जेत् त्रयी दण्डनीतौ हतायां सर्वे धर्माः प्रक्षयेयुर्विबुद्धाः।
सर्वे धर्माश्चाश्रमाणां हताः स्युः क्षात्रे त्यक्ते राजधर्मे पुराणे।।
शान्ति 63/28

यदि दण्डनीति नष्ट हो जाय तो वेद रसातल को चले जायेंगे और समाज में प्रचलित सारे धर्म समाप्त हो जायेंगे। यदि प्राचीन राजधर्म (क्षात्र धर्म) लुप्त हो जाये तो आश्रमों के सभी धर्म नष्ट हो जायेंगे।

सर्वे त्यागा राजधर्मेषु दृष्टाः सर्वा दीक्षा राजाधर्मेषु चोक्ताः।
सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ताः सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः।। शान्ति 63/29

राजधर्म में सारे त्याग दिखाई देते हैं। राजधर्मों से सभी दीक्षाओं का प्रतिपादन होता है। राजधर्म में सारी विद्याएँ सुलभ होती हैं तथा राजधर्म में सभी लोकों का समावेश होता है।

विनष्टायां दण्डनीत्यां राजधर्मे निराकृते।
सम्प्रमुह्यन्ति भूतानि राजदौरात्म्यतोऽनघ।। शान्ति 65/24

हे निष्पाप राजा! राजा की दुष्टता से दण्डनीति के नष्ट हो जाने पर और राजधर्म के तिरस्कृत हो जाने पर प्रजा कर्त्तव्य का बोध खो बैठती है।

धर्मे स्थिता सत्त्ववीर्या धर्मसेतुवटारका।
त्यागवाताध्वगा शीघ्रा नौस्त्वं संतारयिष्यति।। शान्ति 66/37

राजधर्म एक नाव है। यह नाव धर्मरूपी समुद्र में स्थित है। इस नौका को चलाने वाली शक्ति सत्त्वगुण हैं। धर्मशास्त्र इस नौका की रस्सी है। त्याग की वायु के सहारे यह नाव जल्दी चलकर राजा को संसार सागर से तार देती है।

अगतीकगतिर्ह्येषा पापा राजोपसेविनाम्।। शान्ति 82/24

राजा की नौकरी करने वालों के लिये यह पापपूर्ण जीविका अगतिक गति है अर्थात् जिन्हें कहीं भी सहारा नहीं मिलता वे राजा के नौकर होते हैं।

अग्निं दीप्तमिवासीदेद् राजानमुपशिक्षितः।। शान्ति 82/28

पढ़े-लिखे समझदार व्यक्ति को राजा के पास उसी तरह सावधान होकर रहना चाहिये जैसे आग के पास मनुष्य सावधान रहता है।

दुर्व्याहृताच्छङ्कमानो दुष्कृताद् दुरधिष्ठितात्।
दुरासिताद् दुर्व्रजितादिङ्गितादङ्ग चेष्टितात्।। शान्ति 82/30

इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिये कि राजा के सामने मुंह से कोई बुरी बात न निकल जाये। कोई बुरा काम न हो जाये। खड़े होते, बैठते, चलते समय या हाथ पैर आदि से कोई असभ्य चेष्य न हो जाये।

देवतेव सर्वार्थान् कुर्याद् राजा प्रसादितः।
वैश्वानर इव क्रुद्ध समूलमपि निर्दहेत्।। शान्ति 82/31

यदि राजा को प्रसन्न कर लिया जाता है तो वह देवता की तरह सारी मनोकामनाएँ पूरी कर देता है, किन्तु नाराज हो जाने पर आग की तरह जला डालता है।

अग्निना तामसं दुर्गं नौभिराप्यं च गम्यते।
राजदुर्गावतरणे नोपायं पण्डिता विदुः।। शान्ति 82/41

अन्धेरे किले में आग के प्रकाश से घुसा जा सकता है और पानी में बने किले पर नाव से पहुंचा जा सकता है किन्तु राजा रूपी किले से पार पाने का कोई उपाय विद्वान नहीं जानते।

राज्यं प्रणिधिमूलं हि मन्त्रसारं प्रचक्षते।
स्वामिनं त्वनुवर्तन्ते वृत्त्यर्थमिह मन्त्रिणः।। शान्ति 83/51

राज्य का आधार गुप्तचर होते हैं और गुप्त मन्त्रणा राज्य का सर्वस्व होती है। मन्त्री तो अपना पेट भरने के लिये राजा की बात मानते हैं।

यदा राजा शास्ति नरानशिष्टां स्तदा राज्यं वर्धते भूमिपस्य।। शान्ति 91/28

जब राजा दुष्टों को दण्ड देता है तब उसका राज्य समृद्ध होने लगता है।

संविभज्य यदा भुङ्क्ते नामात्यानवमन्यते।
निहन्ति बलिनं दृप्तं स राज्ञो धर्म उच्यते।। शान्ति 91/31

राजा जब सम्पत्ति का उचित बंटवारा कर उसका भोग करता है, मन्त्रियों का अपमान नहीं करता, अभिमानी और बलवान पुरुषों या शत्रुओं को मार डालता है तब उसका यह काम राज धर्म कहलाता है।

त्रायते हि यदा सर्वं वाचा कायेन कर्मणा।
पुत्रस्यापि न मृष्येच्च स राज्ञो धर्म उच्यते।। शान्ति 91/32

जब राजा अपने शरीर, वाणी और कर्म से सभी की रक्षा करता है और पुत्र के अपराध को भी क्षमा नहीं करता है तब उसका यह काम राजधर्म कहा जाता है।

पापमाचरतो यत्र कर्मणा व्याहृतेन च।
प्रियस्यापि न मृष्येत स राज्ञो धर्म उच्यते।। शान्ति 91/35

अपने प्रिय व्यक्ति द्वारा वाणी से या शरीर से किया गया पाप का काम जब राजा सहन नहीं करता है तो उसका यह काम राजधर्म कहा जाता है।

यदा शारणिकान् राजा पुत्रवत् परिरक्षति।
भिनत्ति न च मर्यादां स राज्ञो धर्म उच्यते।। शान्ति 91/36

जब राजा शरण में आये हुए लोगों की पुत्र की तरह रक्षा करता है और अपनी मर्यादा को नहीं तोड़ता है तब उसका यह काम राजधर्म कहलाता है।

कृपणानाथवृद्धानां यदाश्रु परिमार्जति।
हर्षं संजनयन् नृणां स राज्ञो धर्म उच्यते।। शान्ति 91/38

जब राजा दीन, अनाथ और बूढ़ों के आंसू पोंछ देता है और अपने इस व्यवहार से लोगों को प्रसन्न कर देता है तब उसका यह काम राजधर्म कहा जाता है।

विवर्धयति मित्राणि तथारींश्चापि कर्षति।
सम्पूजयति साधूंश्च स राज्ञो धर्म उच्यते।। शान्ति 91/39

जब राजा मित्रों की वृद्धि, शत्रुओं का नाश और साधु पुरुषों का आदर करता है तब उसका यह काम राजधर्म कहा जाता है।

सत्यं पालयति प्रीत्या नित्यं भूमिं प्रयच्छति।
पूजयेदतिथीन् भृत्यान् स राज्ञो धर्म उच्यते।। शान्ति 91/40

जो राजा प्रेमपूर्वक सत्य का पालन करता है, प्रतिदिन भूदान करता है और अतिथियों तथा सेवकों का सत्कार करता है, उसका यह काम राजधर्म होता है।

संग्रहः सर्वभूतानां दानं च मधुरं वचः।
पौरजानपदाश्चैव गोप्तव्यास्ते यथासुखम्।। शान्ति 91/47

राजा को सभी प्राणियों को अपने अनुकूल बनाये रखना चाहिये, दान देना और मीठी वाणी बोलनी चाहिये। उसे नगरों और गाँवों के लोगों की रक्षा करनी चाहिये जिससे वे उसके राज्य में सुख से रह सकें।

ह्रतं कृपणवित्तं हि राष्ट्रं हन्ति नृपश्रियम्।
दद्याच्च महतो भोगान् क्षुद्भयं प्रणुदेत् सताम्।। अनुशासन 61/26

यदि राजा किसी गरीब का धन छीन लेता है तो उसका राज्य और राज्यलक्ष्मी नष्ट हो जाती है। राजा को अच्छे लोगों को भूखों नहीं मरने देना चाहिये। सज्जनों और निर्धनों को सुख-सुविधाएँ प्रदान करनी चाहियें।

यानि स्वादूनि भोज्यानि समवेक्ष्यन्ति बालकाः।
नाश्नन्ति विधिवत् तानि किं नु पापतरं ततः।। अनुशासन 61/27

जिन राजाओं और अधिकारियों के स्वादिष्ट भोजन को बच्चे तरसती आँखों से देखते हों और बच्चों का ठीके ढंग से पेट न भरता हो इस स्थिति से बढ़कर राजा के लिये और क्या पाप होगा?

धिक् तस्य जीवितं राज्ञो राष्ट्रे यस्यावसीदति।
द्विजोऽन्यो वा मनुष्योऽपि शिविराह वचो यथा।। अनु 61/29

राजा शिवि का कहना है कि जिस राजा के राज्य में विद्वान् ब्राह्मण और दूसरे लोग भूखे रहते हों उस राजा को धिक्कार है।

क्रोशन्त्यो यस्य वै राष्ट्राद्ध्रियन्ते तरसा स्त्रियः।
क्रोशतां पतिपुत्राणां मृतोऽसौ न च जीवति।। अनुशासन 61/31

जिस राजा के राज्य में रोती-बिलखती स्त्रियों का जबर्दस्ती अपहरण कर लिया जाता हो और उनके पति और पुत्र रोते पीटते रह जाते हों वह राजा जीवित नहीं अपितु मुर्दे जैसा ही होता है।

अरक्षितारं हर्तारं विलोप्तारमनायकम्।
तं वै राजकलिं हन्युः प्रजाः सन्नह्य निर्घृणम्।। अनु 61/32

जो राजा; प्रजा की रक्षा नहीं करता, अपितु प्रजा को लूटता रहता है तथा जिस राजा के पास नेतृत्व करने वाला कोई मन्त्री नहीं होता वह राजा साक्षात् कलियुग ही है। सारी प्रजा को चाहिये कि वह ऐसे निर्दयी राजा को बांधकर मार डाले।

राजा हि धर्मकुशलः प्रथमं भूतिलक्षणम्।। अनुशासन 62/40

धार्मिक राजा, प्रजा के सुख और ऐश्वर्य को बताने वाला पहिला लक्षण होता है।

विद्यावृद्धान् सदैव त्वमुपासीथा युधिष्ठिर।
शृणुयास्ते च यद् ब्रूयुः कुर्याश्चैवाविचारयन्।। आश्रमवास 5/10

युधिष्ठिर! तुम्हें विद्या में बढ़े चढ़े विद्वानों के साथ सदा रहना चाहिये। इन लोगों की बातें ध्यान से सुननी चाहियें और उन बातों पर विचार किये बिना उनका पालन करना चाहिये।

इन्द्रियाणि च सर्वाणि वाजिवत् परिपालय।
हितायैव भविष्यन्ति रक्षितं द्रविणं यथा।। आश्रमवास 5/13

जैसे सारथि घोड़ों को वश में रखता है वैसे ही तुम्हें अपनी इन्द्रियों को वश में रखना चाहिये। ऐसा करने से तुम्हारी इन्द्रियाँ, सुरक्षित रखे धन की तरह निश्चय ही तुम्हारे लिये हितकारी होंगी।

चक्रवत् तात कार्याणां पर्यायो दृश्यते सदा।
कोशस्य निचये यत्नं कुर्वीथा न्यायतः सदा।। आश्रमवास 5/36

प्रिय! पहिये की तरह राज्य के कार्यों का सिलसिला सदा चलता रहता है। तुम्हें न्यायपूर्वक राजकोष बढ़ाने का प्रयत्न सदा करना चाहिये।

साधुसंग्रहणाच्चैव पापनिग्रहणात् तथा।
दुर्बलाश्चैव सततं नान्वेष्टव्या बलीयसा।। आश्रमवास 6/17

राजा को भले लोगों से सम्पर्क बढ़ाना चाहिये और दुष्ट मनुष्यों को काबू में रखना चाहिये। बलवान राजा को कमजोर शत्रु के पीछे लगातार नहीं पड़े रहना चाहिये।

सर्वथैव महाराज शरीरं धारयेदिह।
प्रेत्य चेह च कर्तव्यमात्मनिःश्रेयसं परम्।। आश्रमवास 7/18

महाराज! इस संसार में आपको सभी तरह के उपाय अपनाकर अपने शरीर की रक्षा करनी चाहिये। अपने शरीर के द्वारा इस संसार में और परलोक में भी अपने कल्याण के लिये श्रेष्ठ साधन अपनाने उचित हैं।

राजनीति

नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः।
अच्छिद्रश्छिद्रदर्शी स्यात् परेषां विवरानुगः।। आदि 139/6

राजा को दण्ड देने के लिये सदा तैयार रहना चाहिये और अपनी शक्ति सदा प्रकट करनी चाहिये। उसे अपनी कमजोरी छिपानी चाहिये किन्तु शत्रु की दुर्बलता जाननी चाहिये और शत्रु की कमजोरी जानकर उस पर आक्रमण कर देना चाहिये।

नासम्यक्कृतकारी स्यादुपक्रम कदाचन।
कण्टको ह्यपि दुश्छिन्न आस्त्रावं जनयेच्चिरम्।। आदि 139/9

राजा को कोई काम उचित तैयारी के बिना नहीं करना चाहिये और न ही अधूरा छोड़ना चाहिये। शरीर में से आधा निकला टूटा कांटा भी बहुत दिन तक पस बहाता रहता है।

वधमेव प्रशंसन्ति शत्रूणामपकारिणाम्।। आदि 139/10

बुरा करने वालों और शत्रुओं का वध ही उचित होता है।

नावज्ञेयो रिपुस्तात दुर्बलोऽपि कथंचन।। आदि 139/11

कमजोर शत्रु की भी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत् कालस्य पर्ययः।। आदि 139/21

जब तक समय अपने अनुकूल न हो तब तक शत्रु को कन्धे पर भी बिठा ले।

भयेन भेदयेद् भीरुं शूरमञ्जलिकर्मणा।। आदि 139/50

डरपोक शत्रु को डराकर और शूरवीर को हाथ जोड़कर वश में करे।

लुब्धमर्थप्रदानेन समं न्यूनं तथौजसा।। आदि 139/51

लालची शत्रु को धन देकर तथा बराबर के या कमजोर शत्रु को अपने पराक्रम से वश में करना चाहिये।

पुत्रः सखा वा भ्राता वा पिता वा यदि वा गुरुः।
रिपुस्थानेषु वर्तन्तो हन्तव्या भूतिमिच्छता।। आदि 139/52

यदि पुत्र, मित्र, भाई, पिता और गुरु भी शत्रुता करे तो कल्याण चाहने वाले राजा को इन्हें भी मार डालना चाहिये।

क्रुद्धोऽप्यक्रुद्धरूपः स्यात् स्मित पूर्वाभिभाषिता।
न चाप्यन्यमपध्वंसेत् कदाचित् कोपसंयुतः।। आदि 139/55

यदि क्रोध आ रहा हो तो भी अपना गुस्सा प्रकट नहीं करना चाहिये और हँस कर ही बोलना चाहिये। क्रोध में भरकर कभी किसी का अपमान नहीं करना चाहिये।

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति।। आदि 139/62

जिस पर विश्वास नहीं किया जा सकता उस पर कभी भी विश्वास न करे। विश्वस्त व्यक्ति का भी बहुत विश्वास न करे, क्योंकि बहुत विश्वास करने से उत्पन्न संकट राजा का जड़ मूल सहित विनाश कर डालता है।

अञ्जलिः शपथः सान्त्वं शिरसा पादवन्दनम्।
आशाकरणमित्येवं कर्तव्यं भूतिमिच्छता।। आदि 139/67

अवसर के अनुसार हाथ जोड़ना, कसम खाना, सान्त्वना देना और पैरों पर मस्तक रखकर प्रणाम करना तथा आशा बंधाना ये सब उपाय ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले राजा को करने चाहियें।

सुपुष्पितः स्यादफलः फलवान् स्याद् दुरारुहः।
आमः स्यात् पक्वसंकाशो न च जीर्येत् कर्हिचित्।। आदि 139/68

राजा को ऐसे पेड़ के समान होना चाहिये जिस पर फूल तो खूब आयें किन्तु फल न हों। यदि फल हों तो उन्हें पाना कठिन हो। राजा को पके फल की भाँति दिखना चाहिये लेकिन उसे कच्चे फल की तरह लोगों को स्वार्थ सिद्ध नहीं करने देना चाहिये। उसे अपना खजाना कभी खाली नहीं रखना चाहिये।

अगर्वितात्मा युक्तश्च सान्त्वयुक्तोऽनुसूयिता।
अवेक्षितार्थः शुद्धात्मा मन्त्रयीत द्विजैः सह।। आदि 139/71

राजा को कभी अहंकार नहीं करना चाहिये। उसे चित्त एकाग्र रखना चाहिये। सबसे मधुर व्यवहार करना चाहिये। दूसरों के दोष नहीं बताने चाहियें। सभी बातों पर नजर रखनी चाहिए और अपने विश्वस्त मन्त्रियों के साथ सलाह करनी चाहिये।

न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।
संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति।। आदि 139/73

मनुष्य कष्ट सहे बिना सुख नहीं पाता। प्राण संकट में पड़ने पर यदि वह जीवित रहता है तो फिर सुख पाता है।

योऽरिणा सह संधाय शयीत कृतकृत्यवत्।
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते।। आदि 139/75

जैसे वृक्ष की अगली टहनी पर सोया हुआ मनुष्य पेड़ से गिरने पर ही जागता है उसी तरह शत्रु से संधि कर निश्चिन्त बैठा हुआ राजा धोखा खाता है।

नार्थिकोऽर्थिनमभ्येति कृतार्थे नास्ति संगतम्।
तस्मात् सर्वाणि साध्यानि सावशेषाणि कारयेत्।। आदि 139/79

धनवान् पुरुष धनी के पास नहीं जाता। जिसके सब काम हो जाते हैं वह किसी का साथ नहीं निभाता इसलिये अपने से पूरे होने वाले कामों को दूसरों के लिये अधूरा ही बना रहने दे।

नास्य कृत्यानि बुध्येरन् मित्राणि रिपवस्तथा।
आरब्धान्येव पश्येरन् सुपर्यवसितान्यपि।। आदि 139/81

मित्र और शत्रु को यह पता नहीं चलना चाहिये कि राजा कब क्या करने वाला है। कार्य शुरु होने पर या समाप्त होने पर ही लोगों को उस काम के बारे में पता चलना चाहिये।

भीतवत् संविधातव्यं यावद् भयमनागतम्।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवत्।। आदि 139/82

जब तक कोई भय न आये तब तक डरे हुए व्यक्ति की भाँति उस भय को टलने का प्रयत्न करना चाहिये किन्तु भय के उपस्थित हो जाने पर निडर होकर उसका सामना करना चाहिये।

दण्डेनोपनतं शत्रुमनुगृह्णाति यो नरः।
स मृत्युमुपगृह्णीयाद् गर्भमश्वतरी यथा।। आदि 139/83

जो व्यक्ति दण्ड के द्वारा वश में किये हुए शत्रु पर दया करता है वह अपना सर्वनाश कर लेता है जैसे खच्चरी गर्भ धारण करके मर जाती है।

अनागतं हि बुध्येत यच्च कार्यं पुरः स्थितम्।
न तु बुद्धिक्षयात् किंचिदतिक्रामेत् प्रयोजनम्।। आदि 139/84

भविष्य में करने वाले काम पर भली-भाँति विचार करे और उपस्थित काम भी बुद्धिपूर्वक करे। सोच-समझकर निश्चय किये बिना कोई काम छोड़े नहीं।

तालवत् कुरुते मूलं बालः शत्रुरुपेक्षितः।
गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः क्षिप्रं संजायते महान्।। आदि 139/86

छोटे से शत्रु की यदि उपेक्षा कर दी जाय तो वह ताड़ के पेड़ जैसा हो जाता है जैसे जंगल में छोड़ी हुई आग विनाशकारी बन जाती है।

आशां कालवतीं कुर्यात् कालं विध्नेन योजयेत्।
विघ्नं निमित्ततो ब्रूयान्निमित्तं वापि हेतुतः।। आदि 139/88

किसी की आशा को जल्दी पूरा नहीं करना चाहिये। उसे पूरा करने का समय आने पर कोई बाधा आने की बात कह दे और उस विघ्न का कारण भी बता दे और उस कारण को युक्ति के द्वारा ठीक भी बता दे।

लोकवृत्ताद् राजवृत्तमन्यदाह वृहस्पतिः।
तस्माद् राज्ञाप्रमत्तेन स्वार्थश्चिन्त्यः सदैव हि।। सभा 55/6

आचार्य बृहस्पति ने राजा के व्यवहार को लोकव्यवहार से भिन्न बताया है। अतः राजा को सदा सावधान रहकर अपने हित का ध्यान रखना चाहिये।

प्रच्छन्नो वा प्रकाशो वा योगो योऽरिं प्रबाधते।
तद् वै शस्त्रं शस्त्रविदां न शस्त्रं छेदनं स्मृतम्।। सभा 55/9

गुप्त या प्रकट जो युक्ति शत्रु को संकट में पहुँचा दे वही शस्त्र के जानकार का हथियार होता है केवल काटने वाला हथियार ही शस्त्र नहीं होता।

शत्रुश्चैव हि मित्रं च न लेख्यं न च मातृका।
यो वै संतापयति यं स शत्रुः प्रोच्यते नृप।। सभा 55/10

महाराज! यह व्यक्ति मित्र है और शत्रु इसका कोई हिसाब नहीं है, न ही शत्रुता या मित्रता बताने वाले अक्षर ही हैं। इसलिये जो हमें सताता है वही हमारा शत्रु होता है।

द्वावेतौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्।। सभा 55/14

जैसे साँप बिल में बैठे साँप को खा जाता है वैसे ही यह भूमि विरोध न करने वाले राजा को और परदेश न जाने वाले ब्राह्मण को निगल जाती है।

राज्ञां हि चित्तानि परिप्लुतानि सान्त्वं दत्वा मुसलैर्घातयन्ति।।

सभा 64/12

राजाओं के हृदयों में द्वेष भरा रहता है वे मीठी बात बनाकर मूसलों से पिटवाते हैं।

क्लेशैस्तीव्रैर्युज्यमानः सपत्नैः क्षमां कुर्वन् कालमुपासते यः।
संवर्धयन् स्तोकमिवाग्निमात्मवान् स वै भुङ्क्ते पृथिवीमेक एव।।
वन 5/19

जो राजा शत्रुओं से बहुत सताये जाने पर क्षमा का सहारा लेकर अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करता है और मन को वश में रखकर अपनी शक्ति वैसे ही बढ़ाता है जैसे लोग थोड़ी सी आग को घासफूस से बढ़ा लेते हैं। वह अकेला ही सारी पृथ्वी का उपभोग करता है।

सत्यं श्रेष्ठं पाण्डव विप्रलापं तुल्यं चान्नं सह भोज्यं सहायैः।
आत्मा चैषामग्रतो न स्म पूज्य एवं वृत्ति वर्धते भूमिपालः।। वन 5/21

हे पाण्डव! व्यर्थ बात छोड़कर सत्य बोलना ही श्रेष्ठ होता है। अपने सहायक बन्धुओं के साथ बैठकर एक जैसा भोजन करना चाहिये। उनके आगे अपनी बड़ाई नहीं करनी चाहिये। ऐसा व्यवहार करने वाला राजा उन्नति करता है।

मृदुना दारुणं हन्ति मृदुना हन्त्यदारुणम्।
नासाध्यं मृदुना किंचित् तस्मात् तीव्रतरं मृदु।। वन 28/31

साम (मृदु) नीति के द्वारा उग्र स्वभाव के और शान्त स्वभाव के दोनों ही प्रकार के शत्रुओं को नष्ट किया जा सकता है। मृदु उपाय अपना कर सब कुछ किया जा सकता है अतः मृदुतापूर्ण नीति श्रेष्ठ होती है।

धार्मिकान् धर्मकार्येषु अर्थकार्येषु पण्डितान्।
स्त्रीषु क्लीबान् नियुञ्जीत क्रूरान् क्रूरेषु कर्मसु।। वन 150/46

राजा को धर्म सम्बन्धी कामों में धार्मिक व्यक्तियों को तथा अर्थशास्त्र के पण्डितों को आर्थिक कार्यों में लगाना चाहिये। स्त्रियों की देखभाल के लिये नपुंसकों को और क्रूर कामों में क्रूर स्वभाव के पुरुषों को लगाना चाहिये।

मन्त्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वाराणीमानि लक्षयेत्।
अर्थसंततिकामश्च रक्षेदेतानि नित्यशः।। उद्योग 39/36

मदं स्वप्नमविज्ञानमाकारं चात्मसम्भवम्।
दुष्टामात्येषु विश्रम्भं दूताच्चाकुशलादपि।। उद्योग 39/37

बुद्धिमान पुरुष गुप्त मन्त्रणा पता चल जाने के इन छह दरवाजों का जाने। धन

सुरक्षित रखने के लिए इन द्वारों को सदा बन्द रखे। मादक पदार्थों का सेवन, नींद, आवश्यक बातों की जानकारी न होना, अपने चेहरे के हाव-भाव, दुष्ट मन्त्रियों पर विश्वास और मूर्ख दूत पर विश्वास।

हीयमानेन वै सन्धिः पर्येष्टव्यः समेन वा।
विग्रहो वर्धमानेन मतिरेषा बृहस्पतेः।। शल्य 4/43

आचार्य बृहस्पति की यही सलाह है कि जब अपनी शक्ति कम या बराबर की लगे तब शत्रु के साथ सन्धि कर लेनी चाहिये। जब अपना बल और पराक्रम भरपूर हो तभी युद्ध छेड़ना चाहिये।

न जानीते हि यः श्रेयः श्रेयसश्चावमन्यते।
स क्षिप्रं भ्रश्यते राज्यान्न श्रेयोऽनुविन्दते।। शल्य 4/45

जो राजा अपनी भलाई की बात नहीं समझता और श्रेष्ठ पुरुषों का अपमान करता है, वह जल्दी ही राज्य खो बैठता है और उसका भला कभी नहीं होता।

परिश्रान्ते विदीर्णे वा भुञ्जाने वापि शत्रुभिः।। सौप्तिक 1/53
प्रस्थाने वा प्रवेशे वा प्रहर्तव्यं रिपोर्बलम्।
निद्रार्तमर्धरात्रे च तथा नष्टप्रणायकम्।। सौप्तिक 1/54
भिन्नयोधं बलं यच्च द्विधा युक्तं च यद् भवेत्।

शत्रु की सेना के थक जाने पर, तितर-बितर हो जाने पर, भोजन करते समय, कहीं जाते हुए या कहीं प्रवेश करते हुए, आधी रात में सोते समय, सेनापति के मर जाने पर, योद्धाओं में फूट पड़ने पर या दुविधा में पड़ने पर हमला करना चाहिये।

एकाङ्गेनापि सम्भूतः शत्रुर्दुर्गमुपाश्रितः।
सर्वं तापयते देशमपि राज्ञः समृद्धिनः।। शान्ति 58/18

चतुरंगिणी सेना के एक अंग से भी तैयार शत्रु किले में बैठकर समृद्ध राजा के सारे देश को तबाह कर डालता है।

शक्त्यान्नदानं सततं तितिक्षार्जव मार्दवम्।
यथार्हप्रतिपूजा च शस्त्रमेतदनायसम्।। शान्ति 81/21

अपनी सामर्थ्य के अनुसार सदा अन्न देना, सहनशीलता, सरलता, कोमलता और यथायोग्य आदर-सत्कार यही बिना लोहे के हथियार हैं।

न जातु बलवान् भूत्वा दुर्बले विश्वसेत् क्वचित्।
भारुण्डसदृशा ह्येते निपतन्ति प्रमाद्यतः।। शान्ति 93/37

राजा को बलशाली हो जाने पर कमजोर शत्रु का विश्वास नहीं करना चाहिये। कमजोर शत्रु, असावधान राजा पर बाज की तरह झपटते हैं।

बलिना विग्रहो राजन् न कदाचित् प्रशस्यते।
बलिना विग्रहो यस्य कुतो राज्यं कुतः सुखम्।। शान्ति 139/111

राजन्! बलवान के साथ युद्ध छेड़ना कभी भी उचित नहीं होता। बलवान के साथ झगड़ा मोल लेकर राज्य और सुख समाप्त हो जाता है।

सुमन्त्रितं सुविक्रान्तं सुयुद्धं सुपलायितम्।
आपदास्पदकाले तु कुर्वीत न विचारयेत्।। शान्ति 140/12

संकट में राजा को अच्छी तरह विचार-विमर्श, उत्तम पराक्रम, उत्साहपूर्वक युद्ध या सोच समझकर पीछे हटना चाहिये।

वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्ययः।
प्राप्तकालं तु विज्ञाय भिन्द्याद् घटमिवाश्मनि।। शान्ति 140/18

शत्रु को समय बदलने तक अपने कन्धे पर बिठाये रखना चाहिये। अनुकूल समय आते ही शत्रु को पत्थर पर पटक कर घड़े की तरह नष्ट कर देना चाहिये।

कोकिलस्य वराहस्य मेरोः शून्यस्य वेश्मनः।
नटस्य भक्ति मित्रस्य यच्छ्रेयस्तत् समाचरेत्।। शान्ति 140/21

कोयल जैसी मीठी वाणी, सूअर के समान क्रोधभरा आक्रमण, मेरु पर्वत की तरह स्वर्णदान, खाली घर में आश्रय के समान, नट की तरह रिझाना और स्नेही मित्र की तरह हित करना, ये सारे गुण राजा को अपनाने चाहियें।

नात्मच्छिद्रं रिपुर्विद्याद् विद्याच्छिद्रं परस्य तु।
गूहेत् कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद् विवरमात्मनः।। शान्ति 140/24

शत्रु को अपनी कमजोरी नहीं पता चलनी चाहिये किन्तु शत्रु की दुर्बलता जान लेनी चाहिये। राजा को अपने सब अंग कछुए के अंगों की तरह समेट कर रखने चाहियें और अपनी कमजोरी छिपाये रखनी चाहिये।

बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्।
वृकवच्चावलुम्पेत शरवच्च विनिष्पतेत्।। शान्ति 140/25

राजा को बगुले की तरह एकाग्र मन से अपने कामों पर विचार करना चाहिये। उसे शेर के समान पराक्रम करना चाहिये। भेड़िये की तरह शत्रु पर झपट्टा मार कर उसका धन छीन लेना चाहिये और बाण की तरह शत्रु पर टूट पड़ना चाहिये।

कुर्यात् तृणमयं चापं शयीत मृगशायिकाम्।
अन्धः स्यादन्धवेलायां बाधिर्यमपि संश्रयेत्।। शान्ति 140/26

राजा को घासफूस से भी धनुष की डोरी बना लेनी चाहिये। उसे हरिण की तरह चौकन्ना रहकर सोना चाहिये। अवसर के अनुसार अन्धा और बहरा भी बन जाना चाहिये।

देशकालौ समासाद्य विक्रमेत विचक्षणः।
देशकालव्यतीतो हि विक्रमो निष्फलो भवेत्।। शान्ति 140/28

उचित स्थान और उचित अवसर पर बुद्धिमान को अपना पराक्रम दिखाना चाहिये। अनुकूल देश और काल न रहने पर पराक्रम दिखाना व्यर्थ होता है।

दण्डेनोपनतं शत्रुं यो राजा न नियच्छति।
स मृत्युमुपगृह्णाति गर्भमश्वतरी यथा।। शान्ति 140/30

दण्ड के बल से झुकाये हुए शत्रु को जो राजा अपने नियन्त्रण में नहीं रखता वह अपनी मौत को बुला लेता है जैसे खच्चरी गर्भ धारण करके मर जाती है।

आशां कालवतीं कुर्यात् तां च विघ्नेन योजयेत्।
विघ्नं निमित्ततो ब्रुयान्निमित्तं चापि हेतुतः।। शान्ति 140/32

राजा किसी की आशा पूरी करने में देर लगाये। जब आशा पूरी होने का समय आ रहा हो तब उसमें कोई विघ्न डाल दे और उस विघ्न का कारण भी बता दे और उस कारण को युक्ति देकर ठीक भी बता दे।

अनागतं विजानीयाद् यच्छेद् भयमुपस्थितम्।
पुनर्वृद्धिभयात् किंचिदनिवृत्तं निशामयेत्।। शान्ति 140/35

जो संकट नहीं आया है उसे समझे। संकट आ जाने पर उसे दबा देना चाहिये। दबा हुआ संकट फिर सिर उठा सकता है यह समझकर उसे वह संकट सदा के लिये दूर कर देना चाहिये।

प्रत्युपस्थितकालस्य सुखस्य परिवर्जनम्।
अनागतसुखाशा च नैव बुद्धिमतां नयः।। शान्ति 140/36

जो सुख मिलने लगा हो उसे छोड़ देना और भविष्य में मिलने वाले सुख की आशा करना बुद्धिमानों का काम नहीं है।

कर्मणा येन तेनैव मृदुना दारुणेन च।
उद्धरेद् दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत्।। शान्ति 140/38

कठोर या कोमल जिस किसी भी उपाय से अपने को मुसीबत से छुड़ाना चाहिये। इसके बाद ही धर्म पर चलना चाहिये।

ये सपत्नाः सपत्नानां सर्वांस्तानुपसेवयेत्।
आत्मनश्चापि बोद्धव्याश्चारा विनिहताः परैः।। शान्ति 140/39

जो शत्रु के शत्रु हों उनसे मेल-जोल कर लेना चाहिये। शत्रु ने जो जासूस छोड़ रखे हों उनका पता लगाना चाहिये।

पुत्रो वा यदि वा भ्राता पिता वा यदि वा सुहृत्।
अर्थस्य विघ्नं कुर्वाणा हन्तव्या भूतिमिच्छता।। शान्ति 140/47

यदि पुत्र, भाई, पिता और मित्र भी अपने काम में रुकावट डालें तो अपना भला चाहने वाले राजा को इन्हें भी मार डालना चाहिये।

नाच्छित्त्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दारुणम्।
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम्।। शान्ति 140/50

राजा मछुआरे की तरह शत्रु का मर्म भेदे बिना, उसे मारे बिना और क्रूर कर्म किये बिना राज्यश्री को नहीं पा सकता।

नास्ति जात्या रिपुर्नाम मित्रं वापि न विद्यते।
सामर्थ्य योगाज्जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा।। शान्ति 140/51

कोई जन्म से ही शत्रु या मित्र नहीं होता। मतलब से ही शत्रु या मित्र बना करते हैं।

अमित्रं नैव मुञ्चेत वदन्तं करुणान्यपि।
दुःखं तत्र न कर्तव्यं हन्यात् पूर्वापकारिणम्।। शान्ति 140/52

यदि शत्रु गिड़गिड़ा भी रहा हो तो भी उसे छोड़ना नहीं चाहिये। जिसने कोई बुरा किया हो उसे मार डालना चाहिये और दुखी नहीं होना चाहिये।

संग्रहानुग्रहे यत्नः सदा कार्योऽनसूयता।
निग्रहश्चापि यत्नेन कर्तव्यो भूतिमिच्छता।। शान्ति 140/53

ऐश्वर्य की इच्छा वाले राजा को ईर्ष्या छोड़कर लोगों को अपने साथ रखने और उन पर कृपा करने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। उसे शत्रुओं का दमन भी प्रयत्न-पूर्वक करना चाहिये।

निमन्त्रयीत सान्त्वेन सम्मानेन तितिक्षया।
लोकाराधनमित्येतत् कर्तव्यं भूतिमिच्छता।। शान्ति 140/55

अपनी उन्नति चाहने वाले को मीठा बोलकर, सम्मान करके और सहनशील बनकर लोगों को अपने पास बुलाना चाहिये। जनता को प्रसन्न करने का यही उपाय है।

न शुष्कवैरं कुर्वीत बाहुभ्यां न नदीं तरेत्।
अनर्थकमनायुष्यं गोविषाणस्य भक्षणम्।
दन्ताश्च परिमृज्यन्ते रसश्चापि न लभ्यते।। शान्ति 140/56

शत्रु के साथ कभी बिना बात के सूखा वैर न करे। न ही नदी तैर कर पार करे। बिना मतलब के काम करने से आयु घट जाती है। ऐसे काम गाय का सींग चबाने जैसे ही होते हैं क्योंकि सींग चबाने से दाँत घिस जाते हैं और स्वाद भी नहीं आता।

ऋणशेषमग्निशेषं शत्रुशेषं तथैव च।
पुनः पुनः प्रवर्धन्ते तस्माच्छेषं न धारयेत्।। शान्ति 140/58

यदि ऋण, आग और शत्रु में से कुछ बाकी रह जाता है तो ये तीनों ही बार-बार बढ़ जाते हैं। इसलिये इनमें से किसी को भी नहीं छोड़ना चाहिये।

नासम्यक् कृतकारी स्यादप्रमत्तः सदा भवेत्।
कण्टकोऽपि हि दुश्छिन्नो विकारं कुरुते चिरम्।। शान्ति 140/60

कोई भी काम अच्छी तरह पूरा किये बिना नहीं छोड़ना चाहिये। सदा सजग रहना चाहिये क्योंकि काँटे का थोड़ा-सा भाग भी शरीर में घाव कर देता है।

गृध्रदृष्टिर्बकालीनः श्वचेष्टः सिंहविक्रमः।
अनुद्विग्नः काकशङ्की भुजङ्गचरितं चरेत्।। शान्ति 140/62

राजा, गीध की तरह दूरदर्शी बने, बगुले की तरह मन एकाग्र रखे, कुत्ते की तरह सावधान रहे, सिंह के समान पराक्रमी हो, घबराये नहीं, कौए की तरह चौकन्ना रहे और सांप की तरह बिना डंसे फुफकारता रहे।

शूरमञ्जलिपातेन भीरुं भेदेन भेदयेत्।
लुब्धमर्थप्रदानेन समं तुल्येन विग्रहः।। शान्ति 140/63

राजा बलवान को वश में करने के लिये हाथ जोड़े। डरपोक को भय दिखाकर फोड़े, लोभी को पैसा देकर काबू में करे और बराबर वाले के साथ लड़े।

मृदुरित्यवजानन्ति तीक्ष्ण इत्युद्विजन्ति च।
तीक्ष्णकाले भवेत् तीक्ष्णो मृदुकाले मृदुर्भवेत्।। शान्ति 140/65

ढीले राजा की लोग अनदेखी करते हैं। कठोर राजा से परेशान रहते हैं। इसलिये समय और अवसर को देखकर मृदु और तीक्ष्ण व्यवहार करना चाहिये।

मृदुनैव मृदुं हन्ति मृदुना हन्ति दारुणम्।
नासाध्यं मृदुना किंचित् तस्मात् तीक्ष्णतरो मृदुः।। शान्ति 140/66

मृदु राजा अपने कोमल स्वभाव से कोमल स्वभाव वाले को जीत लेता है। अपने कोमल स्वभाव से वह क्रूर स्वभाव वाले को भी वश में कर लेता है। कोमल स्वभाव वाले के लिये कोई भी काम कठिन या असाध्य नहीं होता। इसलिये मृदु व्यवहार सबसे अधिक तीक्ष्ण होता है।

पण्डितेन विरुद्धः सन् दूरोऽस्मीति नाश्वासेत्।
दीर्घो बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः।। शान्ति 140/68

विद्वान व्यक्ति से विरोध करके यह नहीं समझ बैठना चाहिये कि मैं उससे दूर हूँ। बुद्धिमान् मनुष्य के हाथ बड़े लम्बे होते हैं। यदि उसे मारा जाता है तो वह भी मार डालता है।

न तत् तरेद् यस्य न पारमुत्तरेन्न तद्धरेत् यत् पुनराहरेत् परः।
न तत् खनेद् यस्य न मूलमुद्धरेन्न हन्याद् यस्य शिरो न पातयेत।।
शान्ति 140/69

ऐसी नदी में नहीं तैरना चाहिये जिसे पार न किया जा सके। वह धन या वस्तु नहीं लेनी चाहिये जिसे शत्रु फिर छीन ले। ऐसे वृक्ष या शत्रु को नष्ट करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये जिसे जड़ सहित उखाड़ा न जा सके। उस वीर पुरुष पर चोट नहीं करनी चाहिये जिसका सिर न काटा जा सके।

राजा

अतिभीरुमतिक्लीबं दीर्घसूत्रं प्रमादिनम्।
व्यसनाद् विषयाक्रान्तं न भजन्ति नृपं प्रजाः।। वन 251/5

अत्यधिक डरपोक, बहुत कायर, देर से काम करने वाले, आलसी, दुर्व्यसनी और विषय भोगों में फंसे हुए राजा को प्रजा स्वीकार नहीं करती।

अकामात्मा समवृत्तिः प्रजासु नाधार्मिकाननुरुध्येत कामान्।।

उद्योग 29/27

राजा काम भोगों में आसक्त न रहे। वह प्रजा के साथ भेदभाव का बर्ताव न करे और अधार्मिक (पापपूर्ण) इच्छाओं को कभी पूरा न करे।

यदा गृध्येत् परभूतौ नृशंसो विधिप्रकोपाद् बलमाददानः।
ततो राज्ञामभवद् युद्धमेतत् तत्र जात वर्म शस्त्रं धनुश्च।। उद्यो 29/29

जब राजा क्रूरता से और लोभ से दूसरों की सम्पत्ति हड़पना चाहता है और विधाता के कोप से सेना जमा करने लगता है तब राजाओं के बीच युद्ध छिड़ जाता है। युद्ध के लिये हथियार, कवच और धनुष बनाये जाते हैं।

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः।। उद्योग 34/21

जिस राजा की प्रसन्नता और क्रोध का कोई परिणाम नहीं होता ऐसे राजा को लोग नहीं चाहते जैसे स्त्रियाँ नपुंसक पुरुष को पति नहीं बनाना चाहतीं।

सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद् दुरारुहः।
अपक्वः पक्वसंकाशो न तु शीर्येत कर्हिचित्।। उद्योग 34/24

राजा को पेड़ की तरह फूल वाला (प्रसन्न) रहना चाहिये किन्तु फल वाला (अधिक देने वाला) नहीं होना चाहिये। यदि वह फल वाला हो तो भी वृक्ष की भाँति उस पर चढ़ना कठिन होना चाहिये, वह सबकी पहुँच में न रहे। राजा को कच्चे फल (शक्ति कम होने पर भी) की भाँति पका हुआ (शक्ति सम्पन्न) दीखना चाहिये। ऐसा व्यवहार करने से राजा नष्ट नहीं होता।

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति।। उद्योग 34/25

जो राजा, मन, वचन, कर्म और दृष्टि से प्रजा को प्रसन्न रखता है उसे ही प्रजा चाहती है।

यस्मात् त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव।
सागरान्तामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते।। उद्योग 34/26

जिस राजा से प्रजा वैसे ही डरती है जैसे शिकारी से हरिण। समुद्र तक की पृथ्वी का राज्य पा जाने वाले ऐसे राजा को प्रजा छोड़ देती है।

पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा।
वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः।। उद्योग 34/27

जैसे वायु, बादलों को छितरा देती है वैसे ही अन्यायी राजा बाप-दादों से प्राप्त राज्य को नष्ट कर देता है।

धर्ममाचरतो राजा सद्भिश्चरितमादितः।
वसुधा वसुसम्पूर्णा वर्धते भूतवर्धिनी।। उद्योग 34/28

जिस रास्ते पर सज्जन पहिले से चलते आ रहे हैं उस धर्म के रास्ते पर चलने वाले राजा के लिये पृथ्वी धन धान्य से पूर्ण होकर उसका ऐश्वर्य बढ़ाती है।

स एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने।
स एव यत्नः कर्त्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने।। उद्योग 34/30

पराये राष्ट्र को नष्ट करने में जितना प्रयत्न किया जाता है यदि उतना ही प्रयत्न अपने राष्ट्र को बनाने में किया जाये तो बहुत अच्छी बात है।

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत्।
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते।। उद्योग 34/31

राजा धर्म से ही राज्य प्राप्त करे और धर्मपूर्वक उसका पालन करे। धर्म से प्राप्त लक्ष्मी राजा को नहीं छोड़ती और न ही कम होती है।

इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे।। उद्योग 34/37

जो राजा अधिक बलशाली के सामने झुक जाता है वह मानो इन्द्र को प्रणाम करता है।

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्।
इति ते संशयो मा भूद् राजा कालस्य कारणम्।। उद्योग 132/16

राजा का कारण काल है या राजा, काल का कारण है? इसके बारे में सन्देह नहीं होना चाहिये क्योंकि राजा ही काल को बनाता या बिगाड़ता है।

दानेनान्यं बलेनान्यं तथा सूनृतया परम्।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद् राज्यं प्राप्येह धार्मिकः।। उद्योग 132/29

धर्मात्मा पुरुष राज्य पाकर किसी को दान देकर, किसी की बल से रक्षा करके और किसी से मीठा बोलकर सभी को सन्तुष्ट करे।

कुनृपस्य द्राव्यते राष्ट्रं दुर्भिक्ष व्याधितस्करैः।। द्रोण 95/25

दुष्ट राजा का देश अकाल, रोगों और चोर डाकुओं के कारण उजड़ जाता है।

सर्वत्र सन्ति राजानः स्वं स्वं धर्ममनुव्रताः।
दुर्मनुष्यान् निगृह्णन्ति सन्ति सर्वत्र धार्मिकाः।। कर्ण 45/45

अपने धर्म का पालन करने वाले राजा सभी जगह हैं जो बुरे लोगों पर नियंत्रण रखते हैं। सभी जगह धर्म का पालन करने वाले लोग भी हैं।

यादृशो जायते राजा तादृशोऽस्य जनो भवेत्।। स्त्री 8/32

जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा और कर्मचारी हो जाते हैं।

अधर्मो धर्मतां याति स्वामी चेद् धार्मिको भवेत्।
स्वामिनो गुणदोषाभ्यां भृत्याः स्युर्नात्र संशयः।। स्त्री 8/33

यदि राजा धर्म का पालन करता है तो धर्म का पालन न करने वाले भी धर्म पर चलने लगते हैं। अपने राजा या मालिक की अच्छी और बुरी आदतों के अनुसार ही उसके नौकर चाक़रों का व्यवहार हो जाता है।

राजा हि यः स्थिरप्रज्ञः स्वयं दोषानवेक्षते।
देशकालविभागं च परं श्रेयः स विन्दति।। स्त्री 13/6

जिस राजा की बुद्धि चंचल नहीं है। जो अपने दोषों को देखता है और देश काल की अनुकूलता और प्रतिकूलता को समझता है उसका अत्यधिक कल्याण होता है।

राज्ञः प्रमाददोषेण दस्युभिः परिमुष्यताम्।
अशरण्यः प्रजानां यः स राजा कलिरुच्यते।। शान्ति 12/29

राजा की असावधानी से जब प्रजा को चोर डाकू लूटने और सताने लगते हैं और प्रजा को राजा की शरण नहीं मिलती, ऐसा राजा कलियुग ही होता है।

यो हि राज्ये स्थितः शश्वद् वशी तुल्यप्रियाप्रियः।। शान्ति 21/13

क्षत्रियो यज्ञशिष्टाशी राजा शास्त्रार्थतत्त्ववित्।
असाधुनिग्रहरतः साधूनां प्रग्रहे रतः।। शान्ति 21/14

धर्मवर्त्मनि संस्थाप्य प्रजा वर्तेत धर्मतः।
पुत्रसंक्रामितश्रीश्च वने वन्येन वर्तयन्।। शान्ति 21/15

जो राजा राज्यसिंहासन पर बैठकर अपनी इन्द्रियों पर सदा नियन्त्रण रखता है, प्रिय और अप्रिय दोनों ही तरह की प्रजा से समान व्यवहार करता है, यज्ञशेष का भोजन करता है, शास्त्रों का मर्म समझता है, दुष्टों का दमन और सज्जनों का पालन करता है, प्रजा को धर्म के मार्ग पर चलाकर अपने आप भी धर्म का पालन करता है, बूढ़ा होने पर पुत्र को राज्यलक्ष्मी सौंपकर वन में रहकर सात्विक जीवन बिताता है वही राजा धार्मिक होता है।

कामक्रोधावनदृत्य पितेव समदर्शनः।
शास्त्रजां बुद्धिमास्थाय युज्यते नैनसा हि सः।। शान्ति 24/14

जो राजा काम और क्रोध की परवाह न करके पिता की तरह सारी प्रजा पर समान भाव रखकर शास्त्रों के अनुसार राज्य करता है उसे पाप नहीं लगता।

तरसा बुद्धिपूर्वं वा निग्राह्या एव शत्रवः।
पापैः सह न संदध्याद् राज्यं पण्यं न कारयेत्।। शान्ति 24/16

राजा को अपने शत्रुओं को बल से या बुद्धि से अपने वश में कर लेना चाहिये उसे पापी और दुष्ट लोगों के साथ कभी मेल नहीं करना चाहिये और राज्य की सौदेबाजी नहीं करनी चाहिये।

शूराश्चार्याश्च सत्कार्या विद्वांसश्च युधिष्ठिर।
गोमिनो धनिनश्चैव परिपाल्या विशेषतः।। शान्ति 24/17

युधिष्ठिर! राजा को वीरों, श्रेष्ठ पुरुषों और विद्वानों को विशेष रूप से सम्मानित करना चाहिये। उसे गायें पालने वाले धनवानों की रक्षा करनी चाहिये।

गुणवाञ्शीलवान् दान्तो मृदुर्धर्म्यो जितेन्द्रियः।
सुदर्शः स्थूललक्ष्यश्च न भ्रश्यते सदा श्रियः।। शान्ति 56/19

जो राजा गुणवान, चरित्रवान, शान्त, कोमलस्वभाव वाला, धर्म का पालन करने वाला, इन्द्रियों को वश में रखने वाला, प्रसन्न मुख और उदार होता है उसके पास राज्य लक्ष्मी सदा रहती है।

लोकरञ्जनमेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः।
सत्यस्य रक्षणं चैव व्यवहारस्य चार्जवम्।। शान्ति 57/11

राजाओं का सनातन धर्म यही है, कि वे प्रजा को प्रसन्न रखें, सत्य की रक्षा करें और सरल व्यवहार करें।

वृजिनं च नरेन्द्राणां नान्यच्चारक्षणात् परम्।। शान्ति 57/14

प्रजा की रक्षा न करने से बढ़कर राजाओं के लिये कोई दूसरा पाप नहीं है।

यः सत्करोति ज्ञानानि ज्ञेये परहिते रतः।
सतां वर्त्मानुगस्त्यागी स राजा राज्यमर्हति।। शान्ति 57/38

जो विद्वानों का सम्मान करता है। शास्त्रों की बातें जानता है। परोपकार में लगा रहता है, सज्जनों के रास्ते पर चलता है, स्वार्थ का त्याग करता है, वही राजा राज्य पाने का अधिकारी होता है।

उत्थानहीनो राजा हि बुद्धिमानपि नित्यशः।
प्रधर्षणीयः शत्रूणां भुजङ्ग इव निर्विषः।। शान्ति 58/16

पुरुषार्थ न करने वाले बुद्धिमान राजा को भी शत्रु दबा देते हैं जैसे विषरहित सांप को मनुष्य पकड़ लेते हैं।

दम्भनार्थं च लोकस्य धर्मिष्ठामाचरेत् क्रियाम्।। शान्ति 58/20

लोगों में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये राजा को दिखावे के लिये धार्मिक अनुष्ठान करते रहना चाहिये।

गोप्ता तस्माद् दुराधर्षः स्मितपूर्वाभिभाषिता।
आभाषितश्च मधुरं प्रत्याभाषेत मानवान्।। शान्ति 67/38

प्रजा की सहायता पाकर राजा बलवान बन जाता है और प्रजा की रक्षा कर सकता है। राजा को मुस्कुरा कर बात करनी चाहिये। यदि लोग उससे कुछ पूछें तो उसे मीठी वाणी से उत्तर देना चाहिये।

कृतज्ञो दृढभक्तिः स्यात् संविभागी जितेन्द्रियः।
ईक्षितः प्रतिवीक्षेत मृदु वल्गु च सुष्ठु च।। शान्ति 67/39

राजा को उपकार करने वालों के प्रति कृतज्ञ रहना चाहिये। उसे अपने समर्थकों से खूब स्नेह करना चाहिये। उसे भोग्य पदार्थों को बांटकर इस्तेमाल करना चाहिये। उसे अपनी इन्द्रियों को वश में रखना चाहिये। जो व्यक्ति उसकी ओर देखे राजा को भी उसे देखना चाहिये। राजा का स्वभाव कोमल, मधुर और सरल होना चाहिये।

राज्ञः परैः परिभवः सर्वेषामसुखावहः।। शान्ति 67/36

यदि शत्रुओं द्वारा राजा की हार होती है तो उससे सभी को बुरा लगता है।

राजमूलो महाप्राज्ञ धर्मो लोकस्य लक्ष्यते।
प्रजा राजभयादेव न खादन्ति परस्परम्।। शान्ति 68/8

जगत में जो धर्म देखा जाता है उसका प्रधान कारण राजा ही है। राजा के डर से ही लोग एक दूसरे को नहीं खा जाते।

यदा ह्यासीदतः पापान् दहत्युग्रेण तेजसा।
मिथ्योपचरितो राजा तदा भवति पावकः।। शान्ति 68/42

जब राजा छल-कपट करने वाले पापी पुरुषों को अपने उग्र तेज से नष्ट कर डालता है तब वह अग्नि बन जाता है।

यदा पश्यति चारेण सर्वभूतानि भूमिपः।
क्षेमं च कृत्वा व्रजति तदा भवति भास्करः।। शान्ति 68/43

जब राजा अपने गुप्तचरों के द्वारा सारी प्रजा की देखभाल करता है और प्रजा का कल्याण करता है तब वह सूर्य होता है।

अशुचींश्च यदा क्रुद्धः क्षिणोति शतशो नरान्।
सपुत्रपौत्रान् सामात्यांस्तदा भवति सोऽन्तकः।। शान्ति 68/44

जब राजा कुपित होकर, गलत आचरण करने वाले सैकड़ों मनुष्यों को उनके पुत्र, पौत्रों और मन्त्रियों सहित नष्ट कर देता है तो वह मृत्यु बन जाता है।

यदा त्वधार्मिकान् सर्वांस्तीक्ष्णैर्दण्डै र्नियच्छति।
धार्मिकांश्चानुगृह्णाति भवत्यथ यमस्तदा।। शान्ति 68/45

जब राजा कठोर दण्ड देकर अधार्मिक पुरुषों को सन्मार्ग पर लाता है और धार्मिक पुरुषों पर कृपा करता है तब वह यम होता है।

यदा तु धनधाराभिस्तर्पयत्युपकारिणः।
आच्छिनत्ति च रत्नानि विविधान्यपकारिणाम्।। शा० 68/46

श्रियं ददाति कस्मैचित् कस्माच्चिदपकर्षति।
तदा वैश्रवणो राजा लोके भवति भूमिपः।। शान्ति 68/47

जब राजा उपकार करने वालों को धन देकर तृप्त करता है और बुरा करने

वालों की सम्पत्ति छीन लेता है। किसी हितैषी को धन देता है और किसी (राज्यविद्रोही) का धन छीन लेता है। तब वह कुबेर कहलाता है।

नास्यापवादे स्थातव्यं दक्षेणाक्लिष्टकर्मणा।
धर्म्यमाकाङ्क्षता लोकमीश्वरस्यानसूयता।। शान्ति 68/48

जो व्यक्ति होशियार हो, अपने काम आसानी से कर लेता हो, धर्म पर चलता हो और ईर्ष्या न करता हो उसे राजा की निन्दा नहीं करनी चाहिये।

न हि राज्ञः प्रतीपानि कुर्वन् सुखमवाप्नुयात्।
पुत्रो भ्राता वयस्यो वा यद्यप्यात्मसमो भवेत्।। शान्ति 68/49

राजा से उल्य चलने वाले को सुख नहीं मिल सकता, चाहे वह राजा का पुत्र, भाई, मित्र या राजा के बराबर ही क्यों न हो।

राजन् प्रतिग्रहो राज्ञां मध्वासादो विषोपमः।। अनु 93/31

राजन्! राजा का दिया हुआ दान ऊपर से मीठा लगता है किन्तु इसका परिणाम विष के समान होता है।

कुर्यात् कृष्णगतिः शेषं ज्वलितोऽनिलसारथिः।
न तु राजाभिपन्नस्य शेषं क्वचन विद्यते।। शान्ति 68/50

वायु की सहायता से लगी आग किसी जंगल या गाँव का कुछ भाग शायद छोड़ भी दे किन्तु राजा जिससे नाराज हो जाता है उस का कुछ नहीं बचता।

तस्माद् बुभूषुर्नियतो जितात्मा नियतेन्द्रियः।
मेधावी स्मृतिमान् दक्षः संश्रये महीपतिम्।। शान्ति 68/55

इसलिये अपनी उन्नति चाहने वाला मेधावी, स्मरण शक्ति वाला, चतुर, अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखने वाला राज्याश्रय ले।

आर्जवेन च सम्पन्नो धृत्या बुद्ध्या च भारत।
यथार्थं प्रतिगृह्णीयात् कामक्रोधौ च वर्जयेत्।। शान्ति 71/6

भरतनन्दन! राजा का स्वभाव सरल होना चाहिये। धैर्य और बुद्धि के द्वारा राजा सत्य को अपनाये तथा काम और क्रोध के वश में कभी न हो।

मालाकारोपमो राजन् भव माऽऽङ्गारिकोपमः।। शान्ति 71/20

राजन्! तुम्हें माली की तरह प्रजारूपी बाग की रक्षा करनी चाहिये कोयला बनाने वाले की तरह राज्य और प्रजा को नष्ट नहीं करना चाहिये।

एष एव परो धर्मो यद् राजा रक्षति प्रजाः।। शान्ति 71/26

प्रजा की रक्षा करना ही राजा का सबसे बड़ा धर्म है।

इन्द्रो राजा यमो राजा धर्मो राजा तथैव च।
राजा विभर्ति रूपाणि राज्ञा सर्वमिदं धृतम्।। शान्ति 72/25

राजा इन्द्र है, राजा यम है और राजा धर्म भी है। राजा अनेक रूप धारण करता है। राजा ने ही सारे जगत् को सम्हाल रखा है।

दानशीलो भवेद् राजा यज्ञशीलश्च भारत।
उपवास तपः शीलः प्रजानां पालने रतः।। शान्ति 75/2

राजा को दानी, तपस्वी, यज्ञ और उपवास करने वाला होना चाहिये। उसे प्रजा पालन में लगे रहना चाहिये।

राज्ञा हि पूजितो धर्मस्ततः सर्वत्र पूज्यते।
यद् यदाचरते राजा तत् प्रजानां स्म रोचते।। शान्ति 75/4

राजा-जिस धर्म का आदर करता है उस धर्म का सब जगह आदर किया जाने लगता है। राजा जो–जो काम करता है वही काम करना प्रजा को अच्छा लगता है।

न हि कामत्मना राज्ञा सततं कामबुद्धिना।
नृशंसेनातिलुब्धेन शक्यं पालयितुं प्रजाः।। शान्ति 75/14

जो राजा कामवासना से आसक्त होकर सदा काम का ही चिन्तन करता रहता है और क्रूर तथा लोभी होता है वह प्रजा का पालन नहीं कर सकता।

यः कश्चिज्जनयेदर्थं राज्ञा रक्ष्यः सदा नरः।। शान्ति 82/1

जो कोई मनुष्य सम्पत्ति पैदा करता है राजा को उसकी रक्षा सदा करनी चाहिये।

राजैव कर्ता भूतानां राजैव च विनाशकः।
धर्मात्मा यः स कर्ता स्यादधर्मात्मा विनाशकः।। शान्ति 91/9

राजा ही प्राणियों को बनाने वाला या नष्ट करने वाला होता है। धार्मिक राजा प्राणियों का भला करता है। अधार्मिक राजा प्रजा को नष्ट कर देता है।

नापत्रपेत प्रश्नेषु नाविभाव्यां गिरं सृजेत्।
न त्वरेत न चासूयेत् तथा संगृह्यते परः।। शान्ति 93/10

यदि कोई प्रश्न पूछे तो उसका उत्तर देने में संकोच नहीं करना चाहिये। सोचे समझे बिना कोई बात नहीं कहनी चाहिये। जल्दबाजी नही करनी चाहिये। किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिये। ऐसे बर्ताव से पराये लोग भी या शत्रु भी अपने हो जाते हैं।

यस्तु निःश्रेयसं श्रुत्वा ज्ञानं तत् प्रतिपद्यते।
आत्मनो मतमुत्सृज्य तं लोकोऽनुविधीयते।। शान्ति 93/28

जो राजा कल्याणकारी बात सुनकर अपने मत का आग्रह छोड़कर अच्छी बात मान लेता है उसके पीछे सारी प्रजा चलती है।

यदार्यजनविद्विष्टं कर्म तन्नाचरेद् बुधः।
यत् कल्याणमभिध्यायेत् तत्रात्मानं नियोजयेत्।। शान्ति 94/10

जिस काम को भले लोग बुरा समझते हों बुद्धिमान राजा वह काम न करे। राजा जिस काम को कल्याणकारी समझे उसी में अपनी शक्ति लगाये।

निग्रहेण च पापानां साधूनां संग्रहेण च।
यज्ञैर्दानैश्च राजानो भवन्ति शुचयोऽमलाः।। शान्ति 97/3

पापियों को वश में करके और सज्जनों को अपनाकर तथा यज्ञों का अनुष्ठान और दान करके राजा निर्मल और शुद्ध हो जाते हैं।

यो भूतानि धनाक्रान्त्या वधात् क्लेशाच्च रक्षति।
दस्युभ्यः प्राणदानात् स धनदः सुखदो विराट्।। शान्ति 97/8

जो राजा सारी प्रजा के धन और प्राणों की रक्षा करता है। दुःखों से बचाता है। लुटेरों से बचाकर जीवन दान करता है। सुख और धन देने वाला ऐसा राजा परमेश्वर ही होता है।

यस्य नार्तो जनपदः सन्निकर्षगतः सदा।
अक्षुद्रः सत्पथालम्बी स राजा राज्यभाग्भवेत्।। शान्ति 115/19

जिस राजा का देश दुःखी न हो। जो राजा, प्रजा के सदा पास रहता हो। जो ओछे स्वभाव का न हो और सन्मार्ग पर चलता हो वह राजा राज्यश्री का सुख भोगता है।

आलस्यं चैव निद्रा च व्यसनान्यतिहासिता।
यस्यैतानि न विद्यन्ते तस्यैव सुचिरं मही।। शान्ति 118/26-27 दा० पा०

जिस राजा में आलस्य, नींद, बुरी आदतें नहीं होतीं और जो बहुत हँसी-मजाक नहीं करता वह राजा बहुत देर तक राज्य करता है।

वृद्धसेवी महोत्साहो वर्णानां चैव रक्षिता।
धर्मचर्या सदा यस्य तस्येयं सुचिरं मही।। शान्ति 118/26-27 दा० पा०

जो राजा बड़े बूढ़ों की सेवा करने वाला, महान् उत्साह से युक्त, चारों वर्णों का रक्षक और धार्मिक होता है वह देर तक शासन करता रहता है।

अमोधक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्यान्ववेक्षितुः।
आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुदैव वसुन्धरा।। शान्ति 120/30

जिस राजा के क्रोध और प्रसन्नता निष्फल नहीं होते। जो स्वयं सारे कामों की देखभाल करता है तथा आत्मविश्वास ही जिसका खजाना है उस राजा के लिये यह पृथ्वी धन देने वाली बन जाती है।

संचयान्न विसर्गी स्याद् राजा शास्त्रविदात्मवान्।। शा० 120/35

शास्त्रज्ञ और मनस्वी राजा को खजाने के धन को खर्च नहीं करना चाहिये।

राज्ञः कोशबलं मूलं कोशमूलं पुनर्बलम्।
तन्मूलं सर्व धर्माणां धर्ममूलाः पुनः प्रजाः।। शान्ति 130/35

राजा का आधार सेना और पैसा होता है। सेना का आधार धन ही होता है। सेना सभी धर्मों की रक्षा करने का मूल कारण होती है और धर्म प्रजा का आधार होता है।

श्रियो हि कारणाद् राजा सत्क्रियां लभते पराम्।
सास्य गूहति पापानि वासो गुह्यमिव स्त्रियाः।। शान्ति 133/7

राजा अपनी लक्ष्मी के कारण ही दूसरों से अत्यधिक आदर पाता है। लक्ष्मी राजा के दोषों को छिपाये रखती है जैसे कपड़े स्त्री के गुप्त अंगों को।

धर्माधर्मफले जातु ददर्शेह न कश्चन।
बुभूषेद् बलमेवैतत् सर्वं बलवतो वशे।। शान्ति 134/3

धर्म और अधर्म का फल किसी ने नहीं देखा है इसलिये राजा को बल बढ़ाना चाहिये क्योंकि सारा संसार बलवान के वश में ही है।

यत्र नास्ति बलात्कारः स राजा तीव्रशासनः।
भीरेव नास्ति सम्बन्धो दरिद्रं यो बुभूषते।। शान्ति 139/97

कठोर शासन वाला वही राजा अच्छा होता है जिसके राज्य में बलात्कार नहीं होते। प्रजा को किसी का भय नहीं होता। जो राजा प्रजा के साथ सम्पर्क बनाये रखता है और गरीबों का पालन करता है वह श्रेष्ठ होता है।

भार्या देशोऽथ मित्राणि पुत्रसम्बन्धिबान्धवाः।
एते सर्वे गुणवति धर्मनेत्रे महीपतौ।। शान्ति 139/98

जिस देश का राजा धर्म पर चलने वाला और गुणवान होता है उसके राज्य में स्त्री, मित्र, पुत्र, सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव और देश आदि सभी कुछ अच्छे गुणों से युक्त होते हैं।

अधर्मज्ञस्य विलयं प्रजा गच्छन्ति निग्रहात्।। शान्ति 139/99

जो राजा धर्म को नहीं जानता उसकी प्रजा अत्याचारों के कारण नष्ट हो जाती है।

न रक्षति प्रजाः सम्यग् यः स पार्थिव तस्करः।। शान्ति 139/100

जो राजा प्रजा की भली-भाँति रक्षा नहीं करता वह राजा चोर है।

माता पिता गुरुर्गोप्ता वह्निर्वैश्रवणो यमः।
सप्त राज्ञो गुणानेतान् मनुराह प्रजापतिः।। शान्ति 139/103

प्रजापति मनु ने राजा के सात गुण बताये हैं जिनके अनुसार राजा, प्रजा का माता, पिता, गुरु, रक्षक, अग्नि, कुबेर और यम होता है।

पिता हि राजा राष्ट्रस्य प्रजानां योऽनुकम्पनः।
तस्मिन् मिथ्याविनीतो हि तिर्यग् गच्छति मानवः।। शान्ति 139/104

जो राजा अपने देश की प्रजा पर सदा कृपा करता है वह राजा पिता के समान होता है। ऐसे राजा से कुटिल व्यवहार करने वाला मनुष्य पशु-पक्षी की योनियों में जन्म लेता है।

सम्भावयति मातेव दीनमप्युपपद्यते।
दहत्यग्निरिवानिष्टान् यमेयन्नसतो यमः।। शान्ति 139/105

जो राजा दीन दुखियों का ख्याल रखता है और माता की तरह प्रजा का पालन करता है वह माता के समान होता है। जो विपत्तियों को जला डालता है वह अग्नि के समान होता है। दुष्टों का दमन और नियन्त्रण करने के कारण राजा को यम कहा जाता है।

इष्टेषु विसृजन्नर्थान् कुबेर इव कामदः।
गुरुर्धर्मोपदेशेन गोप्ता च परिपालयन्।। शान्ति 139/106

प्रियजनों को धन देने और उनकी इच्छाएँ पूरी करने के कारण राजा कुबेर कहलाता है। धर्म का उपदेश देने के कारण राजा गुरु होता है और प्रजा की रक्षा करने के कारण गोप्ता कहा जाता है।

यस्तु रञ्जयते राजा पौरजानपदान् गुणैः।
न तस्य भ्रमते राज्यं स्वयं धर्मानुपालनात्।। शान्ति 139/107

जो राजा अपने गुणों से नगर और जनपद के लोगों को प्रसन्न रखता है और स्वयं धर्म का पालन करता है उसका राज्य डांवाडोल नहीं होता।

नित्योद्विग्नाः प्रजा यस्य करभारप्रपीडिताः।
अनर्थैं र्विप्रलुप्यन्ते स गच्छति पराभवम्।। शान्ति 139/109

जिस राजा की प्रजा करों के भार से दबकर सदा परेशान रहती है और प्रजा को तरह तरह की मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं वह राजा नष्ट हो जाता है।

प्रजा यस्य विवर्धन्ते सरसीव महोत्पलम्।
स सर्वफलभाग् राजा स्वर्गलोके महीयते।। शान्ति 1 110

जिस राजा की प्रजा उसी तरह समृद्ध और सुखी होती है जैसे तालाब में कमल बढ़ते हैं। ऐसे राजा को सभी प्रकार के पुण्य कर्मों का फल मिलता है और उसे स्वर्ग लोक में भी आदर मिलता है।

नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः।
अच्छिद्रश्छिद्रदर्शी च परेषां विवरानुगः।। शान्ति 140/7

राजा को दण्ड देने के लिये सदा तैयार रहना चाहिये। उसे सदा अपना पुरुषार्थ प्रकट करना चाहिये। राजा को किसी भी दृष्टि से कमजोर नहीं रहना चाहिये। उसे शत्रु की कमजोरी का पता लगाना चाहिये और शत्रु की दुर्बलता पता लगने पर आक्रमण कर देना चाहिये।

वाङ्मात्रेण विनीतः स्याद् हृदयेन यथा क्षुरः।
श्लक्ष्णपूर्वाभिभाषी च कामक्रोधौ विवर्जयेत्।। शान्ति 140/13

राजा को बातचीत में बहुत विनीत होना चाहिये किन्तु उसका हृदय छुरे जैसा

तीखा होना चाहिये। उसे मुस्कुरा कर पहिले ही बोलना चाहिये। राजा को काम और क्रोध को छोड़ देना चाहिये।

सुकृतेनैव राजानो भूयिष्ठं शासते प्रजाः।। शान्ति 267/25

राजा अपने श्रेष्ठ आचरण से ही दीर्घकाल तक प्रजा पर शासन करते हैं।

श्रेयसः श्रेयसोऽप्येवं वृत्तं लोकोऽनुर्वते।
सदैव हि गुरोर्वृत्तमनुवर्तन्ति मानवाः।। शान्ति 267/26

श्रेष्ठ राजा के सद्व्यवहार का सभी लोग अनुसरण करते हैं। मनुष्य सदा बड़े लोगों के व्यवहार का अनुकरण करते हैं।

आत्मानमसमाधाय समाधित्सति यः परान्।
विषयेष्विन्द्रियवशं मानवाः प्रहसन्ति तम्।। शान्ति 267/27

जो राजा स्वयं विषयों के पीछे पड़कर अपनी इन्द्रियों का दास है और अपने मन पर नियंत्रण नहीं रख पाता है वह यदि दूसरों को सदाचार का उपदेश देता है तो लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं।

आत्मैवादौ नियन्तव्यो दुष्कृतं संनियच्छता।
दण्डयेच्च महादण्डैरपि बन्धूननन्तरान्।। शान्ति 267/29

जो राजा अपराधियों और दुष्टों को नियन्त्रण में रखना चाहता हो, उसे सबसे पहले अपने मन को वश में करना चाहिये। फिर यदि राजा के सगे-सम्बन्धी भी कोई अपराध करें तो उन्हें भी कड़ा दण्ड देना चाहिये।

दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः।
दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः।। अनु 125/9

दस कसाइयों के समान एक तेली, दस तेलियों के समान एक कलवार (शराब बेचने वाला), दस कलवारों के समान एक वेश्या और दस वेश्याओं के समान एक राजा होता है।

राजायत्तं हि यत् सर्वं लोकवृत्तं शुभाशुभम्।
महतस्तपसो देवि फलं राज्यमिति स्मृतम्।। अनु 145 दा० पा०I

संसार का सारा भला-बुरा व्यवहार राजा के ही अधीन होता है। देवि! राज्य बहुत बड़ा तप करने के बाद मिलता है।

आत्मानमेव प्रथमं विनयैरुपपादयेत्।
अनुभृत्यान् प्रजाः पश्चादित्येष विनयक्रमः।। अनु 145 दा० पा०I

राजा को सबसे पहले अपने को अनुशासन में ढालना चाहिये। इसके बाद ही वह राज कर्मचारियों और प्रजा को अनुशासित कर सकता है

पञ्चैव स्ववशे कृत्वा तदर्थान् पञ्च शोषयेत्।
षडुत्सृज्य यथायोगं ज्ञानेन विनयेन च।
शास्त्रचक्षुर्नयपरो भूत्वा भृत्यान् समाहरेत्।। अनु 145 दा० पा०I

पाँचों इन्द्रियों को अपने वश में करके इन इन्द्रियों के पाँचों विषयों को सुखा देना चाहिये। ज्ञान और विनय (आत्मानुशासन) के द्वारा काम, क्रोध, आदि छह दोषों को छोड़ देना चाहिये। शास्त्रीय दृष्टि से और न्यायपरायण होकर सरकारी कर्मचारियों को जुटना चाहिये।

प्रजाकार्यं तु तत्कार्यं प्रजासौख्यं तु तत्सुखम्।
प्रजाप्रियं प्रियं तस्य स्वहितं तु प्रजा हितम्।
प्रजार्थं तस्य सर्वस्वमात्मार्थं न विधीयते।। अनु 145 दा० पा०I

प्रजा का काम ही राजा का काम है। प्रजा का सुख ही राजा का सुख है। प्रजा का प्रिय ही उसका प्रिय है। प्रजा की भलाई में ही राजा की भलाई है। प्रजा के लिये ही राजा का सर्वस्व है अपने लिये कुछ भी नहीं है।

राजा राष्ट्रहितापेक्षं सत्यधर्माणि कारयेत्।। अनु 145 दा० पा०I

राजा को राष्ट्र का भला ध्यान में रखकर सत्यधर्म का पालन करना कराना चाहिये।

अनाथान् व्याधितान् वृद्धान् स्वदेशे पोषयेन्नृपः।। अनु 145 दा० पा०I

राजा को अपने देश में अनाथों, रोगियों और बूढ़ों का पालन-पोषण करना चाहिये।

व्यसनेभ्यो बलं रक्षेन्नयतो व्ययतोऽपि वा।
प्रायशो वर्जयेद् युद्धं प्राणरक्षणकारणात्।। अनु 145 दा० पा०I

अपनी सेना की संकटों से रक्षा करे। नीति से और पैसा खर्च करके भी युद्ध से प्रायः बचे, क्योंकि युद्ध में जनसंहार होता है।

अभियुक्तो बलवता कुर्यादापद्विधिं नृपः।
अनुनीय तथा सर्वान् प्रजानां हितकारणात्।। अनु 145 दा० पा०I

बलवान शत्रु के आक्रमण कर देने पर राजा को आपत्ति से बचने का उपाय करना चाहिये। प्रजा की भलाई के लिये राजा को विरोधियों को अपने अनुकूल बना लेना चाहिये।

क्षुद्राः पृथिव्यां बहवो राज्ञां बहुविनाशकाः।
तस्मात् प्रमादं सुश्रोणि न कुर्यात् पण्डितो नृपः।। अनु 145 दा० पा०II

सुश्रोणि! इस पृथ्वी पर राजा को नष्ट करने के लिये अनेक ओछे लोग ताक में रहते हैं इसलिये बुद्धिमान राजा को अपनी रक्षा में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

सम्प्रहासश्च भृत्येषु न कर्तव्यो नराधिपैः।
लघुत्वं चैव प्राप्नोति आज्ञा चास्य निवार्यते।। अनु 145 दा० पा०III

राजाओं को सेवकों के साथ हंसी मजाक नहीं करनी चाहिये। इससे राजा, सेवकों की नजरों में गिर जाता है और सेवक उसकी आज्ञा नहीं मानते।

प्रमादाद्धन्यते राजा लोभेन च वशीकृतः।
तस्मात् प्रमादं लोभं च न कुर्यान्न विश्वसेत्।। अनु 145 दा० पा०III

राजा प्रमाद से और लोभ के वश में आकर मारा जाता है। इसलिये प्रमाद और लोभ नहीं करना चाहिये तथा किसी का पूरी तरह विश्वास नहीं करना चाहिये।

अशिष्टशासनं धर्मः शिष्टानां परिपालनम्।। अनु 145 दा० पा०III

दुष्टें को दण्ड देना और सज्जनों की रक्षा करना राजा का धर्म (कर्तव्य) है।

अवध्या ब्राह्मणा गावो दूताश्चैव पिता तथा।
विद्यां ग्राहयते यश्च ये च पूर्वोपकारिणः
स्त्रियश्चैव न हन्तव्या यश्च सर्वातिथिनरः।। अनु० 145 दा० पा० III

ब्राह्मण, गाय, दूत, पिता, गुरु, उपकार करने वाले लोगों, स्त्रियों तथा सभी का अतिथि सत्कार करने वाले मनुष्यों को प्राणदण्ड नहीं देना चाहिये।

पूजार्हा हि नराधिपाः।। आश्व 86/2

राजा पूजनीय होते हैं।

फलभाजो हि राजानः कल्याणस्येतरस्य वा।। आश्रमवास 3/40

राज्य में होने वाले भले-बुरे कामों का फल राजा को ही मिलता है।

एष एव परो धर्मः राजर्षीणां युधिष्ठिर।
समरे वा भवेन्मृत्युर्वने वा विधिपूर्वकम्।। आश्रमवास 4/12

युधिष्ठिर राजर्षियों का यही परम धर्म है कि उनकी मृत्यु युद्ध के मैदान में अथवा वन में शास्त्रों की विधि के अनुसार हो।

रामराज्य

विधवा यस्य विषये नानाथाः काश्चनाभवन्।
सदैवासीत् पितृसमो रामो राज्यं यदन्वशात्।। शान्ति 29/52

राजा राम के राज्य में कोई भी स्त्री विधवा या अनाथ नहीं हुई। वे अपनी प्रजा पर पिता की तरह कृपा करते थे।

कालवर्षी च पर्जन्यः सस्यानि समपादयत्।
नित्यं सुभिक्षमेवासीद् रामे राज्यं प्रशासति।। शान्ति 59/53

बादल समय पर बरसते थे जिससे अच्छी फसल होती थी। राम के राज्य में कभी अकाल नहीं पड़ता था।

प्राणिनो नाप्सु मज्जन्ति नान्यथा पावकोऽदहत्।
रुजाभयं न तत्रासीद् रामे राज्यं प्रशासति।। शान्ति 29/54

राम के राज्य में लोग पानी में नहीं डूबते थे, आग में नहीं जलते थे और प्रजा को रोग नहीं सताते थे।

आसन् वर्षसहस्रिण्यस्तथा वर्षसहस्रकाः।
अरोगाः सर्वसिद्धार्था रामे राज्यं प्रशासति।। शान्ति 29/55

राम राज्य में स्त्री-पुरुषों की आयु एक हजार वर्ष की होती थी। वे नीरोग रहते थे और उनकी सभी मनोकामनाएं पूरी होती थीं।

नान्योऽन्येन विवादोऽभूत् स्त्रीणामपि कुतो नृणाम्।
धर्मनित्याः प्रजाश्चासन् रामे राज्यं प्रशासति।। शान्ति 29/56

स्त्रियों में भी आपस में झगड़ा और कहासुनी नहीं होती थी, फिर पुरुषों का तो कहना ही क्या। सारी प्रजा धर्म का पालन करती थी।

संतुष्टाः सर्वसिद्धार्था निर्भयाः स्वैरचारिणः।
नराः सत्यव्रताश्चासन् रामे राज्यं प्रशासति।। शान्ति 29/57

रामराज्य में पुरुष, सन्तुष्ट, निडर, स्वाधीन और सत्य का पालन करने वाले होते थे। उनकी कोई इच्छा अधूरी नहीं रहती थी।

नित्यपुष्पफलाश्चैव पादपा निरुपद्रवाः।
सर्वा द्रोणदुघा गावो रामे राज्यं प्रशासति।। शान्ति 29/58

राम के राज्य में सारे पेड़ बिना किसी रुकावट के सदा फलते-फूलते रहते थे। गायें एक-एक द्रोण भर दूध देती थीं।

रोग

कर्मजा हि मनुष्याणां रोगा नास्त्यत्र संशयः।। वन 209/14

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्यों को रोग उनके कर्मों से ही होते हैं।

प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः।। वन 216/17

पुरुष को अपने विवेक द्वारा मानसिक दुःख और औषधियों से शारीरिक दुःख रोगादि दूर करने चाहियें।

न मनुष्ये गुणः कश्चिद् राजन् सधनतामृते।
अनातुरत्वाद् भद्रं ते मृतकल्पा हि रोगिणः।। उद्योग 36/67

राजन्! आप का कल्याण हो। मनुष्य में धन और आरोग्य के सिवाय कोई गुण नहीं है। क्योंकि रोगी मनुष्य मुर्दे जैसा ही होता है।

रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते न वै लभन्ते विषयेषु तत्वम्।
दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव न बुध्यन्ते धनभोगान् न सौख्यम्।।
उद्योग 36/69

रोग से दुःखी मनुष्यों को फल अच्छे नहीं लगते। उन्हें विषय भोगों का आनन्द नहीं मिलता। वे सदा दुःखी रहते हैं। वे धन की सुविधाओं और सुखों को नहीं पा सकते।

कष्टो भवेद् व्याधिरिवाक्रियावान्।। कर्ण 17/20

रोग का इलाज न करने पर बीमारी दुःखदायी बन जाती है।

लक्ष्मी

अध्रुवा सर्वमर्त्येषु श्रीरुपालक्ष्यते भृशम्।। शल्य 65/20

किसी भी मनुष्य के पास सम्पत्ति सदा नहीं रहती।

यामेतां प्राप्य जानीषे राज्यश्रियमनुत्तमाम्।
स्थिता मयीति तन्मिथ्या नैषा ह्येकत्र तिष्ठति।। शान्ति 224/58

तुम जिस परम उत्तम राज्य लक्ष्मी को पाकर यह समझ रहे हो कि यह मेरे पास सदा रहेगी तो तुम्हारी यह धारणा झूठी है क्योंकि राज्यलक्ष्मी कहीं एक जगह नहीं रहती।

स्थिता हीन्द्र सहस्त्रेषु त्वद्विशिष्टतमेष्वियम्।
मां च लोला परित्यज्य त्वामागाद् विवुधाधिप।। शान्ति 224/59

देवराज इन्द्र! यह लक्ष्मी तो तुमसे भी श्रेष्ठ हजारों पुरुषों के साथ रह चुकी है। यह चंचला लक्ष्मी मुझे (राजा बलि) भी छोड़कर तुम्हारे पास गयी है।

आहुर्मां दुःसहेत्येवं विधित्सेति च मां विदुः।। शान्ति 225/7
भूतिर्लक्ष्मीति मामाहुः श्रीरित्येव च वासव।

मुझे दुःसहा और विधित्सा भी कहा जाता है। इन्द्र! लोग मुझे भूति, लक्ष्मी और श्री भी कहते हैं।

सत्ये स्थितास्मि दाने च व्रते तपसि चैव हि।
पराक्रमे च धर्मे च पराचीनस्ततो बलिः।। शान्ति 225/12

मैं; सत्य, दान, व्रत, तप, पराक्रम और धर्म में निवास करती हूँ। राजा बलि इन सब गुणों से मुँह मोड़ चुके हैं।

नैव देवो न गन्धर्वो नासुरो न च राक्षसः।
यो मामेको विषहितुं शक्तः कश्चित् पुरन्दर।। शान्ति 225/17

इन्द्र! देवता, गन्धर्व, असुर और राक्षस कोई भी अकेला मेरा भार सहन नहीं कर सकता।

ममेयमिति मोहात् त्वं राज्यश्रियमभीप्ससि।
नेयं तव न चास्माकं न चान्येषां स्थिरा सदा।। शान्ति 227/45

तुम भ्रम के कारण जिस राज्य लक्ष्मी को अपनी मान रहे हो वह न तो तुम्हारी है, न हमारी और न ही दूसरों की है। लक्ष्मी किसी के पास भी सदा नहीं रहती।

अतिक्रम्य बहूनन्यांस्त्वयि तावदियं गता।
कंचित् कालमियं स्थित्वा त्वयि वासव चञ्चला।। शा० 227/46
गौर्निपानमिवोत्सृज्य पुनरन्यं गमिष्यति।

इन्द्र! यह लक्ष्मी बहुत से राजाओं के पास रहकर तुम्हारे पास आई है। तुम्हारे पास कुछ समय तक रहकर यह चंचला लक्ष्मी तुम्हें छोड़कर उसी तरह चली जायेगी जैसे गाय पानी पीकर तालाब आदि छोड़कर चली जाती है।

धर्मनित्ये महाबुद्धौ ब्रह्मण्ये सत्यवादिनि।
प्रश्रिते दानशीले च सदैव निवसाम्यहम्।। शान्ति 228/26

सदा धर्म पर चलने वाले, अत्यन्त बुद्धिमान, ब्राह्मण भक्त, सत्यवादी, विनयशील और दान करने वाले पुरुष में मैं सदा निवास करती हूँ।

स्वधर्ममनुतिष्ठत्सु धैर्यादचलितेषु च।
स्वर्गमार्गाभिरामेषु सत्त्वेषु निरता ह्यहम्।। शान्ति 228/29

अपने धर्म का पालन करने वालों, धैर्य न छोड़ने वालों और स्वर्ग प्राप्त करने के साधनों में लगे रहने वाले पुरुषों के पास मैं सदा निवास करती हूँ।

अद्वैधमनसं युक्तं शूरं धीरं विपश्चितम्।
न श्रीः संत्यज्यते नित्यमादित्यमिव रश्मयः।। शान्ति 298/43

जिसके मन में कोई दुविधा नहीं होती। जो कर्मठ, वीर, धैर्यवान और बुद्धिमान होता है उसे लक्ष्मी उसी प्रकार कभी नहीं छोड़ती जैसे सूर्य को किरणें।

वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने।

अक्रोधने दैवपरे कृतज्ञे जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्वे।। अनुशासन 11/6

देवि! मैं ऐसे पुरुष में सदा निवास करती हूँ जो सौभाग्यशाली, निर्भीक, कार्यकुशल, कर्मठ, क्रोध न करने वाला, देवों की पूजा करने वाला, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय तथा अत्यधिक सात्त्विक वृत्ति वाला होता है।

नाहं शरीरेण वसामि देवि नैवं मया शक्यमिहाभिधातुम्।

भावेन यस्मिन् निवसामि पुंसि स वर्धते धर्मयशोऽर्थकामैः।। अनु 11/21

देवि! मैं किसी पुरुष के साथ शरीर से निवास नहीं करती। मैं सर्वत्र एक ही रूप में भी नहीं रहती। जिस किसी पुरुष में मैं भावना के द्वारा रहती हूँ वह पुरुष धर्म, यश, अर्थ और काम से परिपूर्ण रहता है।

नित्यं निवसते लक्ष्मी कन्यकासु प्रतिष्ठिता।
शोभना शुभयोग्या च पूज्या मङ्गलकर्मषु।। अनु 22 दा० पा०

लक्ष्मी सदा कन्याओं में निवास करती है। कन्या शोभा सम्पन्न, शुभ कर्म करने योग्य तथा मंगलकार्यों में पूजनीय होती है।

एवं कन्या परा लक्ष्मी रतिस्तोषश्च देहिनाम्।
महाकुलानां चारित्रं वृत्तेन निकषोपलम्।। अनु 22 दा० पा०

इस प्रकार कन्या को लक्ष्मी का सर्वोत्कृष्ट रूप मानना चाहिये। कन्या से प्राणियों को सुख और सन्तोष मिलता है। कन्या का सदाचार उच्च कुलों के चरित्र की कसौटी माना जाता है।

श्रिया ह्यभीक्ष्णं संवासो दर्पयेत् सम्प्रमोहयेत्।। अनु 61/20

लक्ष्मी के सदा पास रहने से व्यक्ति में घमण्ड और मोह भर जाता है।

लोभ

सहस्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा।
धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथञ्चिन्न जीव्यते।। उद्योग 39/83

जिनके पास हजारों रुपये हैं वे भी जीते हैं, और सैकड़ों रुपयों वाले भी जीते हैं। धृतराष्ट्र! आप अधिक की इच्छा (लोभ) छोड़ दीजिये नहीं तो आप का जीवन नहीं रहेगा।

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति पश्यन् न मुह्यति।। उद्योग 39/84

इस पृथ्वी पर जितना भी अन्न, सोना, पशु और स्त्रियां हैं वे सब एक मनुष्य के लिये भी काफी नहीं हैं यह सोचकर रहने वाला व्यक्ति मोह में नहीं पड़ता।

कुले जातस्य वृद्धस्य परवित्तेषु गृद्ध्यतः।
लोभः प्रज्ञानमाहन्ति प्रज्ञा हन्ति हता ह्रियम्।। उद्योग 72/18

उत्तम कुल में जन्म लेकर और बूढ़ा होने पर भी यदि मनुष्य दूसरे के धन को लेना चाहता है तो ऐसे लोभ से उसके सोचने समझने की शक्ति नष्ट हो जाती है और विवेक नष्ट होने पर लज्जा भी नष्ट हो जाती है।

ह्रीर्हता बाधते धर्मं धर्मो हन्ति हतः श्रियम्।
श्रीर्हता पुरुषं हन्ति पुरुषस्याधनं वधः।। उद्योग 72/19

नष्ट हुई लज्जा धर्म को नष्ट कर देती है। नष्ट हुआ धर्म सम्पत्ति का नाश कर देता है। धन का नाश पुरुष को नष्ट कर देता है। क्योंकि धन का न होना ही मनुष्य की मृत्यु है।

न लुब्धो बुध्यते दोषाँल्लोभान्मोहात् प्रवर्तते।। द्रोण 51/11

लोभी मनुष्य किसी काम की बुराई नहीं समझ पाता। वह लोभ और मोह के कारण बुरे कामों में फंस जाता है।

एको निवारयामास लोभः सर्वगुणानिव।। द्रोण 99/56

अकेले अर्जुन ने कौरव सेना को वैसे ही रोक दिया जैसे लोभ सारे गुणों को ढक देता है।

लोभो व्याधिरनन्तकः।। वन 313/92

लोभ कभी समाप्त न होने वाला रोग है।

लुब्धं हन्यात् सम्प्रदानेन नित्यं लुब्धस्तृप्तिं परवित्तस्य नैति।
सर्वो लुब्धः कर्मगुणोपभोगे योऽर्थैर्हीनो धर्मकामौ जहाति।।

शान्ति 120/47

लोभी मनुष्य को कुछ देकर वश में रखना चाहिये। लोभी दूसरे के धन से कभी तृप्त नहीं होता। सभी लोग सत्कर्मों से प्राप्त सुख का भोग करने के लिये लालायित रहते हैं किन्तु निर्धन लोभी धर्म और काम को छोड़ देता है।

धनं भोगं पुत्रदारं समृद्धिं सर्वं लुब्धः प्रार्थयते परेषाम्।
लुब्धे दोषाः सम्भवन्तीह सर्वे तस्माद् राजा न प्रगृह्णीत लुब्धम्।।

शान्ति 120/48

लोभी पुरुष दूसरों का धन, ऐश्वर्य, पुत्र, स्त्री और समृद्धि सभी कुछ पाना चाहता है। लालची पुरुष में सारी बुराइयाँ होती हैं अतः राजा को लोभी को कहीं भी नियुक्त नहीं करना चाहिये।

एको लोभो महाग्राहो लोभात् पापं प्रवर्तते।। शान्ति 158/2

लोभ बहुत बड़े मगरमच्छ जैसा है। लोभ के कारण ही मनुष्य पाप करता है।

अतः पापमधर्मश्च तथा दुःखमनुत्तमम्।
निकृत्या मूलमेतद्धि येन पापकृतो जनाः।। शान्ति 158/3

लोभ से ही मनुष्य पाप और अधर्म करता है। लोभ के कारण ही मनुष्य दारुण दुःख भोगता है। लोभ ही छल-कपट का मूल कारण है। लोभ से ही लोग पाप करते हैं।

लोभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रवर्तते।
लोभान्मोहश्च माया च मानः स्तम्भः परासुता।। शान्ति 158/4

लोभ से काम, क्रोध, मोह, माया, अभिमान, उद्दण्डता और पराधीनता आदि बुराइयाँ पैदा होती हैं।

अक्षमा ह्रीपरित्यागः श्रीनाशो धर्मसंक्षयः।
अभिध्या प्रख्यता चैव सर्वं लोभात् प्रवर्तते।। शान्ति 158/5

क्षमा न करना, निर्लज्जता, सम्पत्ति का नाश, धर्म का नाश, चिन्ता और बदनामी ये सब लोभ से ही होते हैं।

अत्यागश्चातितर्षश्च विकर्मसु च याः क्रियाः।
कुल विद्यामदश्चैव रूपैश्वर्यमदस्तथा।। शान्ति 158/6

सर्वभूतेष्वभिद्रोहः सर्वभूतेष्वसत्कृतिः।
सर्वभूतेष्वविश्वासः सर्वभूतेष्वनार्जवम्।। शान्ति 158/7

कंजूसी, अत्यधिक तृष्णा, बुरे कामों में लगाव, अपने कुल, विद्या, सुन्दरता और धन-सम्पत्ति का घमण्ड, सभी प्राणियों से वैर, उनका अपमान, अविश्वास और तिरस्कार भी लोभ के कारण होता है।

हरणं परवित्तानां परदाराभिमर्शनम्।
वाग्वेगो मनसो वेगो निन्दावेगस्तथैव च।। शान्ति 158/8

उपस्थोदरयोर्वेगो मृत्युवेगश्च दारुणः।
ईर्ष्या वेगश्च बलवान् मिथ्यावेगश्च दुर्जयः।। शान्ति 158/9

रसवेगश्च दुर्वार्यः श्रोत्रवेगश्च दुःसहः।

कुत्सा विकत्था मात्सर्यं पापं दुष्करकारिता।। शान्ति 158/10
साहसानां च सर्वेषामकार्याणां क्रियास्तथा।

दूसरों की सम्पत्ति छीन लेना, परायी स्त्रियों से बलात्कार, वाणी का वेग (असंयम), मानसिक वेग (क्रोध आदि), निन्दा का वेग अर्थात् खूब निन्दा करना, पेट और शिश्न का वेग (पेट और जननेन्द्रिय पर असंयम) मृत्यु का भयंकर वेग अर्थात् आत्महत्या, ईर्ष्या का प्रबल वेग, झूठे अभिमान का वेग, रस वेग अर्थात् जिह्वा का चटोरापन, कानों का वेग अर्थात् बुरी बातें सुनना, निन्दा, डींग मारना, जलन, पाप कर्म और किये न जा सकने वाले काम शुरू करना, सभी तरह के गलत और चोरी-डाका-हत्या जैसे साहसिक काम कर बैठना लोभ के कारण ही होता है।

जातौ बाल्ये च कौमारे यौवने चापि मानवाः।
न संत्यजन्त्यात्मकर्म यो न जीर्यति जीर्यतः।। शान्ति 158/11

यो न पूरयितुं शक्यो लोभः प्राप्त्या कुरूद्वह।
नित्यं गम्भीरतोयाभिरापगाभिरिवोदधिः।। शान्ति 158/12

कुरुश्रेष्ठ! जन्म के समय, बचपन में, कुमारावस्था में और यौवन में मनुष्य लोभ के कारण बुरे काम नहीं छोड़ पाते। बुढ़ापे में भी लोभ घटता नहीं। जिस प्रकार समुद्र गहरी नदियों का जल मिल जाने पर भी नहीं भरता वैसे ही लोभ का पेट कभी नहीं भरता।

न प्रहृष्यति यो लाभैः कामैर्यश्च न तृप्यति।। शन्ति 158/13
यो न देवैर्न गन्धर्वैर्नासुरैर्न महोरगैः।
ज्ञायते नृप तत्त्वेन सर्वैर्भूतगणैस्तथा।। शान्ति 158/14

लोभी मनुष्य बहुत लाभ होने पर भी प्रसन्न नहीं होता। उसकी इच्छाएँ कभी पूरी नहीं होतीं। राजन्! देवता, गन्धर्व, असुर और बड़े बड़े नाग तथा सारे भूत संघ भी लोभ का वास्तविक स्वरूप नहीं जान पाते हैं।

दम्भो द्रोहश्च निन्दा च पैशुन्यं मत्सरस्तथा।। शान्ति 158/15
भवन्त्येतानि कौरव्य लुब्धानामकृतात्मनाम्।

कौरवश्रेष्ठ! असंयमी लोभी पुरुषों में अहंकार, द्रोह, निन्दा, चुगली और ईर्ष्या ये सारे अवगुण होते हैं।

सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्ति बहुश्रुताः।। शान्ति 158/16
छेत्तारः संशयानां च क्लिश्यन्तीहाल्पबुद्धयः।

बहुश्रुत अर्थात् अनेक शास्त्रों और विद्याओं को जानने वाले बड़े बड़े ग्रन्थों को भी याद कर लेते हैं और लोगों की शंकाएँ दूर करते हैं किन्तु लोभ में फंसकर उनकी बुद्धि मारी जाती है और वे कष्ट भोगते हैं।

द्वेष क्रोध प्रसक्ताश्च शिष्टाचार बहिष्कृताः।। शान्ति 158/17

अन्तःक्रूरा वाङ्मधुराः कूपाश्छन्नतृणैरिव।
धर्मवैतंसिकाः क्षुद्रा मुष्णन्ति ध्वजिनो जगत् ।। शान्ति 158/18

लोभी मनुष्य द्वेष और क्रोध में फंसकर शिष्ट आचरण छोड़ देते हैं। उनका हृदय कठोर होता है यद्यपि वे मीठा बोलते हैं। वे घास-तिनकों से ढके हुए कुएँ के जैसे होते हैं। धर्म के नाम पर धोखा देने वाले ओछे लोग धर्म के नाम पर ढोंग रचकर संसार को लूटते हैं।

धर्मस्य ह्रियमाणस्य लोभग्रस्तैर्दुरात्मभिः।
या या विक्रियते संस्था ततः सापि प्रपद्यते।। शान्ति 158/20

लोभी दुष्ट मनुष्य धर्म का स्वरूप बिगाड़ देते हैं। वे धार्मिक संस्थाओं को भी भ्रष्ट कर अपने अधिकार में ले लेते हैं।

दर्पः क्रोधो मदः स्वप्नो हर्षः शोकोऽतिमानिता।
एत एव हि कौरव्य दृश्यन्ते लुब्धबुद्धिषु।। शान्ति 158/21

कुरुश्रेष्ठ! लोभी लोगों में अभिमान, क्रोध, अहंकार, दुःस्वप्न, हर्ष, शोक और अत्यधिक घमण्ड ये सारे दोष होते हैं।

अज्ञान प्रभवो लोभो भूतानां दृश्यते सदा।
अस्थिरत्वं च भोगानां दृष्ट्वा ज्ञात्वा निवर्तते।। शान्ति 163/21

प्राणियों में लोभ की प्रवृत्ति अज्ञान के कारण होती है। जब मनुष्य को पता चल जाता है कि सांसारिक भोग नष्ट हो जाते हैं तब उसका लोभ नष्ट हो जाता है।

सुखितो दुःखितो वापि नरो लोभं परित्यजेत्।। शा० 295/24

मनुष्य सुखी हो या दुखी उसे लोभ को छोड़ देना चाहिये।

वर्ण संकर

योनि संकलुषे जातं नानाभावसमन्वितम्।
कर्मभिः सज्जनाचीर्णैर्विज्ञेया योनिशुद्धता।। अनुशासन 48/40

कलुषित योनि से उत्पन्न व्यक्ति ऐसी अनेक चेष्टएं करता है जो सज्जनों के आचार व्यवहार से उल्टी होती हैं। इसलिये वर्ण संकर पुरुष के कामों से ही उसकी पहचान होती है। जो व्यक्ति सज्जनों जैसा आचरण करता है उस से उसकी योनि की शुद्धता जानी जाती है।

अनार्यत्वमनाचारः क्रूरत्वं निष्क्रियात्मता।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम्।। अनु 48/41

संसार में दुष्टता, अनाचार, क्रूरता और काम न करना आदि बुराइयां बता देती हैं कि ऐसा मनुष्य अशुद्ध योनि से उत्पन्न हुआ है।

पित्र्यं वा भजते शीलं मातृजं वा तथोभयम्।
न कथंचन संकीर्णः प्रकृतिं स्वां नियच्छति।। अनुशासन 48/42

वर्ण संकर मनुष्य अपने पिता या माता के अथवा दोनों के ही स्वभाव वाला होता है। वह किसी भी तरह अपना स्वभाव नहीं छिपा सकता।

कुले स्रोतसि संच्छन्ने यस्य स्याद् योनिसंकरः।
संश्रयत्येव तच्छीलं नरोऽल्यमथवा बहु।। अनुशासन 48/44

यद्यपि मनुष्य के कुल और वीर्य गुप्त रहते हैं, उनका पता नहीं चल पाता। फिर भी जिसका जन्म योनि संकर से होता है वह मनुष्य थोड़ा बहुत अपने पिता के स्वभाव वाला होता ही है।

नानावृत्तेषु भूतेषु नानाकर्मरतेषु च।
जन्मवृत्तसमं लोके सुश्लिष्टं न विरज्यते।। अनुशासन 48/46

संसार में लोग तरह तरह के आचार व्यवहार में और तरह तरह के कामों में लगे हुए हैं इसलिये उनके आचरण के सिवाय ऐसी कोई बात नहीं है जो उनके जन्म का रहस्य स्पष्ट से बता सके।

शरीरमिह सत्त्वेन न तस्य परिकृष्यते।
ज्येष्ठमध्यावरं सत्त्वं तुल्यसत्त्वं प्रमोदते।। अनुशासन 48/47

यदि किसी वर्ण संकर व्यक्ति को सद्बुद्धि मिल जाय तो भी वह उसके शरीर को स्वभाव से बदल नहीं सकती। उत्तम, मध्यम या निकृष्ट जिस प्रकार के स्वभाव से उसका शरीर बनता है वैसा ही स्वभाव उसे अच्छा लगता है।

ज्यायांसमपि शीलेन विहीनं नैव पूजयेत्।
अपि शूद्रं च धर्मज्ञं सद्वृत्तमभिपूजयेत्।। अनुशासन 48/48

ऊँची जाति का मनुष्य भी यदि अच्छे आचरण वाला न हो तो उसका सम्मान नहीं करना चाहिये। यदि शूद्र भी धर्मज्ञ और अच्छे आचरण वाला हो तो उसका आदर सत्कार करना चाहिये।

आत्मानमाख्याति हि कर्मभिर्नरः सुशीलचारित्रकुलैः शुभाशुभैः।
प्रणष्टमप्याशु कुलं तथा नरः पुनः प्रकाशं कुरुते स्वकर्मतः।।

अनुशासन 48/49

मनुष्य अपने अच्छे-बुरे कामों, अपने चरित्र और कुल से अपना परिचय दे देता है। यदि उसका कुल नष्ट हो गया हो तो भी वह अपने आचरण और कर्मों से उसे फिर प्रकट कर देता है।

यदीदमेकवर्णं स्याज्जगत् सर्वं विनश्यति।
सहैव देवि वर्णानि चत्वारि विहितान्यतः।। अनु 141/29-30 दा० पा०

हे देवि पार्वती! यदि सारे संसार में एक वर्ण के ही लोग होते तो सारा संसार एक साथ ही नष्ट हो जाता इसलिये विधाता ने चार वर्ण बनाये हैं।

व्रत

शरीरनियमं प्राहुर्ब्राह्मणा मानुषं व्रतम्।
मनोविशुद्धां बुद्धिं च दैवमाहुर्व्रतं द्विजाः।। वन 93/21

ब्राह्मण शारीरिक शुद्धि के नियम को मानुष व्रत बतलाते हैं और मन के द्वारा शुद्ध की हुई बुद्धि को दैव व्रत कहते हैं।

मनो ह्यदुष्टं शौचाय पर्याप्तं वै नराधिप।
मैत्रीं बुद्धिं समास्थाय शुद्धास्तीर्थानि द्रक्ष्यथ।। वन 93/22

राजन्! यदि मन राग-द्वेष से दूषित न हो तो यह शुद्धि के लिये पर्याप्त है। सब के प्रति मैत्री भाव रखकर शुद्ध मन से तीर्थ देखो।

त्रीण्येव तु पदान्याहुः पुरुषस्योत्तमं व्रतम्।
न दुह्येच्चैव दद्याच्च सत्यं चैव परं वदेत्।। अनु 120/10

वेद में मनुष्यों के लिये तीन बातें उत्तम व्रत बतायी गयी हैं कि मनुष्य को

किसी से वैर भाव नहीं रखना चाहिये। उसे दान देते रहना चाहिये और उसे सदा सत्य बोलना चाहिये।

वृक्ष

घनानामपि वृक्षाणामाकाशोऽस्ति न संशयः।
तेषां पुष्पफलव्यक्तिर्नित्यं समुपपद्यते।। शान्ति 184/10

यद्यपि वृक्ष ठोस दीखते हैं फिर भी उनमें आकाश महाभूत का अंश निस्सन्देह है। क्योंकि वृक्षों में आकाश के कारण ही फल-फूल उत्पन्न होते हैं।

ऊष्मतो म्लायते पर्णं त्वक् फलं पुष्पमेव च।
म्लायते शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते।। शान्ति 184/11

वृक्षों में जो गर्मी है उसी के कारण उनके पत्ते, फूल, फल और छाल मुरझाते हैं और कुम्हला कर झड़ जाते हैं। इसलिये वृक्षों में स्पर्श का गुण भी है।

वाय्वग्न्यशनिनिर्घोषैः फलं पुष्पं विशीर्यते।
श्रोत्रेण गृह्यते शब्दस्तस्माच्छृण्वन्ति पादपाः।। शान्ति 184/12

वायु, अग्नि और बिजली की कड़क से वृक्षों के फूल और फल झड़ जाते हैं। शब्द, कान से सुना जाता है इसलिये पेड़ शब्द सुनते हैं।

वल्ली वेष्टयते वृक्षं सर्वतश्चैव गच्छति।
न ह्यदृष्टेश्च मार्गोऽस्ति तस्मात् पश्यन्ति पादपाः।। शान्ति 184/13

बेल, पेड़ पर लिपट जाती है और पेड़ के हर भाग पर पहुँच जाती है। बिना देखे कोई अपना रास्ता नहीं जान सकता इसलिये लताएँ और वृक्ष देखते भी हैं।

पुण्यापुण्यैस्तथा गन्धैर्धूपैश्च विविधैरपि।
अरोगाः पुष्पिताः सन्ति तस्माज्जिघ्रन्ति पादपाः।। शान्ति 184/14

पवित्र और दूषित गन्ध का असर पेड़ों पर पड़ता है। तरह तरह की धूपों की गन्ध से वृक्ष नीरोग होकर फूलने फलने लगते हैं इसलिये पेड़ सूंघते हैं।

पादैः सलिलपानाच्च व्याधीनां चापि दर्शनात्।
व्याधिप्रतिक्रियात्वाच्च विद्यते रसनं द्रुमे।। शान्ति 184/15

वृक्ष जड़ों से जल पीते हैं। उन्हें बीमारी भी होती हैं। वृक्षों के रोगों का इलाज उनकी जड़ों में दवा डालकर किया जाता है। इसलिये वृक्षों में जिह्वा या रसना इन्द्रिय है।

वक्त्रेणोत्पलनालेन यथोर्ध्वं जलमाददेत्।
तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिबति पादपः।। शान्ति 184/16

जैसे मनुष्य कमल की नाल से पानी सांस से खींच कर पीते हैं वैसे ही वृक्ष वायु की सहायता से जड़ों से पानी पीते हैं।

सुखदुःखयोश्च ग्रहणाच्छिन्नस्य च विरोहणात्।
जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यं न विद्यते।। शान्ति 184/17

वृक्ष सुख दुःख अनुभव करते हैं। वृक्ष कट जाने पर उनमें फिर अंकुर निकल आते हैं इसलिये वृक्षों में जीवन दिखाई देता है। वृक्ष अचेतन या जड़ नहीं है वे जीवित प्राणी जैसे हैं।

तेन तज्जलमादत्तं जरयत्यग्निमारुतौ।
आहारपरिणामाच्च स्नेहो वृद्धिश्च जायते।। शान्ति 184/18

वृक्ष अपनी जड़ से जो पानी खींचता है उसे उसके अन्दर रहने वाली अग्नि और वायु पचाती है। खाद और पानी आदि वृक्ष का भोजन पच जाने पर वृक्ष बढ़ते हैं और उनमें स्निग्धता आती है।

स्थावराणां च भूतानां जातयः षट् प्रकीर्तिताः।
वृक्षगुल्मलतावल्ल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः।। अनुशासन 58/23

स्थावर प्राणियों की ये छह जातियाँ बतायी गई हैं-वृक्ष (बढ़,पीपल आदि), गुल्म (कांस आदि) लता (वृक्षों पर फैलने वाली बेलें) वल्ली (जमीन पर फैलने वाली बेलें) त्वक्सार (बांस आदि) और तृण (घास आदि)।

अतीतानागते चोभे पितृवंशं च भारत।
तारयेद् वृक्षरोपी च तस्माद् वृक्षांश्च रोपयेत्।। अनु 58/26

भरतनन्दन! वृक्ष लगाने वाला व्यक्ति अपने मरे हुए पूर्वजों और आने वाली सन्तानों का तथा पितृवंश का उद्धार कर देता है। इसलिये वृक्ष अवश्य लगाने चाहियें।

तस्य पुत्रा भवन्त्येते पादपा नात्र संशयः।
परलोकगतः स्वर्गं लोकांश्चाप्नोति सोऽव्ययान्।। अनु 58/27

वृक्ष लगाने वाले के लिये ये वृक्ष उसकी सन्तान जैसे ही होते हैं। उसे परलोक में स्वर्ग और अक्षय लोक प्राप्त होते हैं।

पुष्पैः सुरगणान् वृक्षाः फलैश्चापि तथा पितॄन्।
छायया चातिथिं तात पूजयन्ति महीरुहाः।। अनु 58/28

प्रिय! वृक्ष अपने फूलों से देवताओं का, फलों से पितरों का और छाया से अतिथियों का सत्कार करते हैं।

किन्नरोरगरक्षांसि देवगन्धर्वमानवाः।
तथा ऋषिगणाश्चैव संश्रयन्ति महीरुहान्।। अनु 58/29

किन्नर, नाग, राक्षस, देवता, गन्धर्व, मनुष्य और ऋषियों के समुदाय वृक्षों का आश्रय लेते हैं।

पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान्।
वृक्षदं पुत्रवद् वृक्षास्तारयन्ति परत्र तु।। अनु 58/30

फूलों और फलों वाले वृक्ष मनुष्यों को तृप्त करते हैं। वृक्षों का दान करने वाले को ये वृक्ष पुत्र की तरह परलोक में तार देते हैं।

तस्मात् तडागे सद्वृक्षा रोप्याः श्रेयोऽर्थिना सदा।
पुत्रवत् परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः।। अनु 58/31

इसलिये अपना भला चाहने वालों को तालाबों के पास अच्छे वृक्ष रोपने चाहियें। इन का पुत्र की तरह पालन पोषण करना चाहिये क्योंकि धर्म की दृष्टि से वृक्ष पुत्र ही माने गये हैं।

पनसाम्रादयो वृक्षा गुल्मा मन्दारपूर्वकाः।
नागिकामल्लिकावल्ल्यो मालतीत्यादिका लताः।
वेणुक्रमुकत्वक्साराः सस्यानि तृणजातयः।। अनु 96 दा० पा० अ०III

कटहल और आम आदि वृक्ष कहलाते हैं। मन्दार आदि छोटे पेड़ गुल्म कहे जाते हैं। नागिकार, मल्लिका जैसी लताएँ वल्ली कहलाती हैं और मालती आदि लताएँ। बांस और सुपारी आदि के पेड़ त्वक्सार माने गये हैं। खेतों आदि में उगने वाले अन्न तृण कहे जाते हैं।

वृद्ध

सम्यगीहा पुनरियं यो वृद्धानुपसेवते।। सौप्तिक 2/21
आपृच्छति च यच्छ्रेयः करोति च हितं वचः।। सौप्तिक 2/22

जो बड़े बूढ़ों की सेवा सत्कार करता है, उनसे अपनी भलाई की बात पूछता है और उनकी हितकारक सलाह पर चलता है उसके काम अच्छे होते हैं।

वृद्धानां वचनं श्रुत्वा योऽभ्युत्थानं प्रयोजयेत्।। सौप्तिक 2/23

उत्थानस्य फलं सम्यक् तदा स लभतेऽचिरात्।। सौप्तिक 2/24

जो मनुष्य बढ़े बूढ़ों की बात सुनकर उनकी सलाह के अनुसार काम शुरू करता है उसे जल्दी ही अपने काम का फल मिल जाता है।

व्यक्त-अव्यक्त

इन्द्रियैर्गृह्यते यद् यत् तत्तद् व्यक्तमिति स्थितिः।
अव्यक्तमिति विज्ञेयं लिङ्गग्राह्यमतीन्द्रियम्।। शान्ति 189/15

जो जो वस्तु हमारी ज्ञानेन्द्रियों से जानी जाय वह वस्तु व्यक्त अर्थात् प्रकट कहलाती है। जो वस्तु इन्द्रियों से न जानी जा सके और जिसे अनुमान आदि से ही जाना जा सके वह अव्यक्त कहलाती है।

वानप्रस्थ आश्रम

स्ववीर्यजीवी वृजिनान्निवृत्तो दाता परेभ्यो न परोपतापी।

तादृङ् मुनिः सिद्धिमुपैति मुख्यां वसन्नरण्ये नियताहारचेष्टः।। आदि 91/4

वानप्रस्थी को अपने परिश्रम से जीवन निर्वाह करना चाहिये। उसे कोई पाप नहीं करना चाहिये। दूसरों को दान देना चाहिये, किसी को सताना नहीं चाहिये, वन में रहना चाहये। उसका आहार और विहार नियमित होना चाहिये। ऐसा जीवन बिताने वाला वानप्रस्थी मोक्ष को प्राप्त करता है।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं वनमेव तदा श्रयेत्।। शान्ति 244/4

जब गृहस्थी अपने सिर के बाल सफेद देखे और शरीर में झुर्रियाँ देखे तथा पुत्र का भी पुत्र हो जाय तब वह वन में चला जाय।

नियतो नियताहारः षष्ठभुक्तोऽप्रमत्तवान्।
तदग्निहोत्रं ता गावो यज्ञाङ्गानि च सर्वशः।। शान्ति 244/6

वानप्रस्थी नियम से रहे, निश्चित मात्रा में भोजन करे। दिन के छठे भाग में अर्थात् तीसरे पहर में भोजन करे। वह प्रमाद न करे। गृहस्थाश्रम की ही भाँति अग्निहोत्र, गो सेवा तथा यज्ञ के सम्पूर्ण अंगों का सम्पादन वानप्रस्थी को करना चाहिये।

देवानामेष वै गोष्ठो यदरण्यमिति श्रुतिः।। शान्ति 277/26

'यदरण्यम्' इस श्रुति वाक्य के अनुसार वानप्रस्थ आश्रम देवताओं की गौशाला के समान है।

गृहवासं समुत्सृज्य निश्चित्यैकमनाः शुभैः।
वन्यैरेव सदाहारैवर्तयेदिति च स्थितिः।। अनु 141 दा० पा०

वानप्रस्थी को एक निश्चय करके अपना घर छोड़ देना चाहिये। उसे वन में मिलने वाले उत्तम फल-फूलों का भोजन करना चाहिये। यही वानप्रस्थी के लिये शास्त्र विहित विधान है।

भूमिशय्या जटाश्मश्रु चर्मवल्कल धारणम्।
देवतातिथिसत्कारो महाकृच्छ्रभिपूजनम्।।
अग्निहोत्रं त्रिषवणं तस्य नित्यं विधीयते।
ब्रह्मचर्यं क्षमा शौचं तस्य धर्मः सनातनः।। अनु 141 दा० पा०

वानप्रस्थी को जमीन पर सोना, जटा और दाढ़ी-मूंछ रखना, मृगचर्म और वृक्षों की छाल के वस्त्र पहनना, देवताओं और अतिथियों का सत्कार करना चाहिये। चाहे अतिथि सेवा आदि में कितना भी कष्ट क्यों न हो। उसे प्रतिदिन अग्निहोत्र करना और दिन में तीन बार नहाना चाहिये। उसे ब्रह्मचर्य पालन, क्षमा और पवित्रता का आचरण करना चाहिये।

अवस्थाप्य मनो धृत्या व्यवसायपुरस्सरः।
निर्द्वन्द्वो वा सदारो वा वनवासाय स व्रजेत्।। अनु 142/5-6 दा० पा०

धैर्य के साथ मन को स्थिर करके मनुष्य को दृढ़ निश्चय के साथ अकेले या पत्नी के साथ वनवास करना चाहिये।

वननित्यैर्वनचरैर्वनस्थैर्वनगोचरैः ।
वनं गुरुमिवासाद्य वस्तव्यं वनजीविभिः।। अनु 142/13

वानप्रस्थी को सदा वन में ही रहना चाहिये, वन में ही विचरण करना चाहिये।

वन में रहकर जंगल के रास्तों पर चलना चाहिये और वन की गुरु की भांति शरण लेकर वन में ही रखना चाहिये।

वायु

न हि वायोर्बलेनास्ति भूतं तुल्यबलं क्वचित्।। शान्ति 155/9

वायु के बल के समान किसी भी प्राणी का बल नहीं है।

यच्च किंचिदिह प्राणी चेष्टते शाल्मले भुवि।
सर्वत्र भगवान् वायुश्चेष्टाप्राणकरः प्रभुः।। शान्ति 155/11

सेमल! इस पृथ्वी पर प्राणी जो कोई भी चेष्य करता है उस चेष्य को शक्ति और प्राण देनेवाला वायु ही होता है।

एष चेष्टयते सम्यक् प्राणिनः सम्यगायतः।
असम्यगायतो भूयश्चेष्टते विकृतं नृषु।। शान्ति 155/12

जब प्राणियों के शरीरों में प्राण–अपान आदि के रूप में वायु ठीक प्रकार गति करता है तब शरीर ठीक रहता है किन्तु वायु के शरीर में ठीक गति न करने पर शरीर में विकार और रोग आ जाते हैं।

प्रेरयत्यभ्रसंघातान् धूमजांश्चोष्मजांश्च यः।
प्रथमः प्रथमे मार्गे प्रवहो नाम योऽनिलः।। शान्ति 328/36

जो धुँए और गर्मी से बने बादलों को इधर उधर ले जाता है वह प्रथम मार्ग में प्रवाहित होने वाला 'प्रवह' नाम का पहिला वायु है।

अम्बरे स्नेहमभ्येत्य विद्युद्भ्यश्च महाद्युतिः।
आवहो नाम संवाति द्वितीयः श्वसनो नदन्।। शान्ति 328/37

जो आकाश में रस (जल) और बिजली की उत्पत्ति के लिये प्रकट होता है वह महान तेज से युक्त दूसरा वायु 'आवह' है जो बहुत शोर के साथ बहता है।

उदयं ज्योतिषां शश्वत् सोमादीनां करोति यः।
अन्तर्देहेषु चोदानं यं वदन्ति मनीषिणः।। शान्ति 328/38

यश्चतुर्भ्यः समुद्रेभ्यो वायुर्धारयते जलम्।
उद्धृत्याददते चापो जीमूतेभ्योऽम्बरेऽनिलः।। शान्ति 328/39

योऽद्भिः संयोज्य जीमूतान् पर्जन्याय प्रयच्छति।
उद्वहो नाम वंहिष्ठस्तृतीयः स सदागतिः।। शान्ति 328/40

जो सदा चन्द्र-सूर्य आदि ग्रहों का उदय करता है। मनीषी पुरुष जिसे शरीर के अन्दर 'उदान' कहते हैं। जो चारों समुद्रों से जल उठाकर जीमूत नाम के मेघों में रखता है तथा जीमूत मेघों को जल से भरकर उन्हें पर्जन्य मेघों को सौंप देता है वह 'उद्वह' नाम का महान वायु है जो तीसरे मार्ग पर चलने के कारण तीसरा वायु कहलाता है।

समूह्यमाना बहुधा येन नीताः पृथग् धनाः।
वर्षमोक्षकृतारम्भास्ते भवन्ति घनाघनाः।। शान्ति 328/41

संहता येन चाविद्धा भवन्ति नदतां नदाः।
रक्षणार्थाय सम्भूता मेघत्वमुपयान्ति च।। शान्ति 328/42

योऽसौ वहति भूतानां विमानानि विहायसा।
चतुर्थः संवहो नाम वायुः स गिरिमर्दनः।। शान्ति 328/43

जिस वायु के द्वारा उड़ाये गये अनेक प्रकार के बड़े बादल घटा बांधकर जल बरसाने लगते हैं। घटा के रूप में घिरकर भी जिस वायु से बादल अलग-अलग (फट) हो जाते हैं। फिर ये बादल गरजने लगते हैं और 'नद' कहलाते हैं। प्राणियों की रक्षा करने के लिये जल एकत्र करके फिर घने बादल बन जाते हैं। जो वायु देवताओं आदि के विमानों को आकाश में उड़ाता है। वह पर्वतों को तोड़ने वाला चौथा वायु 'संवह' कहलाता है।

येन वेगवता रुग्णा रूक्षेण रुवता नगान्।
वायुना सहिता मेघास्ते भवन्ति बलाहकाः।। शान्ति 328/44

दारुणोत्पातसंचारो नभसः स्तनयित्नुमान्।
पञ्चमः स महावेगो विवहो नाम मारुतः।। शान्ति 328/45

जो बड़ी निष्ठुरता से गरजता हुआ वायु बड़े बड़े वृक्षों को उखाड़ देता है। जिसके द्वारा इकट्ठे हुए मेघ 'बलाहक' कहलाते हैं। जिस वायु के चलने से बहुत उत्पात होने लगते हैं और आकाश में गरजते हुए बादलों को चलाता है वह अत्यन्त वेगवान पाँचवाँ वायु 'विवह' कहलाता है।

यस्मिन् परिप्लवा दिव्या वहन्त्यापो विहायसा।
पुण्यं चाकाशगङ्गायास्तोयं विष्टभ्य तिष्ठति।। शान्ति 328/46

दूरात् प्रतिहतो यस्मिन्नेकरश्मिर्दिवाकरः।

योनिरंशुसहस्त्रस्य येन भाति वसुन्धरा।। शान्ति 328/47

यस्मादाप्यायते सोमो निधिर्दिव्योऽमृतस्य च।
षष्ठः परिवहो नाम स वायुर्जयतां वरः।। शान्ति 328/48

जिस वायु के द्वारा आकाश में पुण्य जल ऊपर ही ऊपर बहते हैं। जिस वायु में आकाश गंगा का पवित्र जल है। जिसके द्वारा दूर से ही प्रेरित होकर हजारों किरणों के उत्पादक सूर्य एक ही किरण वाले प्रतीत होते हैं और जो सूर्य पृथिवी को प्रकाशित करते हैं। जिस वायु से अमृत के दिव्य भण्डार चन्द्रमा की भी पुष्टि होती है वह श्रेष्ठ विजयशील छठा वायु 'परिवह' कहलाता है।

सर्वप्राणभृतां प्राणान् योऽन्तकाले निरस्यति।
यस्य वर्त्मानुवर्तेते मृत्यु वैंवस्वतावुभौ।। शान्ति 328/49

सम्यगन्वीक्षतां बुद्ध्या शान्तयाध्यात्मनित्यया।
ध्यानाभ्यासाभिरामाणां योऽमृतत्वाय कल्पते।। शान्ति 328/50

यं समासाद्य वेगेन दिशोऽन्तं प्रतिपेदिरे।
दक्षस्य दशपुत्राणां सहस्त्राणि प्रजापतेः।। शान्ति 328/51

येन स्पृष्टः पराभूतो यात्येव न निवर्तते।
परावहो नाम परो वायुः स दुरतिक्रमः।। शान्ति 328/52

जो वायु अन्त समय में सभी प्राणियों के प्राणों को शरीर से निकालता है। मृत्यु और वैवस्वत जिस वायु के मार्ग से जाते हैं। अध्यात्म चिन्तन में लगी गई शान्त बुद्धि के द्वारा भली-भाँति अनुसन्धान करने वाले तथा ध्यान करने के अभ्यास में ही आनन्द पूर्वक लगे रहने वाले पुरुष को जो वायु अमृतत्व देने में समर्थ है। जिसमें स्थित होकर दक्ष प्रजापति के दस हजार पुत्र दिशाओं के अन्त तक पहुँच गये। जिसके सम्पर्क में आकर प्राणी विलीन होकर चला जाता है और लौट कर नहीं आता है उस सर्वश्रेष्ठ सातवें वायु का नाम 'परावह' है। इस वायु को लांघ पाना अत्यन्त कठिन है।

विदुर

माण्डव्यशापांद्धि स वै धर्मो विदुरतां गतः।
महाबुद्धिर्महायोगी महात्मा सुमहामनाः।। आश्रमवास 28/12

माण्डव्यमुनि के शाप से धर्म ही ने विदुर के रूप में जन्म लिया था। विदुर जी बड़े बुद्धिमान, महान योगी, महात्मा और महामनस्वी थे।

बृहस्पतिर्वा देवेषु शुक्रो वाप्यसुरेषु च।
न तथा बुद्धिसम्पन्नो यथा स पुरुषर्षभः।। आश्रमवास 28/13

देवताओं में बृहस्पति और असुरों में शुक्राचर्य भी उतने बुद्धिमान नहीं हैं जितने बुद्धिमान पुरुष श्रेष्ठ विदुर जी थे।

नियोगाद् ब्रह्मणः पूर्वं मया स्वेन बलेन च।
वैचित्रवीर्यके क्षेत्रे जातः स सुमहामतिः।। आश्रमवास 28/15

मैंने बहुत वर्ष पहिले ब्रह्मा जी की आज्ञा के अनुसार अपने तपोबल से विचित्र वीर्य की स्त्री में परम बुद्धिमान विदुर को उत्पन्न किया था।

भ्राता तव महाराज देवदेवः सनातनः।
धारणान्मनसा ध्यानाद् यं धर्मं कवयो विदुः।। आश्रमवास 28/16

महाराज! आपके भाई विदुर जी देवताओं के भी देवता सनातन धर्म थे। मन से धर्म को धारण किया जाता है और ध्यान किया जाता है। इसलिये विद्वान् लोग उन्हें धर्म के नाम से जानते हैं।

येन योगबलाज्जातः कुरुराजो युधिष्ठिरः।
धर्म इत्येष नृपते प्राज्ञेनामितबुद्धिना।। आश्रमवास 28/18

राजन्! जिस अत्यन्त बुद्धिमान और विद्वान् देवता ने अपने योगबल से कुरुराज युधिष्ठिर को जन्म दिया था, वह धर्म, विदुर का ही स्वरूप है।

यो हि धर्मः स विदुरो विदुरो यः स पाण्डवः ।।
स एष राजन् दृश्यस्ते पाण्डवः प्रेष्यवत् स्थितः।।
आश्रमवास 28/21

राजन्! जो धर्म है वह विदुर ही है और जो विदुर थे वे ही पाण्डव पुत्र युधिष्ठिर हैं। युधिष्ठिर तुम्हारे सामने सेवक की तरह खड़े हैं।

विद्या

अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः।। उद्योग 40/4

सेवा न करना, जल्दबाजी और आत्मप्रशंसा ये तीन विद्या के शत्रु हैं।

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथात्यागित्वमेव च।
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः।। उद्योग 40/5

आलस्य, मद-मोह, चंचलता, गप्पें लगाना, उद्दण्डता, अभिमान तथा स्वार्थ त्याग का अभाव ये सात विद्यार्थियों के लिये दोष हैं।

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्।। उद्योग 40/6

सुख चाहने वाला विद्या प्राप्त नहीं कर सकता और विद्यार्थी को सुख नहीं मिलता। सुख चाहने वाला विद्या को छोड़ दे या विद्यार्थी सुख को।

श्रद्दधानः शुभां विद्यां हीनादपि समाप्नुयात्।
सुवर्णमपि चामेध्यादाददीताविचारयन्।। शान्ति 165/31

अपने से नीच वर्ण के व्यक्ति से भी उत्तम विद्या श्रद्धा के साथ ग्रहण करनी चाहिये। अपवित्र स्थान में पड़े हुए सोने को विचार किये बिना उठा लेना चाहिये।

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।। शान्ति 329/6
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्।। शान्ति 174/35

विद्या जैसा कोई नेत्र नहीं है। सत्य के बराबर कोई तपस्या नहीं है। राग के समान कोई दुख नहीं है। त्याग के समान कोई सुख नहीं है।

परावरं तु भूतानां ज्ञानेनैवोपलभ्यते।
विद्यया तात सृष्टानां विद्यैवेह परा गतिः।। शान्ति 237/10

तात! प्राणियों के स्थूल-सूक्ष्म या छोटे-बड़े का भेद ज्ञान से ही जाना जाता है। इस जगत में सभी प्राणियों की सृष्टि विद्या से ही हुई है। प्राणियों की परम गति विद्या ही है।

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति विद्यासमं फलम्।। शान्ति 277/35

विद्या के समान कोई नेत्र नहीं है। विद्या के समान कोई अच्छा फल नहीं है।

यो हि वेदे च शास्त्रे च ग्रन्थधारणतत्पराः।
न च ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञस्तस्य तद्धारणं वृथा।। शान्ति 305/13

जो वेद और शास्त्र के ग्रन्थों को तो याद कर लेता है किन्तु इनके यथार्थ तत्त्व को नहीं समझता उसका यह याद करना व्यर्थ होता है।

विद्या धमार्थ फलिनी तद्विदो वृद्धसंज्ञिताः।। अनु 145 दा० पा०I

विद्या, धर्म और अर्थ का फल देने वाली है। विद्या के जानकार लोग वृद्ध कहलाते हैं।

विद्यायोगस्तु सर्वेषां पूर्वमेव विधीयते।
कार्याकार्यं विजानन्ति विद्यया देवि नान्यथा।। अनु 145 दा० पा०I

देवि! सभी मनुष्यों के लिये विद्या का योग पहले ही निश्चित कर दिया जाता है। लोग विद्या पढ़कर ही अपना कर्तव्य और अकर्तव्य समझ पाते हैं।

विद्यया स्फीयते ज्ञानं ज्ञानात् तत्त्वविदर्शनम्।
दृष्टतत्त्वो विनीतात्मा सर्वार्थस्य च भाजनम्।। अनु 145 दा० पा०V

विद्या से ज्ञान बढ़ता है। ज्ञान पाकर मनुष्य वास्तविक तत्व को समझ लेता है। तत्व को समझ लेने के बाद मनुष्य का मन विनय सम्पन्न हो जाता है। वह अपने ज्ञान से सभी प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त कर सकता है।

शक्यं विद्याविनीतेन लोके संजीवनं शुभम्।। अनु 145 दा० पा०V

विद्या से विनय युक्त होकर मनुष्य संसार में कल्याणकारी जीवन बिताता है।

विद्यादानं तथा देवि पात्रभूताय वै ददत्।
प्रेत्यभावे लभेन्मर्त्यो मेधां वृद्धिं धृतिं स्मृतिम्।। अनु 145 दा० पा०XI

देवि! जो व्यक्ति सुपात्र शिष्य को विद्या पढ़ाता है उसे मृत्यु के बाद सम्पन्नता, बुद्धि, धैर्य और स्मरण शक्ति प्राप्त होती है।

दापनं त्वथ विद्यानां दरिद्रेभ्योऽर्थवेदनैः।
स्वयं दत्तेन तुल्यं स्यादिति विद्धि शुभानने।। अनु 145 दा० पा०XI

निर्धन छात्रों को धन देकर पढ़ाना भी स्वयं विद्या दान करने के समान होता है। सुमुखि पार्वती। तुम यह बात समझ लो।

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश।। आश्व 92 दा० पा० XX

चार वेद, छह वेदांग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण ये चौदह विद्याएँ हैं।

विधवा

उत्सृष्टमामिषं भूमौ प्रार्थयन्ति यथा खगाः।
प्रार्थयन्ति जनाः सर्वे पतिहीनां तथा स्त्रियम्।। आदि 157/12

जैसे पक्षी जमीन पर पड़ा मांस का टुकड़ा लेने के लिये झपटते हैं। वैसे ही सब लोग विधवा स्त्री के पीछे पड़े रहते हैं।

व्युष्टिरेषा परा स्त्रीणां पूर्वं भर्तुः परां गतिम्।

यदि स्त्रियाँ अपने पति से पहिले ही मर जायें तो उनके लिये सौभाग्य की बात है।

सर्वापि विधवा नारी बहुपुत्रापि शोचते।। शान्ति 148/2

अनेक पुत्रों वाली भी सभी विधवा स्त्रियां दुखी रहती हैं।

शोच्या भवति बन्धूनां पतिहीना तपस्विनी।। शा० 148/3

पतिहीना और तपस्या करने वाली स्त्री सम्बन्धियों को भी दुखी बना देती है।

विपरीत बुद्धि

असम्भवे हेममयस्य जन्तो स्तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समासन्नपराभवाणां धियो विपर्यस्ततरा भवन्ति।। सभा 76/5

किसी पशु का शरीर सोने का नहीं हो सकता फिर भी राम सुवर्णमृग के लोभ में उसके पीछे भागे। जिनका पतन निकट जा जाता है उनकी विवेक शक्ति प्रायः उलट जाती है।

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम्।। उद्योग 34/81
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति।। सभा 81/8

देवता जिस पुरुष की हार चाहते हैं वे उसकी बुद्धि हर लेते हैं। ऐसे व्यक्ति को सब कुछ उल्य ही दीखने लगता है।

बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे समुपस्थिते।। उद्योग 34/82
अनयो नय संकाशो हृदयान्नापसर्पति।। सभा 81/9

विनाश की घड़ी आ जाने पर जब बुद्धि मलिन हो जाती है तब अन्याय ही न्याय लगने लगता है और वह हृदय से नहीं निकल पाता।

अनर्थाश्चार्थरूपेण अर्थाश्चानर्थरूपिणः।
उत्तिष्ठन्ति विनाशाय नूनं तच्चास्य रोचते।। सभा 81/10

पुरुष के विनाश के लिये उसे अनर्थ के काम ठीक लगने लगते हैं और ठीक बातें अनर्थकारी। तब उसे अनर्थ ही अच्छा लगता है।

सुहृदां हितकामानां वाक्यं यो न शृणोति ह।
स महद् व्यसनं प्राप्य शोचते वै यथा भवान्।। द्रोण 114/49

जो व्यक्ति हितैषी मित्रों की बात नहीं सुनता है वह भारी विपत्ति में फंसकर आपकी तरह शोक करता है।

विभूति

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।। भीष्म 34/20; गीता 10/20

निद्रा पर विजय पा लेने वाले अर्जुन! मैं सब प्राणियों के हृदय में विराजमान आत्मा हूँ।

वेदानां सामवेदोऽस्मि।। भीष्म 34/22; गीता 10/22

वेदों में मैं सामवेद हूँ।

यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।। भीष्म 34/25; गीता 10/25

यज्ञों में जप यज्ञ हूँ और स्थिर रहने वाली वस्तुओं में हिमालय हूँ।

अश्वत्थः सर्व वृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।। भीष्म 34/26; गीता 10/26

सभी प्रकार के वृक्षों में श्रेष्ठ वृक्ष पीपल हूँ और देवताओं में नारद हूँ।

अध्यात्मविद्या विद्यानाम्।। भीष्म 34/32; गीता 10/32

सब प्रकार की विद्याओं में मैं अध्यात्म विद्या या ब्रह्मविद्या हूँ।

कीर्तिः श्रीर्वाक् च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।।

भीष्म 34/34।; गीता 10/34

मैं स्त्रियों में यश, लक्ष्मी, वाणी, स्मरण शक्ति और धारणाशक्ति, धैर्य और क्षमा के रूप में विराजमान हूँ।

मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः।। भीष्म 34/35; गीता 10/35

मैं वर्ष के महीनों में मार्गशीर्ष हूँ और ऋतुओं में वसन्त ऋतु हूँ।

तेजस्तेजस्विनामहम्।। भीष्म 34/36; गीता 10/36

मैं तेजस्वी पुरुषों का तेज हूँ।

मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्।। भीष्म 34/38; गीता 10/38

मैं गोपनीय बातों के लिये मौन हूँ और ज्ञानियों का ज्ञान हूँ।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत् स्यान्मया भूतं चराचरम्।।

भीष्म 34/39; गीता 10/19

हे अर्जुन! सभी प्राणियों की उत्पत्ति का कारण मैं ही हूँ। इस जगत् के चल और अचल प्राणियों में ऐसा कोई नहीं है जिसमें मेरा अस्तित्व नहीं है।

यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत् तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्।। भीष्म 34/41; गीता 10/41

इस संसार में जो जो वस्तु विभूति अर्थात् कान्ति युक्त है अथवा ऐश्वर्ययुक्त है ऐसी प्रत्येक वस्तु को तुम मेरे तेज के अंश की अभिव्यक्ति ही समझो।

वियोग

सर्वे क्षयान्ताः निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगाः विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्।। स्त्री 2/3

इकट्ठी की हुई सभी वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं। संसार में जिसकी उन्नति होती है एक न एक दिन उसका पतन भी होता है। जिस किसी के साथ हमारा मिलना होता है उससे बिछुड़ना भी पड़ता है और एक न एक दिन मृत्यु आती है।

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः।। शान्ति 28/36; शान्ति 174/15

जैसे महासागर में एक लकड़ी तैरती हुई दूसरी लकड़ी से मिल जाती है और थोड़ी देर बाद अलग हो जाती है उसी तरह इस संसार में प्राणियों का मिलना और बिछुड़ना होता रहता है।

नैवास्य कश्चिद् भविता नायं भवति कस्यचित्।
पथि संगतमेवदं दारबन्धुसुहृज्जनैः।। शान्ति 28/39

इस जीव का न तो कोई सम्बन्धी होगा और न ही यह जीव किसी का सम्बन्धी है। जैसे रास्ता चलने वालों का साथ मिल जाता है वैसे ही स्त्री, भाई और मित्रों का मिलना हो जाता है।

अनित्ये प्रियसंवासे संसारे चक्रवद्गतौ।
पथि संगतमेवैतद् भ्राता माता पिता सखा।। शान्ति 28/41

यह संसार; चक्र की तरह घूमता रहता है। इसमें प्रियजनों का साथ सदा नहीं बना रहता है। जैसे रास्ता चलते हुए लोग मिल जाते हैं वैसे ही माता, पिता, भाई और मित्र मिल जाते हैं।

नायमत्यन्तसंवासो लभ्यते जातु केनचित्।
अपि स्वेन शरीरेण किमुतान्येन केनचित्।। शान्ति 28/52

किसी भी पुरुष को कभी भी किसी के साथ सदा रहने का अवसर नहीं मिलता। प्राणी का अपने शरीर के साथ भी सदा सम्बन्ध नहीं बना रहता फिर किसी दूसरे के साथ सम्बन्ध कैसे रह सकता है?

क्व नु तेऽद्य पिता राजन् क्व नु तेऽद्य पितामहः।
न त्वं पश्यसि तानद्य न त्वां पश्यन्ति तेऽनघ।। शान्ति 28/53

राजन्! आज आप के पिता-पितामह कहाँ पर हैं? उन्हें आप आज नहीं देख रहे न ही वे आपको देख रहे हैं।

संयोगो विप्रयोगश्च पर्यायेणोपलभ्यते।। शान्ति 153/9

इस संसार में मिलना और बिछुड़ना बारी बारी से होता रहता है।

एवं पुत्राश्च पौत्राश्च ज्ञातयो बान्धवास्तथा।
तेषां स्नेहो न कर्तव्यो विप्रयोगो ध्रुवो हि तैः।। शान्ति 174/16

पुत्रों, पोतों, सम्बन्धियों और बन्धु -बान्धवों के साथ स्नहे नहीं करना चाहिये, क्योंकि एक न एक दिन उनसे बिछुड़ना पड़ेगा।

विवाह

मनोवाग्बुद्धिसम्भाषा दत्ता चोदकपूर्वकम्।। द्रोण 55/15

पाणिग्रहणमन्त्राश्च प्रथितं वरलक्षणम्।
न त्वेषा निश्चिता निष्ठा निष्ठा सप्तपदी स्मृता।। द्रोण 55/16

मन से संकल्प करके, वाणी से प्रतिज्ञा करके, बुद्धि से निश्चय करके, आपस में बात करके तथा संकल्प का जल हाथ में लेकर और विवाह के मन्त्र बोलकर वर द्वारा कन्या का जो पाणिग्रहण होता है, वह विधि-विधान के अनुसार होने पर भी पूरी तरह विवाह संस्कार नहीं माना जाता। विवाह संस्कार सप्तपदी होने पर ही पूर्ण माना जाता है।

शीलवृत्ते समाज्ञाय विद्यां योनिं च कर्म च।
सद्भिरेवं प्रदातव्या कन्या गुणयुते वरे।। अनुशासन 44/3

वर का चरित्र, स्वभाव, विद्या, कुल और काम के बारे में जानकारी प्राप्त करके सत्पुरुषों को गुणी व्यक्ति को कन्या देनी चाहिये।

ब्राह्मणानां सतामेष ब्राह्मो धर्म युधिष्ठिर।
आवाह्यमावहेदेवं यो दद्यादनुकूलतः।। अनुशासन 44/4
शिष्टानां क्षत्रियाणां च धर्म एष सनातनः।

युधिष्ठिर! विवाह योग्य वर को बुलाकर उसके साथ कन्या का विवाह करना उत्तम ब्राह्मणों का धर्म है। ऐसा विवाह ब्राह्मविवाह होता है। वर पक्ष को धन आदि देकर अपने अनुकूल बनाकर जो कन्यादान किया जाता है वह शिष्ट ब्राह्मणों और क्षत्रियों का सनातन धर्म कहा जाता है। इसी को प्राजापत्य विवाह कहते हैं।

आत्माभिप्रेतमुत्सृज्य कन्याभिप्रेत एव यः।। अनु 44/5
अभिप्रेता च या यस्य तस्मै देया युधिष्ठिर।
गान्धर्वमिति तं धर्मं प्राहुर्वेदविदो जनाः।। अनुशासन 44/6

युधिष्ठिर! जब कन्या के माता-पिता अपनी पसन्द के वर को छोड़कर जिस वर को कन्या चाहती हो और जो कन्या को चाहता हो ऐसे वर के साथ कन्या का विवाह करते हैं तो वेदवेत्ता ऐसे विवाह को गान्धर्व धर्म या गान्धर्व विवाह कहते हैं।

धनेन बहुधा क्रीत्वा सम्प्रलोभ्य च बान्धवान्।
असुराणां नृपैतं वै धर्ममाहुर्मनीषिणः।। अनुशासन 44/7

राजन्! कन्या के बन्धुबान्धवों को लोभ देकर और धन देकर कन्या को खरीदना असुरों का धर्म है। मनीषी पुरुष ऐसे विवाह को आसुर विवाह कहते हैं।

हत्वा छित्वा च शीर्षाणि रुदतां रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य हरणं तात राक्षसो विधिरुच्यते।। अनुशासन 44/8

प्रिय! कन्या के रोते हुए माता-पिता को मारकर, उनके ि र काटकर, रोती हुई कन्या को जबर्दस्ती हर लाना राक्षस विवाह कहलाता है।

पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ युधिष्ठिर।
पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यो कथंचन।। अनुशासन 44/9

युधिष्ठिर! इन पाँच तरह के विवाहों में से पहले तीन धर्मयुक्त हैं और शेष दो आसुर और राक्षस विवाह पापपूर्ण हैं। ऐसे विवाह कभी नहीं करने चाहियें। स्मृति ग्रन्थों में ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच इन आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख मिलता है। महाभारत में ब्राह्म, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर और राक्षस, इन पाँच विवाहों का उल्लेख किया गया है। अत: स्मृति ग्रन्थों के दैव और आर्ष विवाहों का समावेश ब्राह्म विवाह में तथा राक्षस विवाह में पैशाच विवाह का समावेश मानना चाहिये। प्राजापत्य विवाह को ही 'क्षात्र विवाह' भी कहा गया है।

तिस्रो भार्या ब्राह्मणस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु।
वैश्यः स्वजात्यां विन्देत तास्वापत्यं समं भवेत्।। अनुशासन 44/11

ब्राह्मण वर; ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन स्त्रियाँ रख सकता है। क्षत्रिय दो स्त्रियों से विवाह कर सकता है क्षत्रिय और वैश्य कन्या से। वैश्य को अपनी जाति की कन्या से ही विवाह करना चाहिये। इन विभिन्न वर्णों की स्त्रियों से जो सन्तान उत्पन्न होती हैं वे पिता के वर्ण वाली होती हैं।

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कन्या ऋतुमती सती।
चतुर्थे त्वथ सम्प्राप्ते स्वयं भर्तारमर्जयेत्।। अनुशासन 44/16

कन्या रजस्वला (ऋतुमती) होने के बाद तीन वर्ष तक अपने विवाह की प्रतीक्षा करे। चौथे वर्ष में वह स्वयं ही किसी पुरुष से विवाह कर ले।

न ह्येवं भार्या क्रेतव्या न विक्रय्या कथंचन।। अनुशासन 44/46

धर्मपत्नी किसी भी तरह से खरीदने या बेचने की वस्तु नहीं है।

अनुकूलामनुवंशां भ्रात्रा दत्तामुपाग्निकाम्।
परिक्रम्य यथान्यायं भार्यां विन्देद् द्विजोत्तमः।। अनुशासन 44/56

जो अपने अनुकूल और अपने वंश के अनुकूल हो, माता-पिता या भाई के द्वारा अग्नि के समीप बैठकर दी गई हो ऐसी पत्नी को श्रेष्ठ ब्राह्मण अग्नि की परिक्रमा करके विधि पूर्वक ग्रहण करे।

विवेक

येषां शास्त्रानुगा बुद्धि र्न ते मुह्यन्ति भारत।। आदि 1/244

जिनकी बुद्धि शास्त्रों के अनुसार चलती है वे कभी शोक और मोह नहीं करते।

आत्मानं च परांश्चैव त्रायते महतो भयात्।
क्रुध्यन्तमप्रतिक्रुध्यन् द्वयोरेष चिकित्सकः।। वन 29/9

विवेकशील व्यक्ति क्रोधी के सामने क्रोध नहीं करता। इस तरह वह अपने को और दूसरे लोगों को भी बड़े संकट से बचा लेता है। विवेकी पुरुष ऐसे आचरण से अपना और परायों का भी वैद्य बन जाता है।

प्रक्षीयते धनोद्रेको जनानामविजानताम्।। वन 192/28

विवेकहीन पुरुषों की धन सम्पत्ति नष्ट हो जाती है।

यः समुत्पतितं हर्षं दैन्यं वा न नियच्छति।
स नश्यति श्रियं प्राप्य पात्रमाममिवाम्भसि।। वन 251/4

जो मनुष्य अचानक आये हुए शोक का हर्ष पर नियन्त्रण नहीं रख पाता वह समृद्धि को प्राप्त कर भी वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे पानी में कच्चा घड़ा।

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषापिहितावुरू।
कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः।। उद्योग 34/66

राजन्! जैसे छोटे छेदों वाले जाल में फंसी हुई दो बड़ी मछलियाँ मिलकर जाल काट देती हैं वैसे ही मनुष्य के मन में बैठे काम और क्रोध उसका विवेक नष्ट कर देते हैं।

क्वासे क्व च गमिष्यामि को न्वहं किमिहास्थितः।
कस्मात् किमनुशोचेयमित्येवं स्थापयेन्मनः।। शान्ति 28/40

विवेकशील मनुष्य को सोचना चाहिये कि मैं कहां हूँ, कहां जाऊंगा, मैं कौन हूँ, यहाँ किसलिये आया हूँ, और किसलिये किसी के बारे में शोक करूँ?

ये च बुद्धिसुखं प्राप्ता द्वन्द्वातीता विमत्सराः।
तान् नैवार्था न चानर्था व्यथयन्ति कदाचन।। शान्ति 174/35

जो विवेक ज्ञान के कारण सुखी हैं, सुख-दुख आदि द्वन्द्वों से ऊपर उठ चुके हैं और ईर्ष्या से दूर हैं उन्हें हानि-लाभ आदि से परेशानी नहीं होती।

उभे सत्यानृते त्यक्त्वा शोकानन्दौ भयाभये।
प्रियाप्रिये परित्यज्य प्रशान्तात्मा भविष्यति।। शान्ति 174/53

विवेकशील मनुष्य; सत्य और असत्य अथवा जगत् के व्यक्त और अव्यक्त पदार्थों, हर्ष-शोक, भय-अभय और प्रिय-अप्रिय इन सब को छोड़कर शान्त चित्त हो जाता है।

शोककाले शुचो मा त्वं हर्षकाले च मा हृषः।। शान्ति 227/65
अतीतानागतं हित्वा प्रत्युत्पन्नेन वर्तय।

तुम शोक का अवसर आने पर शोक मत करो और हर्ष के समय बहुत खुश मत होओ। भूत और भविष्य की चिन्ता छोड़कर वर्तमान समय में जो कुछ मिले उसी से जीवन निर्वाह करो।

ईर्ष्याभिमानलोभेषु कामक्रोधभयेषु च।। शान्ति 227/104
स्पृहामोहाभिमानेषु लोकः सक्तो विमुह्यति।

लोग ईर्ष्या, अभिमान, काम, क्रोध, लोभ, भय, इच्छा, मोह और घमण्ड में फंसकर अपना विवेक खो देते हैं।

चिरेण मित्रं बध्नीयाच्चिरेण च कृतं त्यजेत्।
चिरेण हि कृतं मित्रं चिरं धारणमर्हति।। शान्ति 266/69

काफी देर तक सोच विचार करने के बाद ही किसी के साथ मित्रता करनी चाहिये और जिसे मित्र बना लिया उसे बिना सोचे समझे नहीं छोड़ना चाहिये। सोच समझकर बनाये हुए मित्र के साथ मित्रता काफी समय तक बनी रहती है।

रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि।
अप्रिये चैव कर्तव्ये चिरकारी प्रशस्यते।। शान्ति 266/70

राग, दर्प, अभिमान, द्रोह, पापकर्म और किसी का बुरा करने में जो व्यक्ति देर लगाता है उसकी प्रशंसा की जाती है।

बन्धूनां सुहृदां चैव भृत्यानां स्त्रीजनस्य च।
अव्यक्तेष्वपराधेषु चिरकारी प्रशस्यते।। शान्ति 266/71

बन्धु बान्धवों, मित्रों, सेवकों और स्त्रियों के छिपे हुए अपराधों के बारे में जो काफी समय तक सोचकर निर्णय करता है उसकी प्रशंसा की जाती है।

एवं सर्वेषु कार्येषु विमृश्य पुरुषस्ततः।
चिरेण निश्चयं कृत्वा चिरं न परितप्यते।। शान्ति 266/73

इस प्रकार सभी कामों में सोच समझ कर कोई निश्चय करने वाले पुरुष को बहुत समय तक पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता।

चिरं धारयते रोषं चिरं कर्म नियच्छति।
पश्चात्तापकरं कर्म न किंचिदुपपद्यते।। शान्ति 266/74

जो व्यक्ति काफी देर तक गुस्से को दबाये रखता है और गुस्से में किये जाने वाले काम को एकदम नहीं करता है वह ऐसा कोई काम नहीं करता जिससे पीछे पछताना पड़े।

चिरं वृद्धानुपासीत चिरमन्वास्य पूजयेत्।
चिरं धर्मं निषेवेत कुर्याच्चान्वेषणं चिरम्।। शान्ति 266/75

बड़े बूढ़ों की सेवा लम्बे समय तक करनी चाहिये। उनका देर तक सत्संग करना चाहिये और उनका सदा आदर करना चाहिये। दीर्घकाल तक धर्म का पालन करना चाहिये और धर्म के बारे में दीर्घकाल तक सोचना चाहिये।

चिरमन्वास्य विदुषश्चिरं शिष्टान् निषेव्य च।
चिरं विनीय चात्मानं चिरं यात्यनवज्ञताम्।। शान्ति 266/76

लम्बी अवधि तक विद्वानों के साथ रहकर और सज्जनों की देर तक सेवा करके तथा अपने मन पर लम्बे समय तक नियन्त्रण रखकर मनुष्य अपमान से दूर रहता है। उसका सम्मान ही होता है।

ब्रुवतश्च परस्यापि वाक्यं धर्मोपसंहितम्।
चिरं पृष्टोऽपि च ब्रूयाच्चिरं न परितप्यते।। शान्ति 266/77

धर्मोपदेश करने वाले व्यक्ति से यदि कोई प्रश्न पूछा जाय तो उसे देर तक सोच विचार कर उत्तर देना चाहिये। ऐसा करने से उसे पछताना नहीं पड़ता।

विषय भोग

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।। आदि 75/50।। 85/12

ऐश्वर्यों और सुखों का उपभोग करने से विषय भोग की इच्छा कम नहीं होती अपितु घी की आहुति पाकर बढ़ी हुई अग्नि की भाँति विषयों का भोग करने की इच्छा बढ़ती ही जाती है।

पृथिवी रत्नसम्पूर्णा हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत्।। आदि 75/51।। 85/13

रत्नों से भरी हुई सारी पृथिवी, संसार का सारा सोना, पशु और सारी सुन्दर स्त्रियाँ भी यदि एक पुरुष को मिल भी जाए तब भी उस व्यक्ति की इच्छाएँ पूरी नहीं होंगी इसलिये हमें मन को शान्त रखकर भोगों की इच्छा को दबा देना चाहिये।

कामाभिध्या स्वशरीरं दुनोति यया प्रमुक्तो न करोति दुःखम्।
यथेध्यमानस्य समिद्धतेजसो भूयो बलं वर्धते पावकस्य।। उद्योग 26/5
कामार्थलाभेन तथैव भूयो न तृप्यते सर्पिषेवाग्निरिद्धः।। उद्योग 26/6

विषय भोगों के सम्बन्ध में सोचकर मनुष्य अपने शरीर को दुःख देता है। विषय भोगों के सम्बन्ध में न सोचने वाला व्यक्ति दुखी नहीं होता। जैसे जलती हुई आग में घी डालने से आग और अधिक भड़क जाती है उसी तरह विषय भोग और धन मिलने से मनुष्य की तृष्णा और भी बढ़ जाती है। घी से शान्त न होने वाली अग्नि की भांति मनुष्य कभी भी भोगों और धन से तृप्त नहीं होता।

कामा मनुष्यं प्रसजन्त एते धर्मस्य ये विघ्नमूलं नरेन्द्र।
पूर्वं नरस्तान् मतिमान् प्रणिघ्नँल्लोके प्रशंसां लभतेऽनवद्याम्।।

उद्योग 27/4

हे राजा! विषय भोग की कामनाएँ मनुष्य को अपनी ओर खींच लेती हैं। किन्तु ये कामनाएँ धर्माचरण में विघ्न डालने की जड़ हैं। इसलिये बुद्धिमान मनुष्य पहले इन कामनाओं को नष्ट करके संसार में यशस्करी प्रशंसा प्राप्त करता है।

तद् वै महामोहनमिन्द्रियाणां मिथ्यार्थयोगस्य गतिर्हि नित्या।
मिथ्यार्थयोगाभिहतान्तरात्मा स्मरन्नुपास्ते विषयान् समन्तात्।।

उद्योग 42/10

इन सांसारिक विषयों का भोग इन्द्रियों को मोह में डाल देता है। इन झूठे या अनित्य विषयभोगों में आसक्ति वाले मनुष्य की इनमें आसक्ति होनी स्वाभाविक ही

है। इन अनित्य भोगों में आसक्ति होने से अन्तःकरण की भी ज्ञानशक्ति नष्ट हो जाती है और मनुष्य भोगों का मन ही मन स्मरण करता हुआ उनका स्वाद चखता रहता है।

कामानुसारी पुरुषः कामाननु विनश्यति।
कामान् व्युदस्य धुनुते यत् किंचित् पुरुषो रजः।। उद्योग 42/13

विषय भोगों की इच्छा के पीछे भागने वाला मनुष्य इन कामनाओं के साथ ही नष्ट हो जाता है। किन्तु इन कामनाओं को नष्ट कर देने वाला मनुष्य जन्म मरण का जो भी दुख है उसे नष्ट कर देता है।

शब्दे स्पर्शे रसे रूपे गन्धे च रमते मनः।। शान्ति 72/23
तेषु भोगेषु सर्वेषु न भीतो लभते सुखम्।

मन को शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध के विषय भोग अच्छे लगते हैं। किन्तु डरे हुए मनुष्य को इन सभी भोगों से सुख नहीं मिलता।

स्पर्शरूपरसाद्येषु सङ्गं गच्छन्ति बालिशाः।
नावगच्छन्त्यविज्ञानादात्मानं पार्थिवं गुणम्।। शान्ति 212/10

अज्ञानी पुरुष स्पर्श, रूप, रस आदि विषयों में रमते हैं। वे विशिष्ट ज्ञान से रहित होने के कारण यह नहीं जानते कि शरीर पृथ्वी से बना है।

दुरन्तेष्विन्द्रियार्थेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः।
ये त्वसक्ता महात्मानस्ते यान्ति परमां गतिम्।। शान्ति 215/1

इन्द्रियों के विषय भोगों से पार पाना बड़ा कठिन है। इनमें फंसे हुए मनुष्य दुःख भोगते हैं किन्तु जो महापुरुष विषयों की आसक्ति छोड़ देते हैं वे परम गति को प्राप्त कर लेते हैं।

इषुप्रपातमात्रं हि स्पर्शयोगे रतिः स्मृता।
रसने दर्शने घ्राणे श्रवणे च विशाम्पते।। शान्ति 295/32

प्रजानाथ! धनुष से छूटकर बाण जितनी देर में पृथ्वी पर गिरता है उतने ही समय तक मनुष्य को जिह्वा, आँख, नाक और कान से स्वाद, देखने, सूंघने और सुनने का सुख मिलता है। सुख क्षणिक ही है।

मानुष्यमसुखं प्राप्य यः सज्जति स मुह्यति।
नालं स दुःखमोक्षाय संयोगो दुःखलक्षणम्।। शान्ति 329/8

दुखों से भरे मनुष्य जीवन को पाकर जो विषयों में फंसा रहता है वह मोह में

पड़ जाता है। विषयों में फंसने से दुःख मिलता है इसलिये विषय भोग दुखों से छुटकारा नहीं दिला सकते।

सक्तस्य बुद्धिश्चलति मोहजालविवर्धनी।
मोहजालावृतो दुःखमिह चामुत्र सोऽनुश्ते।। शान्ति 329/9

विषयों और भोगों में फंसे मनुष्य की बुद्धि मोह पाश में फंस कर अस्थिर हो जाती है। मोह जाल में फंसा मनुष्य इस लोक में और परलोक में दुःख पाता है।

निरामिषा न शोचन्ति त्यजेदामिषमात्मनः।
परित्यज्यामिषं सौम्य दुःखतापाद् विमोक्ष्यसे।। शान्ति 329/21

विषय भोगों को छोड़ देने वाले पुरुष कभी दुखी नहीं होते। अतः हमें भोगों को छोड़ देना चाहिये। सौम्य! विषय भोगों को त्याग कर तुम दुःख और संताप से छूट जाओगे।

तपोनित्येन दान्तेन मुनिना संयतात्मना।
अजितं जेतु कामेन भाव्यं सङ्गेष्वसङ्गिना।। शान्ति 329/22

जो न जीते गये को अर्थात् परमात्मा को जीतना चाहता है उसे तपस्वी, जितेन्द्रिय, मननशील, संयतचित्त और विषय भोगों से दूर रहना चाहिये।

गुणसङ्गेष्वनासक्त एकचर्यारतः सदा।
ब्राह्मणो नचिरादेव सुखमायात्यनुत्तमम्।। शान्ति 329/23

जो ब्रह्मज्ञानी सत्त्व, रजस् और तमस् इन गुणों के विषय भोगों से दूर रहता है और एकान्त में रहता है वह जल्दी ही सर्वोत्तम सुख स्वरूप मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

द्वन्द्वारामेषु भूतेषु य एको रमते मुनिः।
विद्धि प्रज्ञानतृप्तं तं ज्ञानतृप्तो न शोचति।। शान्ति 329/24

जो मुनि मैथुन आदि विषय भोगों में सुख मानने वाले प्राणियों के बीच अकेला ही आनन्द से रहता है। उसे तत्वज्ञान से तृप्त समझना चाहिये। तत्वज्ञान से तृप्त हुआ ज्ञानी व्यक्ति कभी दुःखी नहीं होता।

विश्वास

स्त्रीषु राजसु सर्पेषु स्वाध्यायप्रभुशत्रुषु।
भोगेष्वायुषि विश्वासं कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति।। उद्योग 37/57

कौन बुद्धिमान पुरुष; स्त्री, राजा, सांप, पढ़े हुए पाठ, समर्थ व्यक्ति, शत्रु, भोग ऐश्वर्यों और आयु पर विश्वास कर सकता है?

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।। शान्ति 138/144

विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति।। उद्योग 38/9

जो विश्वास करने लायक नहीं है उसका विश्वास नहीं करना चाहिये किन्तु विश्वास करने योग्य पुरुष का भी बहुत विश्वास नहीं करना चाहिये क्योंकि विश्वास से पैदा हुआ भय जड़ों को भी काट डालता है।

स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि।
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके।। उद्योग 39/73

स्त्रीलम्पट, आलसी, डरपोक, क्रोधी, पुरुषत्व के अभिमानी, चोर, कृतघ्न और नास्तिक पुरुष का विश्वास नहीं करना चाहिये।

गुणयुक्तेऽपि नैकस्मिन् विश्वसेत विचक्षणः।। शान्ति 24/18

कोई एक व्यक्ति चाहे कितना भी गुणवान क्यों न हो बुद्धिमान पुरुष को उस पर विश्वास नहीं करना चाहिये।

अनित्यचित्तः पुरुषस्तस्मिन् को जातु विश्वसेत्।। शान्ति 80/9

मनुष्य का मन सदा अस्थिर रहता है इसलिये उसपर कौन विश्वास कर सकता है।

एकान्तेन हि विश्वासः कृत्स्नो धर्मार्थनाशकः।
अविश्वासश्च सर्वत्र मृत्युना च विशिष्यते।। शान्ति 80/10

किसी पर भी बहुत विश्वास करने से धर्म और अर्थ नष्ट हो सकता है। किसी पर भी कभी भी विश्वास न करना मृत्यु से बढ़कर है।

अकालमृत्युर्विश्वासो विश्वसन् हि विपद्यते।
यस्मिन करोति विश्वासमिच्छतस्तस्य जीवति।। शान्ति 80/11

दूसरों पर पूरी तरह विश्वास कर लेना अकाल मृत्यु ही होता है। दूसरों पर बहुत विश्वास करने वाला मनुष्य मुसीबत में पड़ जाता है। मनुष्य जिस पर विश्वास करता है उसी की इच्छा के अनुसार उसे चलना भी पड़ता है।

तस्माद् विश्वसितव्यं च शङ्कितव्यं च केषुचित्।। शान्ति 80/12

इसलिये कुछ लोगों पर विश्वास तो करना चाहिये किन्तु उनकी ओर से सावधान भी रहना चाहिये।

विश्वासयेत् परांश्चैव विश्वसेच्च न कस्यचित्।
पुत्रेष्वपि राजेन्द्र विश्वासो न प्रशस्यते।। शान्ति 85/33

राजन्! तुम्हें शत्रुओं के मन में विश्वास पैदा करना चाहिये किन्तु स्वयं किसी का विश्वास नहीं करना चाहिये। अपने पुत्रों पर भी विश्वास करना अच्छा नहीं।

अविश्वासो नरेन्द्राणां गुह्यं परममुच्यते।। शान्ति 85/34

किसी पर भी पूरी तरह विश्वास न करना राजाओं का बहुत गोपनीय गुण है।

नित्यं विश्वासयेदन्यान् परेषां तु न विश्वसेत्।। शान्ति 138/195

स्वयं दूसरों में अपने लिये विश्वास पैदा करे किन्तु दूसरों का विश्वास न करे।

निश्चयः स्वार्थशास्त्रेषु विश्वासश्चासुखोदयः।। शा० 139/70

सभी अच्छे नीति शास्त्रों का यह निश्चित मत है कि विश्वास करने से दुःख मिलता है।

नापरीक्ष्य च विश्वसेद्।। शान्ति 140/43

जाँच पड़ताल किये बिना किसी का विश्वास नहीं करना चाहिये।

द्रोग्धव्यं न च मित्रेषु न विश्वस्तेषु कर्हिचित्।। वन 157/21

अपने मित्रों और विश्वस्त पुरुषों के साथ कभी भी विश्वासघात नहीं करना चाहिये।

को वा समयभेत्तारं बुधः सम्मन्तुमर्हति।। शल्य 64/14

नियम या वचन तोड़ने वाले मनुष्य का कौन बुद्धिमान सम्मान करेगा?

वीरता

माऽऽत्मानमवमन्यस्व मैनमल्पेन बीभरः।
मनः कृत्वा सुकल्याणं मा भैस्त्वं प्रतिसंहर।। उद्योग 133/7

तुम अपने को छोटा मत समझो। इस शरीर का थोड़े से धन से भरण-पोषण मत करो। मन को शुभ संकल्पों से परिपूर्ण करके शत्रु को मारो। डरो मत।

अप्यहेरारुजन् दंष्ट्रामाश्वेव निधनं व्रज।
अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रमः।। उद्योग 133/10

तू शत्रुरूपी सांप के दांत तोड़ता हुआ जल्दी ही प्राण त्याग दे। यदि जीवन के प्रति सन्देह भी हो तो पराक्रम करता हुआ युद्ध कर।

मुहूर्त्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्।। उद्योग 133/15

घड़ी भर के लिये प्रज्वलित रहना अच्छा है किन्तु देर तक धुआँ छोड़ना अच्छा नहीं।

उद्भावयस्व वीर्यं वा तां वा गच्छ गतिं ध्रुवाम्।। उद्योग 133/18

तू अपनी वीरता दिखा अथवा निश्चित गति (मृत्यु) को प्राप्त हो।

कुरु सत्त्वं च मानं च विद्धि पौरुषमात्मनः।। उद्योग 133/21

आत्मसम्मान और बल को प्रकट कर। अपने पौरुष को पहचान।

मा धूमाय ज्वलात्यन्तमाक्रम्य जहि शात्रवान्।
ज्वल मूर्धन्यमित्राणां मुहूर्त्तमपि वा क्षणम्।। उद्योग 133/31

धुआँ मत छोड़। दहक उठ। आक्रमण कर। शत्रुओं को मार डाल। शत्रुओं के सिर पर सवार होकर तू क्षण भर के लिये ही सही शोला बन जा।

सन्तोषो वै श्रियं हन्ति तथानुक्रोश एव च।
अनुत्थानभये चोभे निरीहो नाश्नुते महत्।। उद्योग 133/33

सन्तोष, उद्यम शून्यता, दया और डर ये दोष, सम्पत्ति नष्ट कर देते हैं। निश्चेष्ट मनुष्य कोई पद-प्रतिष्ठा नहीं पा सकता।

आयसं हृदयं कृत्वा मृगयस्व पुनः स्वयम्।। उद्योग 133/34

लोहे का हृदय बनाकर एक बार फिर अपना पौरुष पहिचान।

परं विषहते यस्मात् तस्मात् पुरुष उच्यते।
तमाहुर्व्यर्थ नामानं स्त्रीवद् य इह जीवति।। उद्योग 133/35

जो पर अर्थात् शत्रु का सामना करता है इसीलिये उसे पुरुष कहा जाता है। जो स्त्री की तरह जीता है उसे पुरुष कहना बेकार है।

स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः।
स लोके लभते कीर्त्तिं परत्र च शुभां गतिम्।। उद्योग 133/45

जो मनुष्य अपने बाहुबल के सहारे उत्कृष्ट जीवन व्यतीत करता है उसे इस लोक में यश मिलता है और परलोक में सद्‌गति।

एकशत्रुवधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम्।। उद्योग 134/23

एक शत्रु को भी मार देने से वीर पुरुष की ख्याति हो जाती है।

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः।। उद्योग 135/29

सफलता अवश्य मिलेगी मन में यह दृढ़ निश्चय करके और सदा विषादरहित रहकर उठना चाहिये, जागते रहना चाहिये और कल्याण के काम करने चाहियें।

स हि वीरोन्नतः शूरो यो भग्नेषु निवर्तते।। द्रोण 22/3

वीरों में वही शूरवीर है जो सैनिकों के भाग जाने पर भी लड़ाई के मैदान में लौट कर लड़ने के लिये फिर आ जाता है।

अनुक्त्वा विक्रमेद् यस्तु वै सत्पुरुषव्रतम्।। द्रोण 158/19

जो वीर बातें बनाये बिना पराक्रम दिखाता है वही वीर है। अच्छे लोगों का यही व्रत है।

अनुक्त्वा समरे तात शूरा युध्यन्ति शक्तितः।। कर्ण 24/7

तात! शूरवीर युद्धक्षेत्र में बातें न बनाकर अपनी पूरी शक्ति से लड़ते हैं।

शूरबाहुषु लोकोऽयं लम्बते पुत्रवत् सदा।
तस्मात् सर्वास्ववस्थासु शूरः सम्मानमर्हति।। शान्ति 99/17

जैसे पुत्र सदा पिता पर आश्रित होता है उसी प्रकार यह संसार शूरवीर पुरुषों की भुजाओं पर टिका हुआ है। इसलिये सभी अवस्थाओं में वीर पुरुष का सम्मान करना चाहिये।

न हि शौर्यात् परं किंचित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।
शूरः सर्वं पालयति सर्वं शूरे प्रतिष्ठितम्।। शान्ति 99/18

तीनों लोकों में वीरता से बढ़कर और कुछ नहीं है। वीर पुरुष सब का पालन करता है और सारा जगत शूरवीर पर ही टिका हुआ है।

परस्परज्ञाः संहृष्टास्त्यक्तप्राणाः सुनिश्चिताः।
अपि पञ्चाशतं शूरा निघ्नन्ति परवाहिनीम्।। शान्ति 102/20

एक-दूसरे को जानने वाले, हर्ष और उत्साह से भरे, प्राणों का मोह छोड़ देने वाले तथा मरने मारने का दृढ़ निश्चय कर लेने वाले पचास वीर भी शत्रु सेना को नष्ट कर डालते हैं।

वेद

यानीहागमशास्त्राणि याश्च किंचित् प्रवृत्तयः।
तानि वेदानि पुरस्कृत्य प्रवृत्तानि यथाक्रमम्।। अनु 122/4

इस जगत् में जितने भी शास्त्र हैं और जो कुछ दूसरे काम हैं वे सब वेद को ही सामने रखकर शुरू किये गये हैं।

चरतस्तु समुद्भूता वेदाः साङ्गाः सहोत्तराः।
ताँल्लब्ध्वा मुमुदे ब्रह्मा लोकानां हितकाम्यया।
देहजं तत् तमो घोरं वेदैरेव विनाशितम्।। अनु 145 दा० पा० अ०IX

ब्रह्मा के तपस्या करते समय वेद अपने छह वेदांगों शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द तथा उपनिषदों के साथ प्रकट हुए। इन्हें पाकर ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सभी लोकों का भला करने की इच्छा से वेदों के ज्ञान से मनुष्यों के शरीर के अन्धकार अर्थात् अज्ञान को नष्ट कर दिया।

कार्याकार्यमिदं चेति वाच्यावाच्यमिदं त्विति।
यदि चेन्न भवेल्लोके श्रुतं चारित्रदैशिकम्।।
पशुभिर्निर्विशेषं तु चेष्टन्ते मानुषा अपि।। अनु 145 दा० पा०अ०IX

वेदों का ज्ञान मनुष्यों को क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये तथा क्या बोलना चाहिये और क्या नहीं बोलना चाहिये इन सब बातों को बताता है। यदि संसार में मनुष्य के सदाचार की शिक्षा देने वाला वेद ज्ञान न हो तो मनुष्य, पशुओं के समान व्यवहार करने लगेंगे।

यज्ञादीनां समारम्भः श्रुतेनैव विधीयते।
यज्ञस्य फलयोगेन देवलोकः समृद्ध्यते।। अनु 145 दा० पा०अ०IX

वेदों के मन्त्रों से ही यज्ञ आदि अच्छे काम शुरू किये जाते हैं। यज्ञों के फल के कारण मनुष्यों के देवलोक जाने की सम्भावना बढ़ती है।

प्रीतियुक्ताः पुनर्देवा मानुषाणां भवन्त्युत।
एवं नित्यं प्रवर्धेते रोदसी च परस्परम्।। अनु 145 दा० पा०अ०IX

यज्ञ करने से देवता, मनुष्यों पर प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार देव और मनुष्य स्वर्ग लोक और पृथ्वी लोक में एक दूसरे की उन्नति में सहयोगी बनते हैं।

लोकसंधारणं तस्माच्छ्रुतमित्यवधारय।
ज्ञानाद् विशिष्टं जन्तूनां नास्ति लोकत्रयेऽपि।। अनु 145 दा० पा०अ०IX

हमें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि वेद ज्ञान ही संसार में धर्म को प्रवृत्त करके सारे जगत व्यवहार को सम्हाले हुए है। प्राणियों के लिये वेद ज्ञान से बढ़कर और कोई वस्तु तीनों लोकों में नहीं है।

सम्प्रगृह्य श्रुतं सर्वं कृतकृत्यो भवत्युत।
उपर्युपरि मर्त्यानां देववत् सम्प्रकाशते।। अनु 145 दा० पा०अ०IX

मनुष्य वेदों का सारा ज्ञान पाकर कृतार्थ हो जाता है। ऐसा मनुष्य दूसरे लोगों की अपेक्षा ऊँचा उठकर देवताओं के समान चमकने लगता है।

कामं क्रोधं भयं दर्पमज्ञानं चैव बुद्धिजम्।
तच्छ्रुतं नुदति क्षिप्रं यथा बायुर्बलाहकान्।। अनु 145 दा० पा०अ०IX

जैसे हवा बादलों को उड़ा देती है वैसे ही वेदों का ज्ञान काम, क्रोध, भय, अभिमान और बुद्धि के अज्ञान को नष्ट कर देता है।

भारतं मानवो धर्मो वेदाः साङ्गाश्चिकित्सितम्।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः।। आश्व 92 दा० पा० अ III

महाभारत, मनुस्मृति, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द और निरुक्त इन छह अंगों सहित चारों वेद तथा आयुर्वेद ये चारों शास्त्र ग्रन्थ प्रामाणिक उपदेश देने वाले हैं। इसलिये युक्तियों से इनका खण्डन नहीं करना चाहिये।

तस्मात् तु सर्ववेदानां सावित्री प्राण उच्यते।
निर्जीवा हीतरे वेदा बिना सावित्रिया नृप।। आश्व 92 दा० पा० अ IV

गायत्री सभी वेदों का प्राण कहलाती है। राजन्! गायत्री के बिना सभी वेद निर्जीव हैं।

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां शतावराम्।
सावित्रीं जप कौन्तेय सर्वपापप्रणाशिनीम्।। आश्व 72 दा० पा० अ IV

प्रतिदिन एक हजार गायत्री मन्त्र का जाप उत्तम होता है। सौ मन्त्र का जाप

मध्यम और दस गायत्री का जाप कनिष्ठ माना जाता है। कुन्तीनन्दन! गायत्री मन्त्र सभी पापों को नष्ट कर देता है इसलिये तुम सदा गायत्री का जप करते रहो।

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।
द्वितीयं धर्मशास्त्राणि तृतीयं लोकसंग्रहः।। आश्व 92 दा० पा० अ XV

जो धर्म का तत्त्व जानना चाहते हैं उनके लिये वेद मुख्य प्रमाण हैं। धर्मशास्त्र दूसरी कोटि का तथा लोकाचार या लोकव्यवहार तीसरी श्रेणी का प्रमाण है।

वेदाङ्ग

तिथिनक्षत्रयोगानां मुहूर्तकरणात्मकम्।
कालस्य वेदनार्थं तु ज्योतिर्ज्ञानं पुरानघ।। आश्व 92 दा० पा० अ XVI

हे निष्पाप! तिथि, नक्षत्र, योग, मुहूर्त और करणरूप काल का ज्ञान प्राप्त करने के लिये पहिले ज्योतिष शास्त्र की रचना की गई।

ऋग्यजुः साम मन्त्राणां श्लोकतत्वार्थ चिन्तनात्।
प्रत्यापत्ति विकल्पानां छन्दोज्ञानं प्रकल्पितम्।।

आश्व 92 दा० पा० अ XVI

ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के मन्त्रों के छन्दों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये तथा संशय और विकल्प को मिटाकर वेदमन्त्रों का वास्तविक अर्थ समझने के लिये छन्दशास्त्र की रचना की गई।

वर्णाक्षरपदार्थानां संधिलिङ्गं प्रकीर्तितम्।
नामधातु विवेककार्थं पुरा व्याकरणं स्मृतम्।।

आश्व 92 दा० पा० अ XVI

वर्ण, अक्षर और पदों के अर्थ का, संधि और लिंग का तथा नाम और धातु का ज्ञान पाने के लिये बहुत पहले व्याकरण शास्त्र बनाया गया।

यूपवेद्यध्वरार्थं तु प्रोक्षण श्रपणाय तु।
यज्ञदैवतयोगार्थं शिक्षाज्ञानं प्रकल्पितम्।। आश्व 92 दा० पा० अ XVI

यूप, वेदी और यज्ञ का स्वरूप जानने के लिये जल, के छींटे देकर यज्ञस्थल को पवित्र करने के लिये (प्रोक्षण) और श्रपण अर्थात् चरु (चावलों की आहुति)

को पवित्र करने के लिये (प्रोक्षण) और श्रपण अर्थात् चरु (चावलों की आहुति) पकाने के लिये तथा यज्ञ और देवता के सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करने के लिये शिक्षा- वेदांग की रचना की गई।

यज्ञपात्रपवित्रार्थं द्रव्यसम्भरणाय च।

सर्वयज्ञविकल्पाय पुरा कल्पं प्रकीर्तितम्।। आश्व 92 दा० पा० अ XVI

यज्ञ के पात्रों की शुद्धि, यज्ञ की वस्तुएँ जुटाने तथा यज्ञों की वैकल्पिक पद्धतियों की जानकारी पाने के लिये कल्पशास्त्र की रचना की गई।

नामधातुविकल्पानां तत्त्वार्थनियमाय च।

सर्ववेदनिरुक्तानां निरुक्तमृषिभिः कृतम्।। आश्व 92 दा० पा० अ XVI

सभी वेदों में प्रयुक्त नाम, धातु और विकल्पों के वास्तविक अर्थ का निश्चय करने के लिये ऋषियों ने निरुक्त शास्त्र की रचना की।

वैर

वैरं विकारं सृजति तद् वै शस्त्रमनायसम्।। सभा 56/11

वैर से झगड़ा खड़ा हो जाता है। वैर तो बिना लोहे का हथियार है।

स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना न वै भिन्ना जातु निद्रां लभन्ते।

न स्त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवन्ति न मागधैः स्तूयमाना न सूतैः।।

उद्योग 36/55

राजन्! आपस में वैर रखने वालों को अच्छे बिछौनों पर भी नींद नहीं आती। उन्हें स्त्रियों का साथ और चारणों की स्तुति भी अच्छी नहीं लगती।

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः।

न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति।। उद्योग 36/56

फूट रखने वाले धर्म का पालन नहीं करते। उन्हें सुख और सम्मान भी नहीं मिलता। उन्हें शान्ति की बात अच्छी नहीं लगती।

न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तं योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम्।

भिन्नानां वै मनुजेन्द्र परायणं न विद्यते किंचिदन्यद् विनाशात्।।

उद्योग 36/57

परस्पर वैरियों को भलाई की बात अच्छी नहीं लगती। उनका योग और क्षेम भी सिद्ध नहीं होता। राजन्! ऐसे लोगों की विनाश के सिवाय और कोई गति नहीं होती।

महते योऽपकाराय नरस्य प्रभवेन्नरः।
तेन वैरं समासज्य दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत्।। उद्योग 37/56

जो मनुष्य की बहुत हानि कर सकता है ऐसे व्यक्ति के साथ वैर ठान कर यह समझकर निश्चिन्त नहीं हो जाना चाहिये कि मैं उससे दूर हूँ।

वैरसंदीपनावेतौ लोभामर्षौ नराधिप।। शान्ति 107/10

राजन्! लोभ और ईर्ष्या ये दो दोष ही वैर बढ़ाते हैं।

सकृत् कृतापराधस्य तत्रैव परिलम्बतः।
न तद् बुधाः प्रशंसन्ति श्रेयस्तत्रापसर्पणम्।। शान्ति 139/25

एक बार किसी का अपराध करके उसी के पास रहने को विद्वान अच्छा नहीं समझते। वहाँ से अपराधी का चले जाना ही अच्छा होता है।

सान्त्वे प्रयुक्ते सततं कृतवैरे न विश्वसेत्।
क्षिप्रं स वध्यते मूढो न हि वैरं प्रशाम्यति।। शान्ति 139/26

एक बार किसी से वैर हो जाने पर उसकी मीठी बातों का विश्वास नहीं करना चाहिये। विश्वास करने से अपराधी जल्दी ही मारा जाता है क्योंकि वैर की आग बुझती नहीं।

सर्वेषां कृतवैराणामविश्वासः सुखोदय।। शान्ति 139/28

आपस में वैर रखने वाले सभी के लिये यही बात सुख देने वाली होती है कि वे एक-दूसरे का विश्वास न करें।

अन्योन्यकृतवैराणां न सन्धिरुपपद्यते।। शान्ति 139/31

जब आपस में वैर हो जाय तब सुलह करना ठीक नहीं होता।

नास्ति वैरमतिक्रान्तं सान्त्वितोऽस्मीति नाश्वसेत्।
विश्वासद् वध्यते लोके तस्माच्छ्रेयोऽप्यदर्शनम्।। शा० 139/38

वैर कभी खत्म नहीं होता। शत्रु ने मुझे तसल्ली दे दी है यह सोच कर शत्रु पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये। किसी का बहुत विश्वास कर लेने से अपनी जान भी गंवानी पड़ती है इसलिये शत्रु को अपना मुँह दिखाना भी अच्छा नहीं होता।

अन्योन्यकृतवैराणां संवासान्मृदुतां गतम्।
नैव तिष्ठति तद् वैरं पुष्करस्थमिवोदकम्।। शान्ति 139/41

एक दूसरे से वैर करने वाले भी यदि एक साथ रहने लगते हैं तो उनका वैर कम होकर उसी तरह समाप्त हो जाता है जैसे कमल के पत्ते पर पड़ा हुआ पानी नहीं ठहर पाता है।

वैरं पञ्चसमुत्थानं तच्च बुध्यन्ति पण्डिताः।
स्त्रीकृतं वास्तुजं वाग्जं ससापत्नापराधजम्।। शान्ति 139/42

वैर पांच कारणों से होता है यह बात बुद्धिमान अच्छी तरह जानते हैं। स्त्री के लिये, घर और जमीन आदि वस्तुओं के लिये, कड़वी बात कहने से, अपनी जाति के द्वेष के कारण या किसी अपराध के फलस्वरूप इन पाँच कारणों से वैर हो जाता है।

कृतवैरे न विश्वासः कार्यस्त्विह सुहृद्यपि।
छन्नं संतिष्ठते वैरं गूढोऽग्निरिव दारुषु।। शान्ति 139/44

जिसने वैर बांध लिया हो यदि वह व्यक्ति अपना मित्र भी हो तब भी उस पर विश्वास नहीं करना चाहिये। क्योंकि जैसे लकड़ियों में आग छिपी रहती है उसी तरह वैरी के हृदय में वैर छिपा रहता है।

न हि वैराग्निरुद्भूतः कर्म चाप्यपराधजम्।
शाम्यत्यदग्ध्वा नृपते विना ह्येकतर क्षयात्।। शान्ति 139/46

राजन्! भड़की हुई वैर की आग और अपराध का काम किसी एक पक्ष को खत्म किये बिना शान्त नहीं होता।

वैरमन्तिकमासाद्य यः प्रीतिं कर्तुमिच्छति।
मृन्मयस्येव भग्नस्य यथा सन्धिर्न विद्यते।। शान्ति 139/69

मरणान्तक वैर ठन जाने पर जो व्यक्ति मित्रता करना चाहता है वह उसी तरह मेल नहीं कर सकता जैसे मिट्टी का बर्त्तन टूटने पर नहीं जुड़ता।

न हि वैराणि शाम्यन्ति कुले दुःखगतानि च।
आख्यातारश्च विद्यन्ते कुले वै ध्रियते पुमान्।। शान्ति 139/72

किसी कुल में दुःखदायी वैर बंध जाने पर समाप्त नहीं हो पाता क्योंकि वैर को याद दिलाने वाले व्यक्ति कुल में जीवित रहते ही हैं।

उपगृह्य तु वैराणि सान्त्वयन्ति नराधिप।
अथैनं प्रतिपिंषन्ति पूर्णं घटमिवाश्मनि।। शान्ति 139/73

राजन्! दुष्ट लोग वैर बांधकर शत्रु को दिखावे के लिये शान्त करते रहते हैं किन्तु अवसर मिलते ही वे शत्रु को उसी तरह मिट्टी में मिला देते हैं जैसे पानी से भरे घड़े को पत्थर पर पटक कर तोड़ दिया जाता है।

गुरूणां वैर निर्बन्धो न कर्तव्यः कथंचन।। अनु 145 दा० पा० अ०XI

गुरुजनों के साथ कभी वैर नहीं बांधना चाहिये।

वैराग्य

त्यागवांश्च पुनः पापं नालंकर्तुमिति श्रुतिः।
त्यागवाञ्जन्म मरणे नाप्नोति श्रुतिर्यदा।। शान्ति 7/38

श्रुति अर्थात् वेद के अनुसार संसार से विरक्त हो जाने वाला पुरुष पाप नहीं कर सकता। वह जन्म और मृत्यु के बन्धन में भी नहीं पड़ता।

प्राप्तवर्त्मा कृतमतिर्ब्रह्म सम्पद्यते तदा।
स धनंजय निर्द्वन्द्वो मुनिर्ज्ञानसमन्वितः।। शान्ति 7/39

अर्जुन! विरक्त पुरुष को मोक्ष का मार्ग मिल जाता है। वह ज्ञानी बनकर, स्थिर बुद्धि रहकर और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में न पड़कर मुनिवृत्ति से जीवन व्यतीत करता हुआ ब्रह्म को साक्षात् कर लेता है।

निर्विद्यति नरः कामान्निर्विद्य सुखमेधते।
त्यक्त्वा प्रीतिं च शोकं च लब्ध्वा बुद्धिमयं वसु।। शान्ति 104/7

मनुष्य को विषय भोगों से जब वैराग्य हो जाता है तब वह हर्ष और शोक छोड़कर तथा ज्ञानरूपी धन पाकर नित्य सुख अनुभव करता है।

अनागतं यन्न ममेति विद्यादतिक्रान्तं यन्न ममेति विद्यात्।

दिष्टं बलीय इति मन्यमानास्ते पण्डितास्तत्सतां स्थानमाहुः।।

शा० 104/22

जो चीज भविष्य में मिलने वाली है उसे यही समझे कि वह मेरी नहीं है। इसी तरह जो वस्तु नष्ट हो चुकी है उसे भी यह समझे कि वह मेरी नहीं थी। भाग्य ही बलवान है यह मानने वाले विद्वानों को सज्जनों की शरण कहा गया है।

अनागतमतीतं च याथातथ्यविनिश्चयात्।
नानुशोचेत कौसल्य सर्वार्थेषु तथा भव।। शान्ति 104/27

कोसल राज! यथार्थ तत्त्व का पता चल जाने पर मनुष्य भविष्य की और भूतकाल की किसी भी वस्तु के लिये शोक नहीं करता। तुम भी शोक मत करो।

श्रियं च पुत्रपौत्रं च मनुष्या धर्मचारिणः।
योगधर्मविदो धीरा स्वयमेव त्यजन्त्युत।। शान्ति 104/34

योग धर्म को जानने वाले धैर्यशाली धर्मात्मा पुरुष अपनी सम्पत्ति और बेटे पोतों को स्वयं त्याग देते हैं।

धनं वा पुरुषो राजन् पुरुषं वा पुनर्धनम्।
अवश्यं संजहात्येव विद्वान् तद् कोऽनुसंज्वरेत्।। शान्ति 104/45

राजन्! या तो मनुष्य धन को छोड़ देता है अथवा धन ही पुरुष को छोड़ देता है इसलिये एक दिन ऐसा अवश्य होगा ही यह सोचकर क्या विद्वान पुरुष धन के लिये शोक और चिन्ता करेगा?

यो वै न पापे निरतो न पुण्ये नार्थे न धर्मे मनुजो न कामे।
विमुक्तदोषः समलोष्टकाञ्चनो विमुच्यते दुःखसुखार्थसिद्धेः।।

शान्ति 167/44

जो मनुष्य पाप-पुण्य, धर्म, अर्थ और काम में नहीं लगा हुआ है। सब तरह के दोषों से रहित ऐसे पुरुष के लिये सोना और मिट्टी समान ही होते हैं। वह सुख और दुःख देने वाली बातों से भी ऊपर उठ जाता है।

स्नेहेन युक्तस्य न चास्ति मुक्तिरिति स्वयम्भूर्भगवानुवाच।
बुधाश्च निर्वाणपरा भवन्ति तस्मान्न कुर्यात् प्रियमप्रियं च।।

शान्ति 167/46

स्वयम्भू भगवान ब्रह्माजी का कहना है कि जिस पुरुष के मन में कोई लगाव रहता है उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। स्नेह और आसक्ति से रहित विद्वान पुरुष ही मुक्त हो पाते हैं। इसलिये किसी का भला बुरा न करे।

यथा यथा च पर्येति लोकतन्त्रमसारवत्।
तथा तथा विरागोऽत्र जायते नात्र संशयः।। शान्ति 174/4

मनुष्य को जैसे जैसे इस संसार की असारता का ज्ञान होता जाता है वैसे वैसे ही उसमें वैराग्य बढ़ने लगता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

आत्मापि चायं न मम सर्वा वा पृथिवी मम।
यथा मम तथाऽन्येषमिति चिन्त्य न मे व्यथा।
एतां बुद्धिमहं प्राप्य न प्रहृष्ये न च व्यथे।। शान्ति 174/14

यह शरीर भी मेरा नहीं है। यह सारी पृथ्वी भी मेरी नहीं है। संसार की वस्तुएँ जैसे मेरी हैं वैसे ही दूसरों की भी हैं। यह समझ कर मैं न तो प्रसन्न होता हूँ और न ही दुखी।

किं ते धनैर्बान्धवैर्वापि किं ते किं ते दारै र्ब्राह्मण यो मरिष्यसि।

आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं पितामहास्ते क्व गताः पिता च।।

शान्ति 175/38

ब्राह्मण! तुम एक दिन मर जाओगे फिर इस धन से, सम्बन्धियों से और स्त्री से क्या भला होगा। अपनी हृदयरूपी गुफा में विराजमान परमात्मा की खोज करो। सोचिये आपके पिता और पितामह कहां चले गये?

तस्मान्निर्वेद एवेह गन्तव्यः सुखमिच्छता।
सुखं स्वपिति निर्विण्णो निराशश्चार्थसाधने।। शान्ति 177/14

इसलिये सुख चाहने वाले पुरुष को वैराग्य का ही सहारा लेना चाहिये। धन कमाने से निराश हुआ व्यक्ति विरक्त होकर चैन की नींद सोता है।

निवर्तस्व विधित्साभ्यः शाम्य निर्विद्य कामुक।
असकृच्चासि निकृतो न च निर्विद्यसे ततः।। शान्ति 177/18

अरे कामनाओं के दास मेरे मन! तू सभी तरह की चेष्टएँ छोड़ दे और विरक्त होकर शान्त रह। तू धन और यश आदि कमाने के प्रयत्न बार-बार करके ठगा गया है फिर भी तुझे इनसे विरक्ति क्यों नहीं होती?

निर्वेदादेव निर्वाणं न च किञ्चिद् विचिन्तयेत्।
सुखं वै ब्राह्मणो ब्रह्म निर्वेदेनाधिगच्छति।। शान्ति 189/17

वैराग्य से ही मोक्ष मिलता है। मनुष्य को किसी भी सांसारिक वस्तु में मन नहीं लगाना चाहिये। वैराग्य होने पर ब्राह्मण बहुत सरलता से परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

विज्ञानार्थे हि पञ्चानामिच्छा पूर्वं प्रवर्तते।
प्राप्यैकं जायते कामो द्वेषो वा भरतर्षभ।। शान्ति 273/3

भरतश्रेष्ठ! मनुष्य के मन में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँच विषयों का अनुभव करने की पहले इच्छा होती है। इन पाँच विषयों में से किसी एक को पाकर उस विषय के प्रति लगाव (राग) या द्वेष होता है।

ततस्तदर्थं यतते कर्म चारभते महत्।
इष्टानां रूपगन्धानामभ्यासं च चिकीर्षति।। शा० 273/4

फिर जिस विषय के प्रति लगाव होता है उसे पाने के लिये मनुष्य प्रयत्न करता है। वह अपने को अच्छे लगने वाले रूप, गन्ध आदि विषय को बार-बार भोगना चाहता है।

ततो रागः प्रभवति द्वेषश्च तदनन्तरम्।
ततो लोभः प्रभवति मोहश्च तदनन्तरम्।। शान्ति 273/5

किसी विषय को भोगने से उसके प्रति मन में राग पैदा हो जाता है और प्रतिकूल विषय से द्वेष होने लगता है। फिर अनुकूल विषय के लिये लोभ होने लगता है और लोभ के बाद मोह मनुष्य के मन पर अधिकार कर लेता है।

लोभमोहाभिभूतस्य रागद्वेषान्वितस्य च।
न धर्मे जायते बुद्धिर्व्याजाद् धर्मं करोति च।। शा० 273/6

लोभ और मोह में पड़े हुए और राग-द्वेष से बंधे हुए मनुष्य की बुद्धि धर्म में नहीं लगती। वह किसी न किसी बहाने दिखावे के लिये धर्म का आचरण करता है।

व्याजेन चरते धर्ममर्थं व्याजेन रोचते।
व्याजेन सिद्ध्यमानेषु धनेषु कुरुनन्दन।। शान्ति 273/7

कुरुनन्दन! वह व्यक्ति किसी बहाने ही धर्म करता है और छल-कपट से ही धन कमाना चाहता है। यदि कपट से धन कमाने में उसे सफलता मिल गई-

तत्रैव कुरुते बुद्धिं ततः पापं चिकीर्षति।
सुहृद्भिर्वार्यमाणोऽपि पण्डितैश्चापि भारत।। शान्ति 273/8

तो वह छल-कपट में ही बुद्धि लगा देता है। फिर वह मित्रों और विद्वानों के मना करने पर भी पाप ही करना चाहता है।

य एतान् प्रज्ञया दोषान् पूर्वमेवानुपश्यति।। शा० 273/13

कुशलः सुखदुःखानां साधूंश्चाप्यथ सेवते।
तस्य साधुसमाचारादभ्यासाच्चैव वर्धते।। शान्ति 273/14

जो पुरुष अपनी बुद्धि से राग द्वेषादि बुराइयों को पहले ही देख लेता है वह

सुख-दुःख को समझने में कुशल होता है। फिर वह श्रेष्ठ पुरुषों का संग करता है। उनके सत्संग से और सत्कर्मों के अभ्यास से उस व्यक्ति की बुद्धि बढ़ती है।

प्रज्ञा धर्मे च रमते धर्मं चैवोपजीवति।
सोऽथ धर्मादवाप्तेषु धनेषु कुरुते मनः।। शा० 273/15

उस की बुद्धि धर्म में सुख मानती है और वह धर्म का ही सहारा लेती है। ऐसा व्यक्ति धर्म से प्राप्त धन को ही पाना चाहता है।

तस्यैव सिञ्चते मूलं गुणान् पश्यति तत्र वै।
धर्मात्मा भवति ह्येवं मित्रं च लभते शुभम्।। शान्ति 273/16

वह जहाँ गुणों को देखता है उसी के मूल को सींचता है। ऐसा कर के वह धर्मात्मा बन जाता है और उसे अच्छे मित्र मिल जाते हैं।

स मित्रधनलाभात् तु प्रेत्य चेह च नन्दति।
शब्दे स्पर्शे रसे रूपे तथा गन्धे च भारत।। शान्ति 273/17

भारत! अच्छे मित्र और धन मिलने से वह इहलोक में और परलोक में सुखी होता है। ऐसा पुरुष, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँचों विषयों पर-

प्रभुत्वं लभते जन्तुर्धर्मस्यैत् फलं विदुः।। शा० 273/18

अधिकार पा लेता है। यह धर्म का फल माना जाता है।

अतृप्यमाणो निर्वेदमादत्ते ज्ञानचक्षुषा।
प्रज्ञाचक्षुर्यदा कामे रसे गन्धे न रज्यते।। शान्ति 273/19

शब्दे स्पर्शे तथा रूपे न च भावयते मनः।
विमुच्यते तदा कामान्न च धर्मं विमुञ्चति।। शान्ति 273/20

किन्तु वह विषयभोगों से तृप्त न होने के कारण अपने ज्ञान के नेत्र से वैराग्य को अपना लेता है। बुद्धिरूपी चक्षु के खुल जाने पर जब कामोपभोगों, रस, रूप, गन्ध, शब्द और स्पर्श के विषय भोगों में भी उसका मन नहीं लगता तब वह सब तरह की कामनाओं और इच्छाओं को त्याग देता है किन्तु धर्माचरण को नहीं छोड़ता।

सर्वत्यागे च यतते दृष्ट्वा लोकं क्षयात्मकम्।
ततो मोक्षाय यतते नानुपायादुपायतः।। शान्ति 273/21

शनैर्निर्वेदमादत्ते पापं कर्म जहाति च।
धर्मात्मा चैव भवति मोक्षं च लभते परम्।। शान्ति 273/22

संसार की सभी वस्तुओं को नष्ट हो जाने वाला देखकर वह मन से अपनी सभी वस्तुओं का त्याग करने का प्रयत्न करता है। फिर वह अनुचित उपाय न अपनाकर उचित उपाय से मोक्ष पाने का प्रयत्न करता है। उसे धीरे-धीरे वैराग्य होने लगता है। वह पाप कर्मों को छोड़ देता है। ऐसा व्यक्ति धर्मात्मा बनकर मोक्ष पा लेता है।

शरीर गृहसंज्ञस्य शौच तीर्थस्य देहिनः।
बुद्धिमार्ग प्रयातस्य सुखं त्विह परत्र च।। शान्ति 298/36

जिस व्यक्ति का शरीर ही घर है और शरीर के बाहर तथा भीतर की पवित्रता ही तीर्थस्थल है तथा जो बुद्धिपूर्वक कल्याण मार्ग पर चलता है उसे इसलोक में और परलोक में सुख मिलता है।

सर्वारम्भपरित्यागी निराशी र्निष्परिग्रहः।
येन सर्वं परित्यक्तं स विद्वान् स च पण्डितः।। शान्ति 329/14

जो व्यक्ति कोई भी काम शुरू करने का संकल्प छोड़ चुका है। जिसके मन में कोई इच्छा नहीं बच रही है। जिसने सब कुछ छोड़ दिया है और जो किसी वस्तु का संग्रह नहीं करता। वही विद्वान् और आत्मज्ञानी है।

जायमानांश्च सम्प्रेक्ष्य म्रियमाणांस्तथैव च।
न संवेगोऽस्ति चेत् पुंसः काष्ठलोष्ठसमो हि सः।।

अनु 145 दा० पा० अ०XIV

संसार में पैदा होने वालों और मरने वालों को देखकर भी यदि मनुष्य को वैराग्य नहीं होता तो वह लकड़ी और मिट्टी के ढेले जैसा ही है।

दोषदर्शी भवेत् तत्र यत्र रागः प्रवर्तते।
अनिष्टवर्धितं पश्येत् तदा क्षिप्रं विरज्यते।। शान्ति 330/6

जहाँ चित्त की आसक्ति या लगाव बढ़ने लगे उस व्यक्ति या वस्तु को दोषपूर्ण समझना चाहिये और उसे अनिष्ट बढ़ाने वाला मानना चाहिये। ऐसा करने पर शीघ्र ही वैराग्य हो जाता है।

एवं चिन्तयतो नित्यं सर्वार्थानामनित्यताम्।
उद्वेगो जायते शीघ्रं निर्वाणस्य परस्परम्।।
तेनोद्वेगेन चाप्यस्य विमर्शो जायते पुनः।
विमर्शो नाम वैराग्यं सर्वद्रव्येषु जायते।।

वैराग्येण परां शान्तिं लभन्ते मानवाः शुभे।
मोक्षस्योपनिषद् दिव्यं वैराग्यमिति निश्चितम्।।
अनु 145 दा० पा० अ०XIV

संसार के सभी पदार्थ किसी न किसी दिन नष्ट जायेंगे सदा यह सोचते-सोचते मनुष्य का मन संसार से हटने लगता है और उसे अपने साथियों से भी उदासीनता होने लगती है। इस संसार के सभी पदार्थों से विरक्ति ही विमर्श कहलाती है। हे शुभे! वैराग्य से मनुष्यों को बहुत शान्ति प्राप्त होती है। वैराग्य, मुक्ति का गूढ़, रहस्यमय और दिव्य साधन निश्चित रूप से है।

जातीमरणरोगैश्च समाविष्टः प्रधानंवित्।
चेतनावत्सु चैतन्यं समं भूतेषु पश्यति।। -आश्व 18/33
निर्विद्यते ततः कृत्स्नं मार्गमाणः परं पदम्।

जो व्यक्ति जन्म, मृत्यु और रोगों से घिरा रहने पर भी प्रधान तत्व (प्रकृति) को जानता है और सभी चेतन प्राणियों में चैतन्य को एक जैसा समझता है वह परम पद की खोज में लगकर भोगों से विरक्त हो जाता है।

वैभव

अव्यापारः परार्थेषु नित्योद्योगः स्वकर्मसु।
रक्षणं समुपात्तानामेतद् वैभव लक्षणम्।। सभा 54/7

दूसरों के धन को हड़पने का प्रयत्न न करना, अपने कामों को पूरा करने के लिये सदा प्रयत्न करना और प्राप्त धन की रक्षा करना वैभव का लक्षण है।

प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्रीर्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान्।। सभा 75/10

क्रूर उपायों से प्राप्त सम्पत्ति नष्ट हो जाती है किन्तु उचित उपायों से बढ़ी हुई धन सम्पत्ति का उपयोग पुत्र-पौत्र भी करते हैं।

सुप्रज्ञमपि चेच्छूरमृद्धिर्मोहयते नरम्।
वर्तमानः सुखे सर्वो मुह्यतीति मतिर्मम।। वन 181/30

समृद्धि और सम्पत्ति से विद्वान् और शूरवीर भी विवेकहीन हो जाते हैं। मेरे विचार से ऐश्वर्य में डूबे मनुष्यों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

वैश्य

वैश्योऽधिगम्य वित्तानि ब्रह्मकर्माणि कारयेत्।। विगट 50/6

वैश्य, धन कमाकर ब्राह्मणों से यज्ञ आदि वेद सम्मत कार्य कराये।

वैश्योऽधीत्य कृषिगोरक्षपण्यैर्वित्तं चिन्वन् पालयन्नप्रमत्तः।।

उद्योग 29/25

वैश्य अध्ययन करके कृषि, गोपालन और व्यापार से धन कमाकर उसकी सावधान होकर रक्षा करे।

दानातिथ्य क्रियाधर्मै यान्ति वैश्याश्च सद्गतिम्।। वन 150/51

दान और अतिथि सत्कार जैसे धार्मिक कार्यों से वैश्य उत्तम गति पाते हैं।

कृषिश्च पाशुपाल्यं च विशां दानं च धर्मतः।। कर्ण 32/47

खेती, पशुपालन और धर्मानुसार दान देना वैश्यों का काम है।

अदक्षो निन्द्यते वैश्यः।। सौप्तिक 3/20

जो वैश्य वाणिज्य व्यापार में चतुर नहीं होता उसे अच्छा नहीं माना जाता।

गोभ्योर्वृत्ति समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः।
स्वधर्मान् नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः।। शान्ति 188/12

जो ब्राह्मण अपने धर्मों का पालन नहीं करते अपितु पशुपालन और खेती करके अपना पेट भरते हैं और इन कामों के कारण जिनके शरीर का रंग पीला हो जाता है वे ब्राह्मण, वैश्य कहलाते हैं।

वणिज्या पशुरक्षा च कृष्यादानरतिः शुचिः।
वेदाध्ययनसम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः।। शान्ति 189/6

जो व्यक्ति वेद पढ़ता है, व्यापार, पशुपालन और खेती करके अन्न का संग्रह करता है। जिसका आचार-विचार शुद्ध है। वह वैश्य कहलाता है।

तथैव देवि वैश्याश्च लोकयात्राहिताः स्मृताः।
अन्ये तानुपजीवन्ति प्रत्यक्षफलदा हि ते।। अनु 141 दा० पा०

देवि! इसी प्रकार वैश्य भी लोगों के निर्वाह में सहायक होते हैं। दूसरे वर्णों के लोग अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र उन्हीं के सहारे अपना जीवन निर्वाह करते हैं। वैश्य प्रत्यक्ष ही फल देने वाले होते हैं।

शक्ति

वीर्यश्रेष्ठाश्च राजानो बलं धर्मोऽनुवर्तते।। आदि 135/19

बल और पराक्रम में श्रेष्ठ व्यक्ति ही राजा होता है। धर्म भी बलशाली का साथी होता है।

शूराणां च नदीनां च दुर्विदाः प्रभवाः किल।। आदि 136/11

वीर पुरुषों और नदियों की उत्पत्ति का स्थान जानना बहुत कठिन होता है।

स्वको हि धर्मः शूराणां विक्रमः पार्थिवर्षभ।। आदि 201/18

श्रेष्ठराजन्! पराक्रम करना ही वीरों का धर्म है।

अनारम्भपरो राजा वल्मीक इव सीदति।
दुर्बलश्चानुपायेन बलिनं योऽधितिष्ठति।। सभा 15/11

महाराज! जो राजा कुछ भी नहीं करता तथा जो राजा दुर्बल होते हुए भी उचित उपाय अपनाये बिना बलवान से भिड़ जाता है। ये दोनों दीमकों की बाम्बी की तरह नष्ट हो जाते हैं।

कृतवीर्य कुले जातो निर्वीर्यः किं करिष्यति।
नीर्वीर्ये तु कुले जातो वीर्यवांस्तु विशिष्यते।। सभा 16/9

पराक्रमी के कुल में उत्पन्न कमजोर व्यक्ति क्या करेगा? किन्तु निर्बल कुल में जन्म लेकर भी बलवान पुरुष ही श्रेष्ठ माना जाता है।

दैन्यं यथा बलवति तथा मोहो बलान्विते।
तावुभौ नाशकौ हेतू राज्ञा त्याज्यौ जयार्थिना।। सभा 16/14

जैसे बलवान पुरुष में दीनता होना बहुत बड़ा दोष है वैसे ही बलवान में मोह का होना भी दुर्गुण है। दीनता और मोह ये दोनों विनाश के कारण होते हैं अतः विजय चाहने वाले राजा को ये दोनों छोड़ देने चाहियें।

राज्ञां हि बलमैश्वर्यं ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम्।
रूपयौवन सौभाग्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम्।। शान्ति 320/73

राजाओं का बल ऐश्वर्य है। ब्राह्मणों का बल ब्रह्मज्ञान है। स्त्रियों की सर्वोत्कृष्ट शक्ति उनका रूप, यौवन और सौभाग्य है।

सर्वं बलवतां पथ्यं सर्वं बलवतां शुचि।
सर्वं बलवतां धर्मः सर्वं बलवतां स्वकम्।। आश्रमवास 30/24

बलवानों का सब कुछ ठीक और लाभदायक होता है। बलवानों की सभी बातें उचित मानी जाती हैं। बलवानों का हर काम धर्म माना जाता है। और बलवानों के लिये संसार की सभी वस्तुएँ उनकी अपनी हैं।

शम

शम एव यतीनां हि क्षमिणां सिद्धिकारकः।
क्षमावतामयं लोकः परश्चैव क्षमावताम्।। आदि 42/9

क्षमाशील साधकों को शम (मनोनिग्रह) से सिद्धि प्राप्त होती है। क्षमा करने वाले ही इस लोक में और परलोक में सुखी रहते हैं।

शममेव परं मन्ये शमात् क्षेमं भवेन्मम।। सभा 15/5

मैं मन और इन्द्रियों के संयम को ही सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ। इसी से मेरा भला होगा।

प्रजानां सन्धिमूलं हि शमम्।। वन 29/29

लोगों के बीच समझौता और सुलह शान्ति से ही होती है।

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं विधित्सावेगमुदरोपस्थवेगम्।
एतान् वेगान् यो विषहेदुदीर्णांस्तं मन्येऽहं ब्राह्मणं वै मुनिं च।।
शान्ति 299/14

जो व्यक्ति, वाणी, मन, क्रोध, तृष्णा, पेट तथा जननेन्द्रिय के प्रचण्ड वेगों को सहन कर लेता है उसी को मैं सच्चा ब्राह्मण और मुनि मानता हूँ।

अक्रोधनः क्रुध्यतां वै विशिष्टस्तथा तितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः।
अमानुषान्मानुषो वै विशिष्टस्तथाज्ञानाज्ज्ञानविद् वै विशिष्टः।।
शान्ति 299/15

क्रोधी मनुष्यों की अपेक्षा क्रोध न करने वाला श्रेष्ठ है। सहन न करने वाले की तुलना में सहन करने वाला अच्छा है। मनुष्येतर प्राणियों से मनुष्य श्रेष्ठ है और अज्ञानी पुरुष के मुकाबले ज्ञानी पुरुष श्रेष्ठ होता है।

अतीतेष्वनपेक्षा ये प्राप्तेष्वर्थेषु निर्ममाः।
शौचमेव परं तेषां येषां नोत्पद्यते स्पृहा।। अनु 108/10

जो बीते हुए या नष्ट हुए पदार्थों आदि की इच्छा नहीं करते, मिली हुई वस्तुओं के प्रति ममता रहित होते हैं तथा जिनके मन में कभी कोई इच्छा पैदा नहीं होती वे ही परम पवित्र होते हैं।

शमस्तू परमो धर्मः प्रवृत्तः सत्सु नित्यशः।
गृहस्थानां विशुद्धानां धर्मस्य निचयो महान्।। अनु 141/70

सभी विषय वासनाओं से मुँह मोड़ लेना शम कहलाता है। सत्पुरुषों में शम सदा दिखाई देता है। इसका पालन करने से शुद्ध मन वाले गृहस्थों को धर्म की बहुत सम्पत्ति मिलती है।

शरणागत

न तस्य बीजं रोहति रोहकाले न तस्य वर्षं वर्षति वर्षकाले।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे न स त्रातारं लभते त्राणमिच्छन्।।

उद्योग 12/19

जो मनुष्य डरे हुए शरणागत को शत्रु के सुपुर्द कर देता है उसका बोया हुआ बीज समय आने पर नहीं उगता, उसके यहां ठीक समय पर वर्षा नहीं होती और जब कभी वह अपनी रक्षा कराना चाहता है तब कोई उसकी रक्षा नहीं करता।

मोघमन्नं विन्दति चाप्यचेताः स्वर्गाल्लोकाद् भ्रश्यति नष्टचेष्टः।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति यो वै न तस्य हव्यं प्रतिगृह्णन्ति देवाः।।

उद्योग 12/20

जो मनुष्य भयभीत शरणागत को शत्रु के हाथों में दे देता है ऐसा विवेकरहित पुरुष जो अन्न खाता है वह व्यर्थ जाता है। वह स्वर्ग से गिर जाता है। उसके सभी कार्य व्यर्थ हो जाते हैं और उसकी हवि देवता ग्रहण नहीं करते हैं।

प्रमीयते चास्य प्रजा ह्यकाले सदा विवासं पितरोऽस्य कुर्वते।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे सेन्द्रा देवाः प्रहरन्त्यस्य वज्रम्।।

उद्योग 12/21

जो भयभीत शरणागत को शत्रु को सौंप देता है उसकी सन्तान की अकाल

मृत्यु हो जाती है। उसके पितर सदा नरक में रहते हैं और इन्द्र सहित सभी देवता उस पर वज्र की मार करते हैं।

शरणागतस्य कर्त्तव्यमातिथ्यं हि प्रयत्नतः।। शान्ति 146/6

घर में शरण लेने वाले का भली-भाँति अतिथि सत्कार करना चाहिये।

न निष्कृतिर्भवेत् तस्य यो हन्याच्छरणागतम्।। शान्ति 149/19

जो व्यक्ति शरणागत को मार देता है उसकी इस पाप से कभी मुक्ति नहीं होती।

भवेत् स गुरुतल्पी च ब्रह्महा च स वै भवेत्।
सुरापानं स कुर्याच्च यो हन्याच्छरणागतम्।। अनुशासन 96/11

जो व्यक्ति शरण में आये हुए को मार डालता है उसे गुरुपत्नी गमन, ब्रह्महत्या और मदिरापान का पाप लगता है।

शरीर

शरीरं पुरमित्याहुः स्वामिनी बुद्धिरिष्यते।
तत्त्वबुद्धेः शरीरस्थं मनो नामार्थचिन्तकम्।। शान्ति 254/9

इस शरीर को पुर कहते हैं। बुद्धि इस नगर की रानी है। शरीर में रहने वाला मन, निश्चय करने वाली बुद्धि के कामों को सफल बनाने के बारे में विचार करने वाला है।

इन्द्रियाणि मनः पौरास्तदर्थं तु पराकृतिः।
तत्र द्वौ दारुणौ दोषौ तमो नाम रजस्तथा।
तदर्थमुपजीवन्ति पौराः सह पुरेश्वरैः।। शान्ति 254/10

इन्द्रियाँ इन नगर में रहने वाली प्रजा हैं। वे मन की आज्ञा से काम करती हैं। इन्द्रियों की रक्षा के लिये मन को बड़े बड़े काम करने पड़ते हैं। शरीररूपी नगर में दो बड़े दोष हैं जिन्हें रजोगुण और तमोगुण कहा जाता है। इस नगर के शासकों मन, बुद्धि और जीव के साथ सारी पुरवासी इन्द्रियाँ मन के द्वारा प्रस्तुत शब्द, स्पर्श, रस, रूप आदि विषयों का उपभोग करती हैं।

एक प्रसूयते राजन्नेक एव विनश्यति।। अनु 111/11

एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम्।

राजन्! प्राणी अकेला ही संसार में जन्म लेता है और अकेला ही मरता है। प्राणी अकेला ही दुखों से पार होता है और अकेला ही दुर्गति में पड़ता है।

असहायः पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरुः।। अनु 111/12
ज्ञातिसम्बन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च।

माता-पिता, भाई, पुत्र, गुरु, सम्बन्धी और मित्र उसके सहायक नहीं होते।

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं जनाः।। अनु 111/13
मुहूर्तमिव रोदित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखाः।

लोग मरे हुए शरीर को मिट्टी के ढेले और लकड़ी का तरह छोड़कर घड़ी भर के लिये रोते हैं और फिर मुँह फेर कर चले जाते हैं।

तैस्तच्छरीरमुत्सृष्टं धर्म एकोऽनुगच्छति।। अनु 111/14
तस्माद् धर्मः सहायश्च सेवितव्यः सदा नृभिः।

सम्बन्धियों से छोड़े हुए उस मृत शरीर के जीवात्मा का साथ अकेला धर्म ही देता है। इसलिये धर्म सच्चा सहायक है। उसी का सदा पालन करना चाहिये।

प्राणी धर्म समायुक्तो गच्छेत् स्वर्ग गतिं पराम्।। अनु 111/15
तथैवाधर्म संयुक्तो नरकं चोपपद्यते।

धर्म का आचरण करने वाला प्राणी, उत्तम स्वर्ग लोक में जाता है और अधर्म पर चलने वाले को नरक में जाना पड़ता है।

तस्मान्न्यायगतैरर्थैर्धर्मं सेवेत पण्डितः।। अनु 111/16
धर्म एको मनुष्याणां सहायः पारलौकिकः।

इसलिये समझदार मनुष्य को न्यायपूर्वक प्राप्त धन के द्वारा धर्म का पालन करना चाहिये क्योंकि परलोक में एकमात्र धर्म ही मनुष्य की सहायता करता है।

लोभान्मोहादनुक्रोशाद् भयाद् वाप्यबहुश्रुतः।। अनु 111/17
नरः करोत्यकार्याणि परार्थे लोभमोहितः।

जो व्यक्ति विद्वान् नहीं हैं वह लोभ के वश में पड़कर दूसरे के लिये लोभ, मोह, दया या भय के कारण अनुचित पापकर्म कर बैठता है।

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनोऽन्तकः।। अनु 111/21
बुद्धिरात्मा च सहिता धर्मं पश्यन्ति नित्यदा।

पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, मन, यमराज, बुद्धि और आत्मा ये सब सदा मनुष्य के धर्म को देखते रहते हैं।

प्राणिनामिह सर्वेषां साक्षिभूता निशानिशम्।। अनु 111/22

एतैश्च सह धर्मोऽपि तं जीवमनुगच्छति।

इस संसार के सभी प्राणियों के अच्छे बुरे कामों को दिन और रात भी देखते रहते हैं। इन सबके साथ धर्म भी जीव के पीछे-पीछे जाता है।

यदि धर्मं यथाशक्ति जन्म प्रभृति सेवते।
ततः स पुरुषो भूत्वा सेवते नित्यदा सुखम्।। अनु 111/38

यदि प्राणी जन्म से ही अपनी सामर्थ्य के अनुसार धर्मपालन करता है तो वह मनुष्य का जन्म लेकर सदा सुख भोगता है।

अधर्मेण समायुक्तो यमस्य विषयं गतः।
महद् दुःखं समासाद्य तिर्यग्योनौ प्रजायते।। अनु 111/44

अधर्म में लिप्त रहने वाला मनुष्य यमलोक में जाता है। वहां बहुत दुःख भोगकर पशु-पक्षियों की योनियों में जन्म लेता है।

शत्रु

शत्रुश्चैव हि मित्रं च न लेख्यं न च मातृका।
यो वै संतापयति यं स शत्रुः प्रोच्यते नृप।। सभा 55/10

राजन्! कोई व्यक्ति हमारा शत्रु है या कोई मित्र, इसका लेखा-जोखा नहीं होता। न ही शुत्र और मित्र को बताने वाला कोई अक्षर है। जो व्यक्ति जिसे सताता है वही उसका शत्रु होता है।

नास्ति वै जातितः शत्रुः पुरुषस्य विशाम्पते।
येन साधारणी वृत्तिः स शत्रुर्नेतरो जनः।। सभा 55/15

राजन्! मनुष्य का जन्म से कोई शत्रु नहीं होता। जिन लोगों की जीविका एक जैसी होती है वही ईर्ष्या के कारण एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं।

शत्रुपक्षं समृध्यन्तं यो मोहात् समुपेक्षते।
व्याधिराप्यायित इव तस्य मूलं छिनत्ति सः।। सभा 55/16

जो व्यक्ति असावधान रहकर बढ़ते हुए शत्रुपक्ष की परवाह नहीं करता। शत्रु उसकी जड़ वैसे ही काट देता है जैसे बढ़ा हुआ रोग मार डालता है।

अल्पोऽपि ह्यरिरत्यर्थं वर्धमानः पराक्रमैः।
वल्मीको मूलज इव ग्रसते वृक्षमन्तिकात्।। सभा 55/17

जैसे पेड़ की जड़ में लगी हुई दीमक पेड़ को खा जाती है वैसे ही छोटा सा शत्रु भी पराक्रम से बढ़कर प्रबल शत्रु को भी मार डालता है।

सर्वोपायै र्निहन्तव्याः शत्रवः शत्रुसूदन।। सभा 74/8

हे शत्रुओं का नाश करने वाले! शत्रुओं को सभी उपायों से मार डालना चाहिये।

सर्वैः पराक्रमै र्वीर वध्यः शत्रुरमित्रहन्।
न शत्रुरवमन्तव्यो दुर्बलोऽपि बलीयसा।। वन 22/23

शत्रुहन्ता वीर! आपको सारा पराक्रम लगाकर शत्रु को मार डालना चाहिये। बलवान पुरुष को भी निर्बल शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

न शत्रुर्वशमापन्नो मोक्तव्यो वध्यतां गतः।
न्यग्भूत्वा पर्युपासीत वध्यं हन्याद् बले सति।
अहताद्धि भयं तस्माज्जायते नचिरादिव।। उद्योग 38/29

वश में आये हुए मारने योग्य शत्रु को कभी नहीं छोड़ना चाहिये। कमजोर होने पर शत्रु के पास समय बिताना चाहिये और शक्तिसम्पन्न होने पर शत्रु को मार डालना चाहिये। यदि शत्रु को मारा नहीं जाता तो उससे जल्दी ही संकट आ खड़ा होता है।

द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेधावी न पण्डितः।
प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह।। उद्योग 39/4

जिससे द्वेष होता है वह न साधु, न विद्वान् और न ही बुद्धिमान लगता है। प्रिय व्यक्ति के सब काम अच्छे लगते हैं और शत्रु के सभी कार्य बुरे लगते हैं।

प्राग्विरुद्धैः शमं सद्भिः कथं वा क्रियते पुनः।। उद्योग 49/32

जिनके साथ पहले विरोध रहा हो उनसे सन्धि कैसे की जा सकती है?

न लब्धस्य हि शत्रोर्वै शेषं कुर्वन्ति साधवः।। उद्योग 134/28

श्रेष्ठ पुरुष हाथ में आये शत्रु को कभी नहीं छोड़ते।

पीडाकरममित्राणां यत् स्यात् कर्तव्यमेव तत्।। द्रोण 143/68

शत्रुओं को जिस काम से परेशानी हो उसे अवश्य करना ही चाहिये।

न च शत्रुरवज्ञेयो दुर्बलोऽपि बलीयसा।
अल्पोऽपि दहत्यग्निर्विषमल्पं हिनस्ति च।। शान्ति 58/17

बलवान पुरुष को कमजोर शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये क्योंकि जरा सी आग जला डालती है और जरा सा विष मार डालता है।

अरेर्हि दुर्हृदाद् भेयं भग्नपुच्छादिवोरगात्।। शान्ति 82/57

दुष्ट हृदय वाले शत्रु से पूँछ कटे हुए साँप की तरह डरना चाहिये।

अमित्रो मित्रतां याति मित्रं चापि प्रदुष्यति।
सामर्थ्य योगात् कार्याणामनित्या वै सदा गतिः।। शान्ति 138/13

तरह तरह के कामों के प्रभाव से शत्रु भी मित्र बन जाता है और मित्र के मन में भी द्वेष पनप उठता है। शत्रु और मित्र का आचरण सदा एक-सा नहीं रहता।

श्रेष्ठो हि पण्डितः शत्रुर्न च मित्रमपण्डितः।। शान्ति 138/46

विद्वान् शत्रु भी मूर्ख मित्र से कहीं अच्छा होता है।

न ह्यमित्रे वशं यान्ति प्राज्ञा निष्कारणं सखे।। शान्ति 138/192

मित्र! बुद्धिमान लोग बिना किसी कारण के शत्रु के हाथों में नहीं पड़ते।

विश्वासयित्वा द्वेष्टारमवलुम्पेद् यथा वृकः।। शा० 140/46

शत्रु को विश्वास में लेकर उस पर भेड़िये की तरह टूट पड़ना चाहिये।

दुःखं सपत्नेषु समृद्धिभावः।। आश्व 9/6

शत्रुओं का समृद्ध बनना दुःखदायी होता है।

शिष्टाचार

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते।। उद्योग 38/1

जब कोई वृद्ध पुरुष किसी नवयुवक के पास आता है तब उस युवक के प्राणों का सन्तुलन क्षुब्ध हो जाता है। अपने प्राणों को फिर शान्त करने के लिये युवक को उठकर माननीय वृद्ध पुरुष का अभिवादन करना चाहिये।

पीठं दत्त्वा साधवेऽभ्यागताय आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ।
सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां ततो दद्यान्नमवेक्ष्य धीरः।।

उद्योग 38/2

धीर पुरुष को चाहिये कि वह सज्जन अतिथि को आसन दे और फिर पैर धोने के लिये पानी। उसकी कुशल पूछकर अपने पास जो कुछ हो उसे देकर अन्न आदि से अतिथि का सत्कार करना चाहिये।

चिकित्सकः शल्यकर्तावकीर्णी स्तेनः क्रूरो मद्यपो भ्रूणहा च।
सेनाजीवी श्रुतिविक्रायकश्च भृशं प्रियोऽप्यतिथिर्नोदकार्हः।।

उद्योग 38/4

वैद्य, चीरफाड़ करने वाला, ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट, चोर, क्रूर, शराबी, भ्रूण हत्यारा, सैनिक और वेदज्ञान बेचने वाला ये यद्यपि पानी देने योग्य नहीं हैं किन्तु यदि अतिथि बनकर आवें तो इनका भी सत्कार करे।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।। उद्योग 39/74

नित्य गुरुजनों को प्रणाम करने वाले और वृद्धों की सेवा करने वाले पुरुष की आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं।

शिष्टाचारश्च शिष्टश्च धर्मो धर्मभृतां वर।
सेवितव्यो नरव्याघ्र प्रेत्येह च सुखेप्सुना।। शान्ति 35/48

धर्मात्माओं में श्रेष्ठ पुरुषसिंह! जो व्यक्ति इस लोक में और परलोक में सुख चाहता है उसे श्रेष्ठ पुरुषों के आचार-विचार का तथा उनके बताये हुए धर्म का पालन करना चाहिये।

पुरीषं यदि वा मूत्रं ये न कुर्वन्ति मानवाः।
राजमार्गे गवां मध्ये धान्य मध्ये च ते शुभाः।। शान्ति 193/3

जो लोग सड़क पर, गौओं के बीच में और अन्न में मल-मूत्र नहीं करते हैं, वे अच्छे माने जाते हैं।

श्मश्रुकर्मणि मंगल्यं क्षुतानामभिनन्दनम्।
व्याधितानां च सर्वेषामायुषमभिनन्दनम्।। अनु 162/51

दाढ़ी मूछें बनाते समय मंगलमय शब्द कहने चाहियें। छींकने वाले को शतञ्जीवी का आशीर्वाद देना चाहिये और रोगियों की दीर्घायु की कामना करनी चाहिये।

न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो मुनिः।
न च वागङ्गचपल इति शिष्टस्य गोचरः।। आश्व 45/18

मननशील व्यक्ति को अपने हाथ, पैर, आँख, वाणी और शरीर के किसी भी अंग की चपलता को छोड़ देना चाहिये अर्थात् इनके द्वारा कोई अनुचित कार्य नहीं करना चाहिये। यही शिष्ट पुरुषों का व्यवहार है।

शिष्य

पुत्रादनन्तरं शिष्य इति धर्मविदो विदुः।
एतेनापि निमित्तेन प्रियो द्रोणस्य पाण्डवः।। विराट 50/21

गुरु को अपने पुत्र के बाद शिष्य ही प्यारा होता है। यह बात धर्म के ज्ञाता बताते हैं। इसलिये द्रोणाचार्य को भी अर्जुन प्रिय हैं।

गुरुं शिष्यो नित्यमभिवादयीत स्वाध्यायमिच्छेच्छुचिरप्रमत्तः।
मानं न कुर्यान्नादधीत रोषमेष प्रथमो ब्रह्मचर्यस्य पादः।।

उद्योग 44/10

शिष्य को गुरु का अभिवादन के साथ सदा सम्मान करना चाहिये। उसे आलस्य त्याग कर और शरीर तथा मन को पवित्र रखकर स्वाध्याय करना चाहिये। उसे अभिमान और क्रोध नहीं करना चाहिये। यह ब्रह्मचर्य पालन का पहला चरण है।

आचार्यस्य प्रियं कुर्यात् प्राणैरपि धनैरपि।
कर्मणा मनसा वाचा द्वितीयः पाद उच्यते।। उद्योग 44/12

शिष्य को अपने प्राणों से और धन से भी मन, वचन और कर्म के द्वारा आचार्य को प्रसन्न रखना चाहिये। ब्रह्मचर्य का यह दूसरा चरण है।

आचार्येणात्मकृतं विजानन् ज्ञात्वा चार्थं भावितोऽस्मीत्यनेन।
यन्मन्यते तं प्रति हृष्टबुद्धिः स वै तृतीयो ब्रह्मचर्यस्य पादः।।

उद्योग 44/14

आचार्य ने मेरा जो उपकार किया है तथा उस ज्ञान से मुझे जो लाभ मिला है उसे ध्यान में रखकर आचार्य के प्रति प्रसन्न मन से कृतज्ञ बने रहना चाहिये। ब्रह्मचर्य पालन का यह तीसरा पाठ है।

नाचार्यस्यानपाकृत्य प्रवासं प्राज्ञः कुर्वीत नैतदहं करोमि।
इतीव मन्येत न भाषयेत स वै चतुर्थो ब्रह्मचर्यस्य पादः।।

उद्योग 44/15

आचार्य के उपकारों से मुक्त हुए बिना अर्थात् गुरुदक्षिणा दिये बिना विद्वान् शिष्य गुरुकुल से न जाये। वह मन में यह कभी न सोचे कि मैं गुरु दक्षिणा देकर गुरु का उपकार कर रहा हूँ। न ही वह ऐसी बात कभी कहे। ब्रह्मचर्य का यह चौथा पाठ है।

आचार्यानुगतो मार्गः शिष्यैरन्वास्यते सदा।। द्रोण 113/33

शिष्य सदैव आचार्य के मार्ग पर ही चलते हैं।

नाशिष्ये सम्प्रदातव्यो नाव्रते नाकृतात्मनि।। शान्ति 327/45

जिसका मन वश में न हो, जो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन न करता हो तथा जो शिष्य भाव से पढ़ने न आया हो उसे विद्या नहीं देनी चाहिये।

नापरीक्षित चारित्रे विद्या देया कथंचन।। शान्ति 327/46

जिसके आचार-विचार की परीक्षा न कर ली गई हो उसे विद्या नहीं देनी चाहिये।

यथा हि कनकं शुद्धं तापच्छेदनिकर्षणैः।। शान्ति 327/46
परीक्षेत तथा शिष्यानीक्षेत् कुलगुणादिभिः।

जैसे आग में तपाने, काटने और कसौटी पर कसने से शुद्ध सोने की परख की जाती है वैसे ही कुल और गुण आदि से शिष्य की परीक्षा करनी चाहिये।

न नियोज्याश्च वः शिष्या अनियोगे महाभये।। शान्ति 327/47
यथामति यथापाठं तथा विद्या फलिष्यति।

तुम्हें अपने शिष्यों को किसी अनुचित या महान् भयंकर काम में नहीं लगाना चाहिये। जिसकी जैसी बुद्धि होगी और जो जैसा परिश्रम करेगा, उसी के अनुसार उसकी विद्या सफल होगी।

शिष्याणां गुरुशुश्रूषा विप्राणां वेदधारणाम्।
भृत्यानां स्वामिवचनं राज्ञो लोकानुपालनम्।। शान्ति 359/5

शिष्यों का कर्त्तव्य है गुरु की सेवा करना। ब्राह्मणों का कर्त्तव्य वेदाध्ययन है। सेवकों का कर्त्तव्य मालिक की आज्ञा पालन करना है तथा राजा का कर्त्तव्य प्रजा की रक्षा करना है।

शूद्र

शूद्रः शुश्रूषणं कुर्यात् त्रिषु वर्णेषु नित्यशः।
वन्दना योगविधिभिर्वैतसीं वृत्तिमास्थितः।। विराट 50/6

शूद्र को बेंत के पेड़ की तरह नम्र रहकर (वैतसीवृत्ति) और प्रणाम, आज्ञापालन आदि करके तीनों वर्णों की सेवा करनी चाहिये।

ब्रह्मक्षत्रविशां शूद्रा विहिताः परिचारकाः।। कर्ण 32/47

ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की सेवा के लिये शूद्र उत्पन्न किये गये हैं।

शूश्रूषाकृतकार्यस्य कृतसंतानकर्मणः।
अभ्यनुज्ञातराज्ञस्य शूद्रस्य जगतीपते।। शान्ति 63/12
अल्पान्तरगतस्यापि दशधर्मगतस्य वा।
आश्रमा विहिताः सर्वे वर्जयित्वा निराशिषम्।। शान्ति 63/13

पृथ्वीनाथ! जो शूद्र तीनों वर्णों की सेवा कर चुका है, जिसने सन्तान उत्पन्न कर ली है, शौच और सदाचार की दृष्टि से जिसमें तीनों वर्णों की अपेक्षा बहुत कम अन्तर रह गया है अथवा जो धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, सात्त्विक बुद्धि, सात्त्विक ज्ञान, सत्यभाषण और अक्रोध इन दस धर्मानुकूल नियमों का पालन कर रहा है, वह राजा की अनुमति से संन्यास आश्रम को छोड़ अन्य सभी आश्रमों का पालन कर सकता है।

न हि यज्ञेषु शूद्रस्य किञ्चिदस्ति परिग्रहः।। शान्ति 165/8

यज्ञों में शूद्र का तनिक भी अधिकार नहीं है।

हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः।। शान्ति 188/13

जो ब्राह्मण, शौच और सदाचार छोड़ बैठे और हिंसा तथा झूठ को अच्छा मानने लगे, लोभ के वश में होकर सभी तरह के भले बुरे काम करने लगे और इन कामों के कारण जिनका रंग काला पड़ गया, वे शूद्र हो गये।

सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्वकर्मकरोऽशुचिः।
त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः।। शान्ति 189/7

जो व्यक्ति वेदों का अध्ययन नहीं करता। सदाचार को छोड़कर सभी कुछ खा जाता है और सब तरह के काम करता है, गन्दा रहता है वह शूद्र कहलाता है।

शूद्रधर्मः परो नित्यं शुश्रूषा च द्विजातिषु।। अनु 141/57

ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की सेवा करना शूद्रों का परम धर्म है।

वार्ता च कारुकर्माणि शिल्पं नाट्यं तथैव च।। अनु 141 दा० पा०

व्यापार, कारीगरी, शिल्प और नाटक आदि भी शूद्र के काम हैं।

शूद्रोऽप्यागमसम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः।। अनु 143/46

शास्त्रों का जानकार और संस्कारवान शूद्र भी ब्राह्मण हो जाता है।

कर्मभिः शुचिमिभर्देवि शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः।
शूद्रोऽपि द्विजवत् सेव्य इति ब्रह्माब्रवीत् स्वयम्।। अनु 143/48

देवि! यदि शूद्र भी जितेन्द्रिय बनकर पवित्र कर्म करके अपना अन्तःकरण शुद्ध बना लेता है तो वह भी ब्राह्मण की भाँति आदर के योग्य होता है। यह बात स्वयं ब्रह्मा जी ने कही है।

स्वभावः कर्म च शुभं यत्र शूद्रेऽपि तिष्ठति।
विशिष्टः स द्विजातेर्वै विज्ञेय इति मे मतिः।। अनु 143/49

मेरा यही मानना है यदि शूद्र का स्वभाव और उसके काम अच्छे हों तो ऐसा शूद्र, ब्राह्मण से भी बढ़कर आदर करने योग्य होता है।

वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति।। अनु 143/51

सदाचारी शूद्र भी ब्राह्मण का पद प्राप्त कर लेता है।

शोक

न शोच्यं विदुषांश्रेष्ठ शोकः कार्यविनाशनः।। द्रोण 80/7

श्रेष्ठ विद्वान्! आपको शोक नहीं करना चाहिये। शोक करने से सभी काम बिगड़ जाते हैं।

यत् तु कार्यं भवेत् कार्यं कर्मणा तत् समाचर।
हीनचेष्टस्य यः शोकः स हि शत्रुर्धनंजय।। द्रोण 80/8

जो काम करना हो उसे पूरे प्रयत्न के साथ करना चाहिये। हे अर्जुन! उद्योग-रहित मनुष्य का शोक उसके लिये शत्रु बन जाता है।

शोचन् नन्दयते शत्रून् कर्शयत्यपि बान्धवान्।
क्षीयते च नरस्तस्मान्न त्वं शोचितुमर्हसि।। द्रोण 80/9

शोक करने वाला मनुष्य अपने शत्रुओं को आनन्दित करता है और बन्धु-बान्धवों को दुःखी। शोक करके व्यक्ति स्वयं भी कमजोर हो जाता है। इसलिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।

अर्थान्न शोचन् प्राप्नोति न शोचन् विन्दते फलम्।
न शोचञ्छ्रियमाप्नोति न शोचन् विन्दते परम्।। स्त्री 1/38

शोक करने वाले को उसके मनोनुकूल पदार्थ नहीं मिलते। न ही उसे किसी काम का अच्छा फल मिलता है। उसे न तो लक्ष्मी मिलती है और न ही परमात्मा।

न शोचन् मृतमन्वेति न शोचन् म्रियते नरः।
एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुशोचसि।। स्त्री 2/7

शोक करने वाला मनुष्य न तो मरने वाले के साथ जा सकता है और न ही मर सकता है। जब संसार की ऐसी ही अवस्था है तो तुम किसलिये शोक कर रहे हो?

शोकस्थानसहस्त्रणि भयस्थानशतानि च।। शान्ति 174/40
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्।। स्त्री 2/22

जीवन में शोक के हजारों अवसर आते हैं और भय के भी सैकड़ों अवसर आते हैं। इनका प्रभाव प्रतिदिन मूर्खों पर पड़ता रहता है विद्वानों पर नहीं।

पुत्रदार कुटुम्बेषु प्रसक्ताः सर्वमानवाः।
शोकपङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वन गजा इव।। शान्ति 174/6

सभी मनुष्य; स्त्री, पुत्र और परिवार में फंसकर बूढ़े जंगली हाथी की तरह शोक के कीचड़ में डूबे हुए हैं।

प्रीत्या शोकः प्रभवति वियोगात् तस्य देहिनः।
यदा निरर्थकं वेत्ति तदा सद्यः प्रणश्यति।। शान्ति 163/13

हम जिस किसी को प्रेम करते हैं उसके बिछुड़ने पर शोक होता है। जब मनुष्य यह समझ जाता है कि शोक करने से कोई लाभ नहीं होता तब शोक नष्ट हो जाता है।

पुत्रनाशे वित्तनाशे ज्ञातिसम्बन्धिनामपि।
प्राप्यते सुमहद्दुःखं दावाग्निप्रतिमं विभो।
दैवायत्तमिदं सर्वं सुख दुःखे भवाभवे।। शान्ति 174/27

पुत्र के और सम्बन्धियों के मरने पर तथा धन नष्ट हो जाने पर वन की आग

जैसा महान् शोक होता है। किन्तु सुख-दुःख और जन्म-मरण यह सब दैव के ही अधीन हैं।

बुद्धिमन्तं कृतप्रज्ञं शुश्रूषुमनसूयकम्।
दान्तं जितेन्द्रियं चापि शोको न स्पृशति नरम्।। शान्ति 174/41

बुद्धिमान, विवेकशील, शास्त्र-श्रवण की इच्छा करने वाले, ईर्ष्या न करने वाले, संयमी और जितेन्द्रिय पुरुष पर शोक का प्रभाव नहीं पड़ता।

एतां बुद्धिं समास्थाय गुप्तचित्तश्चरेतद् बुधः।
उदयास्तमयज्ञं हि न शोकः स्प्रष्टुमर्हति।। शान्ति 174/42

इसी विवेकपूर्ण ज्ञान के सहारे मन को काम, क्रोध, लोभ आदि से दूर रखकर बुद्धिमान को व्यवहार करना चाहिये। जो व्यक्ति उत्पत्ति और विनाश की वास्तविकता को जानता है उसे शोक छू भी नहीं सकता।

किंचिदेव ममत्वेन यदा भवति कल्पितम्।
तदेव परितापार्थं सर्वं सम्पद्यते तथा।। शान्ति 174/44

जब मनुष्य किसी भी पदार्थ को अपना समझने लगता है अर्थात् उस वस्तु में ममता हो जाती है तभी वे सब पदार्थ उसके शोक के कारण बन जाते हैं।

अनिवार्येण शोकेन शरीरं चोपतप्यते।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति शोके नास्ति सहायता।। शान्ति 226/4

यदि शोक को रोका न जाय तो उससे शरीर को कष्ट होने लगता है और शत्रु खुश होते हैं। शोक के अवसर पर कोई सहायता नहीं कर पाता।

संतापाद् भ्रश्यते रूपं संतापाद् भ्रश्यते श्रियः।। शान्ति 226/5
संतापाद् भ्रश्यते चायुर्धर्मश्चैव सुरेश्वर।

इन्द्र! शोक करने से रूप, लक्ष्मी, आयु और धर्म का नाश हो जाता है।

नार्थो न धर्मो न यशो योऽतीतमनुशोचति।
अप्यभावेन युज्येत तच्चास्य न निवर्तते।। शान्ति 330/7

जो बीती बातों के लिये शोक करता है उसे न तो अर्थ की, न धर्म की और न ही यश की प्राप्ति होती है वह अभाव को याद करके दुःखी होता है। उसका अभाव दूर नहीं होता।

गुणैर्भूतानि युज्यन्ते वियुज्यन्ते तथैव च।
सर्वाणि नैतदेकस्य शोकस्थानं हि विद्यते।। शान्ति 330/8

सभी प्राणियों का अच्छी वस्तुओं से संयोग और वियोग होता रहता है। संसार में किसी एक प्राणी को ही शोक होता हो ऐसी बात नहीं है।

दुःखोपघाते शारीरे मानसे चाप्युपस्थिते।
यस्मिन् न शक्यते कर्तुं यत्नस्तन्नानुचिन्तयेत्।। शान्ति 330/11

शारीरिक या मानसिक दुःख आ जाने पर उसे दूर करने के लिये किया गया प्रयत्न यदि असफल हो जाय या कोई प्रयत्न किया ही न जा सके तो चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत्।। स्त्री 2/27
चिन्त्यमानं न व्येति भूयश्चापि प्रवर्धते।। शा० 330/12

दुःख दूर करने की यही दवा है कि उसके बारे में बार-बार न सोचा जाय। क्योंकि चिन्ता करने से दुःख दूर नहीं होता अपितु बढ़ता ही है।

प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः।। स्त्री 2/31
एतद् विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात्।। शान्ति 330/13

मानसिक दुःख को बुद्धि से और शारीरिक कष्ट को दवा से दूर करना चाहिये। शास्त्रज्ञान से ही यह किया जा सकता है। दुःख आने पर बच्चों की तरह रोना नहीं चाहिये।

सम्प्रयोगादनिष्टस्य विप्रयोगात् प्रियस्य च।
मानुषा मानसैर्दुःखैः संयुज्यन्तेऽल्पबुद्धयः।। अनु 145 दा० पा०

अप्रिय वस्तु से या किसी प्रकार का अनिष्ट होने से तथा किसी प्रिय वस्तु के छूट जाने से कम बुद्धि के लोग मानसिक शोक से परेशान होते हैं।

सुखं प्राप्य न संहृष्येन्न दुःखं प्राप्य संज्वरेत्।। अनु 145 दा० पा० अ०XIV

सुख मिलने पर मनुष्य को खुश नहीं होना चाहिये। दुःख अपने पर दुःखी नहीं होना चाहिये।

अदर्शनादापतिताः पुनश्चादर्शनं गताः।
स्नेहस्तत्र न कर्तव्यो विप्रयोगो हि तैर्ध्रुवः।। अनु 145 दा० पा० अ० XIV

सभी लोग अदृश्य स्थान से आते हैं और फिर अदृश्य स्थान में ही चले जाते हैं। उनके साथ स्नेह नहीं करना चाहिये क्योंकि उनसे वियोग अवश्य होगा।

शौच

बाह्यमाभ्यन्तरं चेति द्विविधं शौचमिष्यते।
मानसं सुकृतं यत् तच्छौचमाभ्यन्तरं स्मृतम्।। अनु 145 दा० पा० अ० XI

शौच अर्थात् पवित्रता और सफाई दो तरह की होती है। बाहरी सफाई और अन्दर की सफाई। मन में अच्छे विचार रखना आभ्यन्तर शौच बताया गया है।

सदाऽऽहारविशुद्धिश्च कायप्रक्षालनं तु यत्।
बाह्यशौचं भवेदेतत् तथैवाचमनादिना।। अनु 145 दा० पा० अ० XI

शुद्ध भोजन करना, शरीर को स्नान आदि से साफ रखना और जल के आचमन आदि से शरीर को शुद्ध रखना बाह्य शौच होता है।

शकृता भूमिशुद्धिः स्याल्लौहानां भस्मना स्मृतम्।
तक्षणं घर्षणं चैव दारवाणां विशोधनम्।। अनु 145 दा० पा० अ० XI

गोबर लीपने से भूमि शुद्ध हो जाती है। धातु के बर्तन राख से मांजने पर साफ हो जाते हैं। लकड़ी की वस्तु छीलने या रगड़ने से साफ हो जाती है।

दहनं मृण्मयानां च मर्त्यानां कृच्छ्रधारणम्।
शेषाणां देवि र त्रेषामातपेन जलेन च।। अनु 145 दा० पा०XI

मिट्टी के बर्तन आदि आग में रखने से साफ हो जाते हैं। मनुष्यों के पाप कृच्छ्रयण आदि व्रत करने से दूर हो जाते हैं। अन्य सभी वस्तुएँ धूप में रखने से या पानी से साफ हो जाती हैं।

ब्रह्मचर्यं तपः क्षान्तिर्मधुमांसस्य वर्जनम्।
मर्यादायां स्थितिश्चैव शमः शौचस्य लक्षणम्।।

आश्व 92 दा० पा० अ XIII

ब्रह्मचर्य, तपस्या, क्षमा, मधु-मांस का त्याग, धर्म की मर्यादा में रहना और मन को वश में रखना ये सब शौच (पवित्रता) के लक्षण हैं।

मनश्शौचं कर्मशौचं कुलशौचं च भारत।
शरीरशौचं वाक्छौचं शौचं पञ्चविधं स्मृतम्।।

आश्व 92 दा० पा० अ XX

मन की शुचि, कार्यों की शुचि, कुल की पवित्रता, शरीर और वाणी की शुद्धि अर्थात् असत्य, और कटु न बोलना यह पाँच प्रकार ही शुद्धि होती है।

पञ्चस्वेतेषु हृदि शौचं विशिष्यते।। आश्व 92 दा० पा० अ XX

इन पाँच प्रकार के पवित्र आचरणों में हृदय या मन की पवित्रता सर्वश्रेष्ठ होती है।

श्रद्धा

श्रद्धा वैवस्वती सेयं सूर्यस्य दुहिता द्विज।
सावित्री प्रसवित्री च बहिर्वाङ्मनसी ततः।। शान्ति 264/8

श्रद्धा सूर्य की पुत्री है इसलिये उसे वैवस्वती, सावित्री और प्रसवित्री (विशुद्ध जन्मदायिनी) भी कहते हैं। वाणी और मन भी श्रद्धा की अपेक्षा बहिरंग हैं।

वाग्वृद्धं त्रायते श्रद्धा मनोवृद्धं च भारत।
श्रद्धावृद्धं वाङ्मनसी न कर्म त्रातुमर्हति।। शान्ति 264/9

भरतपुत्र! यदि वाणी के दोष से मन्त्र बोलने में गलती हो जाय और मन की चंचलता के कारण इष्ट देवता का ध्यान न हो सके तो भी यदि श्रद्धा हो तो वह वाणी और मन के दोष को दूर करके यज्ञ आदि कर्म की रक्षा कर सकती है। किन्तु श्रद्धा न होने पर यदि कर्म में कोई कमी रह जाय तो वाणी और मन (मन्त्रोच्चारण और ध्यान) उस कर्म की रक्षा नहीं कर सकते।

श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतमश्रद्धयेतरत्।
भोज्यमन्नं वदान्यस्य कदर्यस्य न वार्धुषेः।। शान्ति 264/13

उदार व्यक्ति का अन्न उसकी श्रद्धा के कारण पवित्र होता है और कंजूस का अन्न अश्रद्धा के कारण अपवित्र। अतः उदार व्यक्ति का अन्न ही खाना चाहिये, कंजूस और सूदखोर का अन्न नहीं खाना चाहिये।

अश्रद्धा परमं पापं श्रद्धा पापप्रमोचिनी।
जहाति पापं श्रद्धावान् सर्पो जीर्णमिव त्वचम्।। शा० 264/15

अश्रद्धा सबसे बड़ा पाप है और श्रद्धा पाप से छुटकारा दिलाती है। जैसे साँप अपनी पुरानी कैंचुली छोड़ देता है वैसे ही श्रद्धालु व्यक्ति पाप-कर्म छोड़ देता है।

ज्यायसी या पवित्राणां निवृत्तिः श्रद्धया सह।
निवृत्तशीलदोषो यः श्रद्धावान् पूत एव सः।। शा० 264/16

श्रद्धा के साथ साथ पापों से अलग हो जाना सबसे बड़ी पवित्रता है। जिस व्यक्ति के आचार-विचार सम्बन्धी सारे दोष दूर हो गये हैं ऐसा श्रद्धालु पुरुष सदा पवित्र ही है।

किं तस्य तपसा कार्यं किं वृत्तेन किमात्मना।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।। शान्ति 264/17

ऐसे श्रद्धावान व्यक्ति को तपस्या से क्या लेना है? आचार-विचार और आत्मचिन्तन द्वारा उसे क्या प्रयोजन सिद्ध करना है? क्योंकि मनुष्य अपनी श्रद्धा के अनुसार ही कर्म करता है। उसकी सात्त्विक, राजसिक या तामसिक जैसी भी श्रद्धा होती है उसका आचरण भी उसे के अनुसार होता है।

दैवगुह्येषु चान्येषु हेतुर्देवि निरर्थकः।। अनु 145 दा० पा० अ० IX

देवि! देव और अध्यात्म सम्बन्धी जो गूढ़ विषय हैं उनमें युक्तियाँ और वाद-विवाद निरर्थक होता है।

श्रेय

अनुग्रहं च मित्राणाममित्राणां च निग्रहम्।
संग्रहं च त्रिवर्गस्य श्रेय आहुर्मनीषिणः।। शान्ति 287/16

मित्रों पर कृपा, शत्रुओं और दुष्टों को नियन्त्रण में रखना तथा धर्म, अर्थ और काम का संग्रह करना-इसे बुद्धिमान पुरुष श्रेय कहते हैं।

निवृत्तिः कर्मणः पापात् सततं पुण्यशीलता।
सद्भिश्च समुदाचारः श्रेय एतदसंशयम्।। शान्ति 287/17

पापकर्म कभी न करना, पुण्य के काम सदा करते रहना और अच्छे लोगों के साथ रहकर सदाचार का पालन करना कल्याण का निश्चित मार्ग है।

मार्दवं सर्वभूतेषु व्यवहारेषु चार्जवम्।
वाक् चैव मधुरा प्रोक्ता श्रेय एतदसंशयम्।। शान्ति 287/18

सभी प्राणियों के प्रति कोमलता का व्यवहार, व्यवहार में सरलता तथा मीठी वाणी बोलना ये सब कल्याण के संशयरहित उपाय हैं।

दैवतेभ्यः पितृभ्यश्च संविभागोऽतिथिष्वपि।
असंत्यागश्च भृत्यानां श्रेय एतदसंशयम्।। शान्ति 287/19

देवताओं, पितरों और अतिथियों को उनका भाग देना तथा भरण पोषण करने योग्य व्यक्तियों का त्याग न करना श्रेय के निश्चित साधन हैं।

अहंकारस्य च त्यागः प्रमादस्य च निग्रहः।
संतोषश्चैकचर्या च कूटस्थं श्रेय उच्यते।। शान्ति 287/21

अहंकार का त्याग, प्रमाद या आलस्य पर नियन्त्रण रखना, सन्तोष और एकान्तवास ये श्रेय के निश्चित साधन हैं।

धर्मेण वेदाध्ययनं वेदान्तानां तथैव च।
ज्ञानार्थानां च जिज्ञासा श्रेय एतदसंशयम्।। शान्ति 287/22

धर्माचरण के साथ वेदों और वेदांगों का स्वाध्याय करना तथा उनके सिद्धान्तों को जानने की इच्छा बनाये रखना निःसन्देह श्रेय का उपाय है।

शब्दरूपरसस्पर्शान् सह गन्धेन केवलान्।
नात्यर्थमुपसेवेत श्रेयसोऽर्थी कथंचन।। शान्ति 287/23

जो मनुष्य अपना कल्याण करना चाहता हो उसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन पाँचों विषयों का अधिक सेवन नहीं करना चाहिये।

नक्तंचर्या दिवास्वप्नमालस्यं पैशुनं मदम्।
अतियोगमयोगं च श्रेयसोऽर्थी परित्यजेत्।। शान्ति 287/24

अपना कल्याण चाहने वाले को रात में जागना और इधर-उधर घूमना, दिन में सोना, आलस्य, चुगली, नशीले पदार्थों का सेवन और बहुत अधिक मात्रा में आहार-विहार करना अथवा बिल्कुल भी आहार-विहार न करना छोड़ देना चाहिये।

आत्मोत्कर्षं न मार्गेत परेषां परिनिन्दया।
स्वगुणैरेव मार्गेत विप्रकर्षं पृथग्जनात्।। शान्ति 287/25

व्यक्ति को दूसरों की निन्दा करके अपनी श्रेष्ठता बताने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये अपितु अपने ही गुणों से साधारण व्यक्तियों की तुलना में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करनी चाहिये।

श्रेष्ठ पुरुष

आर्येण सुकरं त्वाहुरार्यकर्म धनंजय।
अनार्यकर्म त्वार्येण सुदुष्करतमं भुवि।। द्रोण 143/10

धजनंजय! श्रेष्ठ व्यक्ति अच्छा काम बहुत आसानी से कर डालते हैं। किन्तु उनके लिये अनुचित काम करना बहुत कठिन होता है।

आत्मनिन्दाऽऽत्मपूजा च परनिन्दा परस्तवः।
अनाचरितमार्याणां वृत्तमेतच्चतुर्विधम्।। कर्ण 35/45

श्रेष्ठ पुरुष अपनी निन्दा, अपनी प्रशंसा, किसी की निन्दा और किसी की प्रशंसा ये चार काम कभी नहीं करते हैं।

आत्मोपमस्तु भूतेषु यो वै भवति मानवः।
न्यस्तदण्डो जितक्रोधः प्रेत्येह लभते सुखम्।। शान्ति 66/36

जो मनुष्य सभी प्राणियों के प्रति अपने समान ही भाव रखता है। दण्ड को छोड़ देता है और क्रोध को वश में कर लेता है। वह इस लोक में और परलोक में सुखी होता है।

यदा निवृत्तः सर्वस्मात् कामो योऽस्य हृदि स्थितः।
तदा भवति सत्वस्थस्ततो ब्रह्म समश्नुते।। शान्ति 66/38

मनुष्य के हृदय में जो कामनाएँ हैं उनसे छूट जाने पर वह सत्त्वगुण में रहने लगता है और उसे परमात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है।

कुलीनः कुलसम्पन्नस्तितिक्षुर्दक्ष आत्मवान्।
शूरः कृतज्ञः सत्यश्च श्रेयसः पार्थ लक्षणम्।। शान्ति 83/16

युधिष्ठिर! अच्छे कुल में जन्म, अच्छे कुल के लोगों से सम्पर्क, सहनशीलता, कुशलता, सच्चरित्रता, वीरता, कृतज्ञता और सत्य भाषण ये श्रेष्ठ पुरुषों के लक्षण हैं।

न हि वैरं महात्मनो विवृण्वन्त्यपकारिषु।
शनैः शनैर्महाराज दर्शयन्ति स्म ते बलम्।। शान्ति 157/10

महाराज! श्रेष्ठ पुरुष अपना बुरा करने वालों पर अपना वैर प्रकट नहीं करते। वे धीरे-धीरे ही अपना बल दिखाते हैं।

येष्वावृत्ति भयं नास्ति परलोक भयं न च।
नामिषेषु प्रसंगोऽस्ति न प्रियेष्वप्रियेषु च।। शान्ति 158/23

श्रेष्ठ लोगों को संसार में फिर जन्म लेने का और परलोक का भय नहीं सताता। भोगों में उनकी रुचि नहीं होती। प्रिय तथा अप्रिय के प्रति भी उनके मन में राग-द्वेष नहीं होता।

शिष्टाचारः प्रियो येषु दमो येषु प्रतिष्ठितः।
सुखं दुःखं समं येषां सत्यं येषां परायणम्।। शान्ति 158/24

जिन्हें शिष्ट आचरण अच्छा लगता है। जिनकी मन और इन्द्रियाँ वश में हैं। जो सुख-दुःख में समान रहते हैं और सत्य ही जिनका परम आश्रय है।

दातारो न ग्रहीतारो दयावन्तस्तथैव च।
पितृदेवातिथिदेवाश्च नित्योद्युक्तास्तथैव च।। शान्ति 158/25

वे देते हैं किसी से कुछ लेते नहीं। वे दयालु, माता-पिता और अतिथि की सेवा करने वाले होते हैं तथा अच्छा काम करने के लिये सदा तैयार रहते हैं।

सर्वोपकारिणो वीराः सर्वधर्मानुपालकाः।
सर्वभूतहिताश्चैव सर्वदेयाश्च भारत।। शान्ति 158/26

भरतश्रेष्ठ! वे सबका उपकार करने वाले, वीर, सभी धर्मों के रक्षक, सभी प्राणियों का भला करने वाले और सर्वस्व निछावर करने वाले होते हैं।

न ते चालयितुं शक्या धर्मव्यापारकारिणः।
न तेषां भिद्यते वृत्तं यत्पुरा साधुभिः कृतम्।। शान्ति 158/27

उन्हें सन्मार्ग से विचलित नहीं किया जा सकता। वे केवल धर्म का कार्य करते हैं। पहले वाले श्रेष्ठ पुरुषों ने जैसा आचरण किया था वे उसी पर चलते हैं।

न त्रासिनो न चपला न रौद्राः सत्पथे स्थिताः।
ते सेव्याः साधुभिर्नित्यं येष्वहिंसा प्रतिष्ठिता।। शान्ति 158/28

वे किसी को डराते नहीं। वे चंचल चित्त और रौद्र स्वभाव वाले नहीं होते। वे सन्मार्ग पर चलते हैं। अहिंसा करने वाले ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों का सत्संग करना चाहिये।

कामक्रोध व्यपेता ये निर्ममा निरहंकृताः।
सुव्रताः स्थिरमर्यादास्तानुपास्व च पृच्छ च।। शान्ति 158/29

जो काम-क्रोध से रहित, ममता और अहंकार से दूर, उत्तम व्रत का पालन करने वाले और धर्म मर्यादा को बनाये रखने वाले हैं उनके पास जाओ और अपने सन्देह मिटाओ।

न धनार्थं यशोऽर्थं वा धर्मस्तेषां युधिष्ठिर।
अवश्यं कार्यं इत्येव शरीरस्य क्रियास्तथा।। शान्ति 158/30

युधिष्ठिर! वे धन कमाने के लिये या यश बटोरने के लिये धर्माचरण नहीं करते। वे अपने शरीर की क्रियाओं की तरह धर्म का पालन आवश्यक समझकर करते हैं।

न भयं क्रोध चापल्ये न शोकस्तेषु विद्यते।
न धर्मध्वजिनश्चैव न गुह्यं कश्चिदास्थिताः।। शान्ति 158/31

उनमें भय, क्रोध, चंचलता और शोक नहीं होता। वे पाखण्डी (धर्मध्वजी) नहीं होते। उनका कोई भी काम गोपनीय नहीं होता।

येष्वलोभस्तथामोहो ये च सत्यार्जवे स्थिताः।
तेषु कौन्तेय रज्येथा येषां न भ्रश्यते पुनः।। शान्ति 158/32

कुन्तीपुत्र! जिनमें लोभ और मोह नहीं है। जो सत्य और सरल व्यवहार करते हैं। जो सदाचार से भ्रष्ट नहीं होते। उनका तुम्हें संग करना चाहिये।

ये न हृष्यन्ति लाभेषु नालाभेषु व्यथन्ति च।
निर्ममा निरहंकाराः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः।। शान्ति 158/33

जो लाभ होने पर प्रसन्न नहीं होते और नुकसान होने पर दुखी नहीं होते। जो ममता और अहंकार से दूर हैं। जो सत्त्वगुण में स्थित हैं और सभी प्राणियों को समान भाव से देखते हैं।

लाभालाभौ सुखदुःखे च तात प्रियाप्रिये मरणं जीवितं च।
समानि येषां स्थिरविक्रमाणां बुभुत्सतां सत्त्वपथे स्थितानाम्।।

शा० 158/34

तात! जिनके लिये लाभ-हानि, सुख-दुःख, प्रिय-अप्रिय, जन्म-मृत्यु एक जैसी है। जो दृढ़ पराक्रमी, आध्यात्मिक उन्नति के इच्छुक और सात्त्विक मार्ग पर चलने वाले हैं।

धर्मप्रियांस्तान् सुमहानुभावान् दान्तोऽप्रमत्तश्च समर्चयेथाः।
दैवात् सर्वे गुणवन्तो भवन्ति शुभाशुभे वाक्प्रलापास्तथान्ये।।

शान्ति 158/35

तुम्हें सावधान और जितेन्द्रिय रहकर ऐसे धर्म प्रेमी महानुभावों की सेवा-सत्कार करना चाहिये। ये सब महापुरुष स्वभाव से ही बड़े गुणवान होते हैं। शुभ और अशुभ के बारे में उनकी बात सत्य होती है। और लोग तो केवल बातें बनाते हैं।

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः।। शान्ति 162/21

मन, वचन और कर्म से सभी प्राणियों से द्रोह या वैर भाव न रखना तथा दया और दान करना यही श्रेष्ठ पुरुषों का सनातन धर्म है।

मधु प्रयाताय सुखाय सन्तः।। शान्ति 222/25

सन्त मधुर अमृत उपदेश और सुख प्रदान करते हैं।

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्।। शान्ति 323/6

कोई अधिक आयु से या बाल सफेद हो जाने से या पैसा अधिक होने से या बन्धु-बान्धवों की संख्या बढ़ने से बड़ा नहीं होता। ऋषियों ने यही नियम बनाया है कि हममें से वेदों का प्रवचन करने वाला ही महान होगा।

ये रूपगुणसम्पन्नाः प्रमदाहृदयङ्गमाः।
निवृत्ताः कामभोगेषु तान् नमस्यामि मातले।।

अनुशासन 96 दा० पा० अ० II

मातलि! मैं उन पुरुषों को नमस्ते करता हूँ जो रूप और गुणों से सम्पन्न हैं और जो युवतियों के हृदयों को मोह लेते हैं फिर भी काम भोगों से दूर रहते हैं।

धनं विद्यास्तथैश्वर्यं येषां न चलयेन्मतिम्।
चलितां ये निगृह्णन्ति तान् नित्यं पूजयाम्यहम्।। अनु 96 दा० पा०अ०II

जिनकी बुद्धि; धन, विद्या, और ऐश्वर्य प्राप्त कर विचलित नहीं होती और इन्हें पाकर यदि बुद्धि विचलित हो भी जाती है तो वे अपने विवेक ज्ञान से विचलित बुद्धि को वश में कर लेते हैं। उनकी मैं न पूजा करता हूँ।

ज्ञानप्रसन्नविद्यानां निरूढं धर्ममिच्छताम्।
परैः कीर्तितशौचानां मातले तान् नमाम्यहम्।। अनुशासन 96 दा० पा० अ०II

मातलि! मैं उन लोगों को नमस्ते करता हूँ जिनकी विद्या; ज्ञान के कारण निर्मल है। जो सद्धर्म का पालन करना चाहते हैं और जिनके आचरण की दूसरे लोग सराहना करते हैं।

निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः।
शुचयस्तीर्थ भूतास्ते ये भैक्ष्यमुपभुञ्जते।। अनुशासन 108/5

जो ममता, अहंकार, द्वन्द्वों, परिग्रह, (संग्रह करने की इच्छा) से रहित हैं एवं भिक्षा से जीवन का निर्वाह करते हैं ऐसे विशुद्ध अन्तःकरण वाले श्रेष्ठ पुरुष तीर्थस्वरूप होते हैं।

प्रजार्थमपि लोकार्थं महद्भिः क्रियते तपः।। अनु 142/33-34 दा० पा०

महापुरुष सारे प्राणियों के लिये तथा सभी लोकों के लिये तपस्या करते हैं।

महात्मनां तु तपसा सत्येन च शुचिस्मिते।
क्षमया च महाभागे भूतानां संस्थितिं विदुः।। अनु 142/33-34 दा० पा०

पवित्र मुस्कान वाली महाभाग्यशालिनी पार्वती! महात्माओं की तपस्या, सत्य आचरण और क्षमा से ही सम्पूर्ण प्राणियों का जीवन चल रहा है।

श्रेष्ठ वस्तुएँ

ज्ञानवृद्धो द्विजातीनां क्षत्रियाणां बलाधिकः।। सभा 38/17

ब्राह्मणों में वही पूजनीय है जो सबसे अधिक विद्वान् हो। क्षत्रियों में सबसे अधिक बलशाली को पूज्य माना जाता है।

वैश्यानां धान्यधनवाञ्छूद्राणामेव जन्मतः।। सभा 38/18

वैश्यों में धन-धान्य से भरपूर व्यक्ति पूजनीय होता है। केवल शूद्रों में जन्म से अर्थात् अधिक आयु का व्यक्ति पूज्य माना जाता है।

अग्निहोत्रमुखा वेदा गायत्री छन्दसां मुखम्।
राजा मुखं मनुष्याणां नदीनां सागरो मुखम्।। सभा 38/27

नक्षत्राणां मुखं चन्द्र आदित्यस्तेजसां मुखम्।
पर्वतानां मुखं मेरुर्गरुडः पततां मुखम्।। सभा 38/28

वेदों में यज्ञ, छन्दों में गायत्री, मनुष्यों में राजा, नदियों में सागर, ग्रह नक्षत्रों में चन्द्रमा, तेजोमय पदार्थों में सूर्य, पर्वतों में मेरु पर्वत और पक्षियों में गरुड़ श्रेष्ठ हैं।

बलज्येष्ठं स्मृतं क्षत्रं मन्त्रज्येष्ठा द्विजातयः।
धनज्येष्ठाः स्मृता वैश्याः शूद्रास्तु वयसाधिकाः।। उद्योग 168/17

क्षत्रियों में अधिक बलशाली, ब्राह्मणों में वेदमंत्रों का विद्वान्, वैश्यों में अधिक सम्पत्ति वाला और शूद्रों में बड़ी आयु वाला श्रेष्ठ माना जाता है।

मनुष्या जगति श्रेष्ठाः पक्षिणां पतगेश्वरः।
सरितां सागरः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम्।। भीष्म 121/34

चलने-फिरने वाले प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ है। पक्षियों में गरुड़, सरिताओं में समुद्र और चौपायों में गाय श्रेष्ठ मानी जाती है।

आदित्यस्तेजसां श्रेष्ठो गिरीणां हिमवान् वरः।
जातीनां ब्राह्मणः श्रेष्ठः श्रेष्ठस्त्वमसि धन्विनाम्।। भीष्म 121/35

तेजस्वी पदार्थों में सूर्य, पर्वतों में हिमालय श्रेष्ठ है। जातियों में ब्राह्मण जाति श्रेष्ठ है और धनुर्धरों में अर्जुन श्रेष्ठ है।

चतुष्पदां गौः प्रवरा लोहानां काञ्चनं वरम्।
शब्दानां प्रवरो मन्त्रो ब्राह्मणो द्विपदां वरम्।। शान्ति 11/11

चौपाये पशुओं में गाय श्रेष्ठ होती है, धातुओं में सोना। शब्दों में मन्त्र उत्कृष्ट है और मनुष्यों में ब्राह्मण उत्तम होता है।

मनुष्याणां तु राजन्यः क्षत्रियो मध्यमः गुणः।
कुञ्जरो वाहनानां च सिंहश्चारण्यवासिनाम्।। आश्व 43/1

अविः पशूनां सर्वेषामहिस्तु बिलवासिनाम्।
गवां गोवृषभश्चैव स्त्रीणां पुरुष एव च।। आश्व 43/2

मनुष्यों का राजा रजोगुण युक्त क्षत्रिय है। सवारियों में हाथी, वन में रहने वालों में शेर, सभी पशुओं में भेड़, बिल में रहने वालों में सांप, गौओं में साण्ड और स्त्रियों में पुरुष श्रेष्ठ है।

न्यग्रोधो जम्बूवृक्षश्च पिप्पलः शाल्मलिस्तथा।
शिंशपा मेषशृङ्गश्च तथा कीचकवेणवः।। आश्व 43/3

एते द्रुमाणां राजानो लोकेऽस्मिन् नात्र संशयः।

बरगद, जामुन, पीपल, सेमल, शीशम, मेढ़ासिंगी और पोले बांस इस संसार में निस्सन्देह उत्तम कोटि के वृक्ष हैं।

हिमवान् पारियात्रश्च सह्यो विन्ध्यस्त्रिकूटवान्।। आश्व 43/4

श्वेतो नीलश्च भासश्च कोष्ठवांश्चैव पर्वतः।
गुरुस्कन्धो महेन्द्रश्च माल्यवान् पर्वतस्तथा।। आश्व 43/5

एते पर्वतराजानो गणानां मरुतस्तथा।
सूर्यो ग्रहाणामधिपो नक्षत्राणां च चन्द्रमा।। आश्व 43/6

हिमालय, पारियात्र, सह्य, विन्ध्य, त्रिकूट, श्वेत, नील, भास, कोष्ठवान्, गुरुस्कन्ध, महेन्द्र और माल्यवान् ये पर्वतों के रग्जा हैं। मरुद्गण, गणों के; सूर्य, ग्रहों के और चन्द्रमा, नक्षत्रों के अधिपति हैं।

यमः पितृणामधिपः सरितामथ सागरः।
अम्भसां वरुणो राजा मरुतामिन्द्र उच्यते।। आश्व 43/7

यमराज, पितरों के और सागर, नदियों के स्वामी हैं। वरुण, जल के और इन्द्र, मरुद्गणों के स्वामी कहलाते हैं।

अर्कोऽधिपतिरुष्णानां ज्योतिषामिन्दुरुच्यते।
अग्निर्भूतपतिर्नित्यं ब्राह्मणानां बृहस्पतिः।। आश्व 43/8

गर्म वस्तुओं के सूर्य और तारों के स्वामी चन्द्र हैं। महाभूतों के नित्य अधीश्वर अग्नि हैं और ब्राह्मणों के स्वामी बृहस्पति हैं।

ओषधीनां पतिः सोमो विष्णुर्बलवतां वरः।
त्वष्टाधिराजो रूपाणां पशूनामीश्वरः शिवः।। आश्व 43/9

औषधियों के स्वामी सोम, बलशालियों में श्रेष्ठ विष्णु, रूपों के अधिपति सूर्य या विश्वकर्मा और पशुओं के ईश्वर शिव हैं।

दीक्षितानां तथा यज्ञो दैवानां मघवा तथा।
दिशामुदीची विप्राणां सोमो राजा प्रतापवान्।। आश्व 43/10

दीक्षा लेने वालों के स्वामी यज्ञ और देवताओं के स्वामी इन्द्र हैं। दिशाओं की स्वामिनी उत्तर दिशा है और ब्राह्मणों के राजा प्रतापशाली सोम है।

कुबेरः सर्वरत्नानां देवतानां पुरंदरः।
एष भूताधिपः सर्गः प्रजानां च प्रजापतिः।। आश्व 43/11

सभी तरह के रत्नों के स्वामी कुबेर, देवताओं के राजा इन्द्र और प्रजाओं के स्वामी प्रजापति हैं। यह प्राणियों (चर-अचर) के अधिपतियों का सर्ग है।

आदित्यो ज्योतिषामादिरग्निर्भूतादिरुच्यते।
सावित्री सर्वविद्यानां देवतानां प्रजापतिः।। आश्व 44/5

सूर्य सभी ग्रहों का और जठरानल सभी प्राणियों का आदि है। सावित्री सभी विद्याओं की और प्रजापति देवताओं के आदि हैं।

ओङ्कारः सर्ववेदानां वचसां प्राण एव च।
यदस्मिन् नियतं लोके सर्वं सावित्रीरुच्यते।। आश्व 44/6

ओंकार; सभी वेदों का आदि और प्राण; वाणी का आदि है। इस संसार में जो नियत उच्चारण हैं वे सब गायत्री कहलाते हैं।

सर्वेषां भक्ष्यभोज्यानामन्नं परममुच्यते।
द्रवाणां चैव सर्वेषां पेयानामाप उत्तमाः।। आश्व 44/10

खाने के सभी पदार्थों में अन्न और पीने योग्य और बहने वाली वस्तुओं में पानी सर्वोत्तम है।

तथा त्रिपथगा गंगा नदीनामग्रजा स्मृता।
तथा सरोदपानानां सर्वेषां सागरोऽग्रजः।। आश्व 44/14

सारी नदियों में स्वर्ग से उतरी गंगा श्रेष्ठ हैं और सभी सरोवरों में समुद्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

श्रेष्ठ स्त्री

भाविन्यर्थे हि सत्स्त्रीणां वैकृतं नोपजायते।। सभा 79/7

अवश्यम्भावी घटना होने पर साध्वी स्त्रियों का मन व्याकुल नहीं होता।

वैषम्यमपि सम्प्राप्ता गोपायन्ति कुलस्त्रियः।
आत्मानमात्मना सत्यो जितः स्वर्गो न संशयः।। वन 70/8

अच्छे कुल की स्त्रियाँ भारी विपत्ति में फंसकर भी स्वयं अपनी रक्षा करती हैं। ऐसा करके वे सत्य और स्वर्ग दोनों पर ही निस्संदेह विजय पा लेती हैं।

रहिता भर्तृभिश्चैव न कुप्यन्ति कदाचन।
प्राणांश्चारित्रकवचान् धारयन्ति वरस्त्रियः।। वन 90/9

श्रेष्ठ स्त्रियाँ पतियों से छूटने पर भी कभी क्रोध नहीं करतीं। वे अपने सदाचार-रूपी कवच से अपने प्राणों की रक्षा करती हैं।

स्त्रीणां वृत्तं पूज्यते देहरक्षा।। वन 306/23

स्त्रियों का सदाचार अपने शरीर की रक्षा ही है और इसी की सराहना की जाती है।

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्या विशेषतः।। उद्योग 38/11

स्त्रियाँ आदर योग्य, सौभाग्यशालिनी, पवित्र तथा घर की शोभा होती हैं। वे गृहलक्ष्मी हैं अतः उनकी विशेषरूप से रक्षा करनी चाहिये।

पतिर्वापि गतिर्नार्याः पिता वा वरवर्णिनी।। उद्योग 176/7

वरवर्णिनी! नारी के लिये पति या पिता ही सहारा होता है।

गतिः पतिः समस्थाया विषमे च पिता गतिः।
प्रव्रज्या हि सुदुःखेयं सुकुमार्या विशेषतः।। उद्योग 176/8

सामान्य परिस्थिति में नारी का आश्रय पति होता है और संकट काल में पिता। स्त्री के लिये संन्यास बड़ा कठिन होता है विशेषरूप से सुकुमारी के लिये।

स्त्रीरत्नं दुष्कुलाच्चापि विषादप्यमृतं पिबेत्।
अदूष्या हि स्त्रियो रत्नमाप इत्येव धर्मतः।। शान्ति 165/32

नीच कुल से भी अच्छी स्त्री को ले लेना चाहिये। विष में से भी अमृत ले लेना चाहिये, क्योंकि स्त्रियाँ, रत्न और जल दूषणीय नहीं होते।

संसार

न नूनं विद्यते सत्यं मानुषे किंचिदेव हि।। शल्य 65/13

इस मनुष्य लोक में कुछ भी सत्य अर्थात् स्थायी नहीं है। नाशवान है।

जन्ममृत्यु जराव्याधि वेदनाभिरभिद्रुतम्।
अपारमिव चास्वस्थं संसारं त्यजतः सुखम्।। शान्ति 9/33

इस संसार में जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग और दुःख-दर्द आते रहते हैं। अपार से लगने वाले इस संसार में कोई स्वास्थ्य या सुखी नहीं है अतः इस संसार को छोड़ने में ही सुख है।

दारुणो मर्त्यलोकोऽयं सर्वप्राणिविनाशनः।

इष्टबन्धुवियोगश्च तथेहाल्पं च जीवितम्।। शान्ति 153/84

यह मनुष्य लोक अत्यधिक दुःख भरा है। यहाँ सभी प्राणियों की मृत्यु ही होती है। प्रिय बन्धुओं से बिछोह होता है। यहाँ जीवन बहुत छोटा है।

नित्यमेव सुखं स्वर्गे सुखं दुःखमिहोभयम्।

नरके दुःखमेवाहुः सुखं तत्परमं पदम्।। शान्ति 190/14

स्वर्ग में सदा सुख मिलता है। इस संसार में सुख-दुःख दोनों मिलते हैं। नरक में दुःख ही है। इस संसार में सच्च सुख परमपद परमात्मा ही है।

पञ्चेन्द्रियजलां घोरां लोभकूलां सुदुस्तराम्।। शान्ति 235/11

मन्युपङ्कामनाधृष्यां नदीं तरति बुद्धिमान्।

कालमभ्युद्यतं पश्येन्नित्यमत्यन्तमोहनम्।। शान्ति 235/12

भयंकर संसाररूपी नदी में पाँच ज्ञानेनिद्रयाँ इसका जल हैं। लोभ इस नदी का किनारा है। इसे पार करना बड़ा कठिन है। क्रोध इस नदी की कीचड़ है। इस नदी के वेग को रोकना बड़ा कठिन है। किन्तु बुद्धिमान इसे पार कर जाते हैं। प्राणियों को मोह में डालने वाला काल आक्रमण के लिये सदा तैयार रहता है। इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिये।

महता विधिदृष्टेन बलेनाप्रतिघातिना।

स्वभावस्त्रोतसा वृत्तमुह्यते सततं जगत्।। शान्ति 235/13

यह संसार विधाता की दृष्टि में आ सकता है। यह संसार अत्यन्त महान स्वभावरूप धारा प्रवाह में निरन्तर बहता जा रहा है। इस प्रवाह का वेग कहीं रुकता नहीं है।

कालोदकेन महता वर्षावर्तेन संततम्।

मासोर्मिणर्तुवेगेन पक्षोलपतृणेन च।। शान्ति 235/14

निमेषोन्मेषफेनेन अहोरात्रजलेन च।

कामग्राहेण घोरेण वेदयज्ञप्लवेन च।। शान्ति 235/15

धर्मद्वीपेन भूतानां चार्थकामजलेन च।

ऋतवाङ्मोक्षतीरेण विहिंसातरुवाहिना।। शान्ति 235/16

युगह्रदौघमध्येन ब्रह्मप्रायभवेन च।
धात्रा सृष्टानि भूतानि कृष्यन्ते यमसादनम्।। शान्ति 235/17

यह कालरूपी महान नद बह रहा है। इसमें वर्ष के रूप में भंवरें सदा उठ रहे हैं। महीने इस नदी की ऊँची-ऊँची लहरें हैं। ऋतुएँ इसका वेग हैं। पखवाड़े लताएं और तिनकें हैं। निमेष और उन्मेष (पलक झपकना और खोलना) इस नद के झाग हैं। दिन-रात इस का जल-प्रवाह है। कामदेव इसका भंयकर मगरमच्छ है। वेद और यज्ञ इस नदी को पार कराने की नाव हैं। प्राणियों का आश्रय बना हुआ धर्म इसका द्वीप है। अर्थ और काम जल हैं। सत्य भाषण और मोक्ष दोनों किनारे हैं। हिंसारूपी वृक्ष काल नदी के प्रवाह में बह रहे हैं। युग इसके कुण्ड हैं। ब्रह्मा ही इस कालनद को उत्पन्न करने वाला पर्वत है। इस काल नदी के प्रवाह में पड़कर विधाता के बनाये हुए प्राणी यमलोक की ओर बहते हुए खिंचे चले जाते हैं।

एतत् प्रज्ञामयैर्धीरा निस्तरन्ति मनीषिणः।
प्लवैरप्लवन्तो हि किं करिष्यन्त्यचेतसः।। शान्ति 235/18

बुद्धिमान और धैर्यशाली मनुष्य बुद्धि की नाव से इस कालनद को पार कर लेते हैं। बुद्धि की नौका से रहित अविवेकी मनुष्य क्या करेंगे?

संघातवन्मर्त्यलोकः परस्परमपाश्रितः।
कदलीगर्भनिःसारो नौरिवाप्सु निमज्जति।। शान्ति 298/16

यह मर्त्यलोक स्त्री-पुत्र, पशु आदि एक दूसरे पर आश्रित है। यह संसार केले के तने के भीतरी भाग की तरह निस्सार है। पानी में नाव के डूब जाने की भाँति यह संसार भी काल के प्रवाह में डूब जाता है।

सज्जन

सन्तः सत्याभिनन्दिनः।। आदि 93/17

सज्जन सत्य को अच्छा मानते हैं।

सत्यं हि सन्तः प्रतिपूजयन्ति।। आदि 93/35

सज्जन सत्य की पूजा या आदर करते हैं।

नार्याः म्लेच्छन्ति भाषाभिर्मायया न चरन्त्युत।। सभा 59/11

श्रेष्ठ पुरुष किसी को अनुचित बात नहीं कहते और न ही वे कपटपूर्ण व्यवहार करते हैं।

न चैवोक्ता न चानुक्ताः हीनतः परुषा गिरः।
भारत प्रतिजल्पन्ति सदा तूत्तमपूरुषाः।। सभा 72/8

श्रेष्ठपुरुष, नीच लोगों द्वारा कही गई या न कही गई कड़वी बातों का उत्तर कभी नहीं देते हैं।

स्मरन्ति सुकृतान्येव न वैराणि कृतान्यपि।
सन्तः प्रतिविजानन्तो लब्धसम्भावनाः स्वयम्।। सभा 72/9

बदला लेने का उपाय जानते हुए भी सज्जन दूसरों के उपकार ही याद रखते हैं किसी के वैर को नहीं। सज्जनों को सम्मान स्वयं मिलता है।

विरोधं नाधिगच्छन्ति ये त उत्तमपूरुषाः।। सभा 73/6

जो किसी से वैर नहीं रखते वे ही श्रेष्ठजन कहलाते हैं।

सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ते प्रतिक्रियाम्।। सभा 73/7

सज्जन परोपकार करते हैं। किसी से बदला नहीं लेते।

संवादे परुषाण्याहुर्युधिष्ठिर नराधमाः।
प्रत्याहुर्मध्यमास्त्वेतेऽनुक्ताः परुषमुत्तरम्।। सभा 73/8
न चोक्ता नैव चानुक्तास्त्वहिताः परुषा गिरः।
प्रतिजल्पन्ति वै धीराः सदा तूत्तमपूरुषाः।। सभा 73/9

युधिष्ठिर! नीच मनुष्य साधारण बातचीत में भी कटुवचन कहने लगते हैं। जो स्वयं कटुवचन न कहकर उत्तर में कटुवचन बोलते हैं वे मध्यम श्रेणी के लोग होते हैं। किन्तु धीर और श्रेष्ठपुरुष किसी के कटुवचन कहने या न कहने पर कभी भी कठोर और बुरी बात नहीं कहते।

असम्भिन्नार्यमर्यादाः साधवाः प्रियदर्शनाः।। सभा 73/11

सत्पुरुष आर्य मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते। उन्हें देख सभी प्रसन्न होते हैं।

नैवं वाचा व्यवसितं भीम विज्ञायते सताम्।। सभा 77/30

भीम! सज्जन जो काम करना चाहते हैं उसका वे ढोल नहीं पीटते।

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सुनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन।। वन 2/54

तिनकों का आसन, बैठने के लिये स्थान, जल और मधुर वाणी इन चार वस्तुओं की सज्जनों के घरों में कभी कमी नहीं होती।

बालेषु पुत्रेषु कृपणं वदत्सु तथा वाचमवचिन्वन्ति सन्तः।। वन 134/27

सन्तपुरुष विनम्र होकर बोलने वाले बालकों और पुत्रों के शब्दों में से सच्ची और हितकारी बात चुन लेते हैं।

साधुश्चासाधवे साधुः साधवे नाप्नुयात् कथम्।। वन 194/4

सज्जन, दुष्टों के प्रति भी अच्छा व्यवहार करते हैं फिर साधु पुरुषों के प्रति वे अच्छा व्यवहार क्यों नहीं करेंगे?

कामक्रोधौ वशे कृत्वा दम्भं लोभमनार्जवम्।
धर्ममित्येव सन्तुष्टास्ते शिष्टाः शिष्टसम्मताः।। वन 207/63

जो लोग काम, क्रोध, अभिमान, लोभ और कुटिल व्यवहार को वश में करके केवल धर्माचरण से सन्तुष्ट रहते हैं वे शिष्ट कहलाते हैं और सज्जन उनका आदर करते हैं।

न तेषां विद्यतेऽवृत्तं यज्ञस्वाध्यायशीलिनाम्।
आचारपालनं चैव द्वितीयं शिष्टलक्षणम्।। वन 207/64

सज्जन स्वेच्छारी नहीं होते, वे यज्ञ और स्वाध्याय में लगे रहते हैं। सदाचार का पालन सज्जनों की दूसरी पहिचान है।

वेदस्योपनिषद् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषत् त्यागः शिष्टाचारेषु नित्यदा।। वन 207/67

वेद का सार सत्य है, सत्य का सार इन्द्रियनिग्रह है और इन्द्रियसंयम का सार त्याग है। शिष्ट पुरुषों में त्याग की भावना सदा रहती है।

आचारश्च सतां धर्मः सन्तश्चाचारलक्षणाः।। वन 207/75

सज्जनों का धर्म सदाचार ही होता है। सदाचार से ही सज्जनों की पहिचान होती है।

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः।। वन 297/35

मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी वे वैर न करना, दया और दान करना यह सज्जनों का सनातन धर्म है।

आत्मन्यपि न विश्वास्तथा भवति सत्सु यः।

तस्मात् सत्सु विशेषेण सर्वः प्रणयमिच्छति।। वन 297/42

मनुष्य को अपने ऊपर भी इतना विश्वास नहीं होता जितना सन्तों पर होता है। इसलिये सभी लोग सन्तों से विशेष प्रीति रखना चाहते हैं।

सतां सदा शाश्वत धर्मवृत्तिः सन्तो न सीदन्ति न च व्यथन्ति।

सतां सद्भिर्नाफलः संगमोऽस्ति सद्भ्यो भयं नानुवर्तन्ति सन्तः।।

वन 297/47

सत्पुरुषों का मन सदा धर्म में लगा रहता है। वे कभी दुःखी या व्यथित नहीं होते। सन्तों के साथ श्रेष्ठ पुरुषों की संगति निष्फल नहीं होती। श्रेष्ठ पुरुष, सन्तों से कभी भय नहीं मानते।

सन्तो हि सत्येन नयन्ति सूर्यं सन्तो भूमिं तपसा धारयन्ति।

सन्तो गतिर्भूतभव्यस्य राजन् सतां मध्ये नावसीदन्ति सन्तः।। वन 297/48

श्रेष्ठ पुरुष सत्य के बल से ही सूर्य का संचालन करते हैं। सन्तों के तप से यह पृथिवी टिकी हुई है। राजन्! सन्त ही भूत और भविष्यकाल के आश्रयदाता हैं। सन्तों के बीच श्रेष्ठपुरुष कष्ट नहीं उठाते।

न च प्रसादः सत्पुरुषेषु मोघो न चाप्यर्थो नश्यति नापि मानः।

यस्मादेतन्नियतं सत्सु नित्यं तस्मात् सन्तो रक्षितारो भवन्ति।।

वन 297/50

सत्पुरुषों की कृपा कभी व्यर्थ नहीं जाती, उनके साथ से किसी का धन और सम्मान नष्ट नहीं होता। सन्तों में कृपा, सम्मान और धन सदा सुरक्षित रहता है इसीलिये सन्त जगत् के रक्षक होते हैं।

पूर्वाभिपन्नाः सन्तश्च भजन्ते पूर्वचोदनम्।। उद्योग 4/9

सज्जनों को जो पहिले सहायता के लिये पुकारता है वे उसी की सहायता करते हैं।

दुःखानि वै महात्मानः प्राप्नुवन्ति युधिष्ठिर।। उद्योग 8/53

युधिष्ठिर! सज्जनों को भी दुःख झेलने पड़ते हैं।

दृढं सतां संगतं चापि नित्यं ब्रूयाच्चार्थं ह्यर्थकृच्छ्रेषु धीरः।
महार्थवत् सत्पुरुषेण संगतं तस्मात् सन्तं न जिघांसेत धीरः।।

उद्योग 10/24

सज्जनों का साथ अटूट और नित्य बना रहता है। संकट के समय सन्त हितकर बात ही कहते हैं। सज्जनों की संगति से बहुत लाभ होता है। अतः सन्त को नहीं मारना चाहिये।

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः।
मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः।। उद्योग 34/44

विद्यामद, धनमद और कुल का अभिमान मूर्खों के लिये तो ये मद हैं किन्तु ये तीनों मद सज्जनों के लिये दम अर्थात् संयम के साधन होते हैं।

गतिरात्मवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः।
असतां च गतिः सन्तो न त्वसन्तः सतां गतिः।। उद्योग 34/46

मनस्वी पुरुषों का सहारा सन्त ही हैं, सन्तों के आश्रय भी सत्पुरुष है। सन्त लोग दुष्टें को भी सहारा देते हैं किन्तु दुष्ट लोग सन्तों को सहारा नहीं देते।

आर्जवेन नरं युक्तमार्जवात् सव्यपत्रपम्।
अशक्तं मन्यमानास्तु धर्षयन्ति कुबुद्धयः।। उद्योग 39/62

दुष्ट बुद्धिवाले लोग सरल पुरुष को और सरलता के कारण संकोची व्यक्ति को कमजोर समझकर तंग करते हैं।

अलं प्रसन्ना हि सुखाय सन्तः।। उद्योग 40/1

जिस से सन्त प्रसन्न हो जाते हैं वह सदा सुखी रहता है।

अभयं यस्य भूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः।
स वै परिणतप्रज्ञः प्रख्यातो मनुजोत्तमः।। उद्योग 63/19

जिससे कोई प्राणी न डरे और जिससे सभी प्राणियों का भय दूर हो गया है। ऐसा परिपक्व बुद्धिवाला व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ मनुष्य कहलाता है।

शकुनीनामिवाकाशे पदं नैवोपलभ्यते।
एवं प्रज्ञान तृप्तस्य मुनेर्वर्त्म न विद्यते।। उद्योग 63/23

जैसे आकाश में पक्षियों के पैरों के निशान नहीं दिखाई देते वैसे ही ज्ञानानन्द से तृप्त मुनि का मार्ग समझ में नहीं आता।

आशाभङ्गं न कुर्वन्ति भक्तस्यार्याः कथंचन।। द्रोण 33/9

श्रेष्ठ पुरुष अपने भक्त की आशा किसी भी तरह नष्ट नहीं करते हैं।

गुणानामेव वक्तारः सन्तः सत्सु नराधिप।। शान्ति 132/13

राजन्! सज्जन तो श्रेष्ठ पुरुषों से दूसरों के गुणों की ही चर्चा करते हैं।

असाधुभ्योऽस्य न भयं न चौरेभ्यो न राजतः।
अकिंचित् कस्यचित् कुर्वन् निर्भयः शुचिरावसेत्।। शान्ति 259/15

जो किसी का कोई बुरा नहीं करता उसे दुष्टों, चोरों या राजा से कोई डर नहीं होता। शुद्ध आचार विचार वाला पुरुष सदा निर्भय रहता है।

मुदितः शुचिरभ्येति सर्वतो निर्भयः सदा।
न हि दुश्चरितं किंचिदात्मनोऽन्येषु पश्यति।। शान्ति 259/17

शुद्ध आचार-विचार वाला सदा प्रसन्न रहता है उसे कहीं से कोई डर नहीं होता। वह अपना कोई दुष्कर्म दूसरों में नहीं देखता अर्थात् वह अपनी गलती के लिये दूसरों को दोष नहीं देता।

सदाचारो मतो धर्मः सन्तस्त्वाचार लक्षणाः।। शान्ति 260/5

सत्पुरुषों का आचरण धर्म माना जाता है। सदाचारी पुरुष ही सन्त होते हैं।

धर्मात्मनः सर्वदा सज्जना हि।। अनुशासन 1/26

सज्जन सदा धर्म का पालन करते रहते हैं।

अध्यात्मं नैष्ठिकं सद्भि धर्मकामै र्निषेव्यते।। अनु 143/16

धर्मपालन करना चाहने वाले सज्जन आध्यात्मिक जीवन बिताते हैं।

तदेव तावत् पर्याप्तं सज्जनस्य निदर्शनम्।। अनु 148/42

सज्जन के लिये इशारा ही काफी होता है।

न स्मरन्त्यपराद्धानि स्मरन्ति सुकृतान्यपि।
असम्भिन्नार्य मर्यादाः साधवाः पुरुषोत्तमाः।। आश्रमवास 12/2

जिन्होंने श्रेष्ठ मर्यादाओं को नहीं तोड़ा है ऐसे साधु स्वभाव वाले उत्तम पुरुष दूसरों के अपराधों को नहीं अपितु अच्छे कामों को ही याद रखते हैं।

सत्य

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।। शान्ति 162/26

अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते।। आदि 74/103

यदि एक हजार अश्वमेध यज्ञ तराजू के एक पलड़े पर रखे जायें और दूसरे पलड़े पर सत्य व्यवहार तो सत्य का पलड़ा ही भारी रहता है।

सर्व वेदाधिगमनं सर्व तीर्थावगहनम्।
सत्यं च वचनं राजन् समं वा स्यान्न वा समम्।। आदि 74/104

राजन्! सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन और सभी तीर्थों का स्नान भी सत्य वचन के समान होगा या नहीं इसमें सन्देह ही है।

नास्ति सत्यसमो धर्मो न सत्याद् विद्यते परम्।
न हि तीव्रतरं किंचिदनृतादिह विद्यते।। आदि 74/105

सत्य के समान कोई धर्म नहीं है, सत्य से बढ़कर कुछ भी नहीं है। झूठ से बढ़कर भयंकर पाप इस संसार में कोई नहीं है।

राजन् सत्यं परं ब्रह्म सत्यं च समयः परः।
मा त्याक्षीः समयं राजन् सत्यं संगतमस्तु ते।। आदि 74/106

राजन्! पर ब्रह्म का स्वरूप सत्य ही है। सत्य सबसे बड़ा नियम है। अतः राजन् आप अपनी सत्य प्रतिज्ञा मत छोड़िये, आप सदा सत्य का पालन करते रहें।

यथा कर्म शुभं कृत्वा स्वर्गोपगमनं ध्रुवम्।
यथा चायुर्ध्रुवं सत्ये त्वयि धर्मस्तथा ध्रुवः।। आदि 103/4

जैसे शुभ कर्म करने से निश्चय ही स्वर्ग मिलता है वैसे ही सत्य बोलने से निश्चय ही आयु बढ़ती है। उसी तरह तुम में धर्म का पालन भी निश्चित है।

सत्यं राजसु शोभते।। सभा 21/44

राजा सत्य बोलने से सम्मानित होते हैं।

सत्यं श्रेष्ठं पाण्डव विप्रलापम्।। वन 5/21

हे पाण्डव! व्यर्थ की बातें छोड़कर सत्य बोलना ही श्रेष्ठ होता है।

सत्यं चानृततः श्रेयो नृशंस्याच्चानृशंसता।। वन 29/15

झूठ से सत्य अच्छा होता है और क्रूरता की अपेक्षा दया अच्छी होती है।

राज्यं च पुत्राश्च यशो धनं च सर्वं न सत्यस्य कलामुपैति।। वन 34/22

राज्य, पुत्र, यश और धन ये सब सत्य के एक अंश के बराबर भी नहीं हैं।

सत्यं तथा व्याहरतां नानृते रमते मनः।। वन 206/39

सत्य बोलने वाले लोगों का मन कभी असत्य में नहीं लगता।

सत्ये कृत्वा प्रतिष्ठां तु प्रवर्तन्ते प्रवृत्तयः।। वन 207/74

सत्य को आधार बनाकर ही सज्जन अपने कार्य करते हैं।

प्राणान्तिके विवाहे च वक्तव्यमनृतं भवेत्।
अनृतेन भवेत् सत्यं सत्येनैवानृतं भवेत्।। वन 209/3

प्राणों पर संकट आ पड़ने पर या कन्या के विवाह आदि पर यदि झूठ बोलना पड़ता है तो वह सत्य ही माना जाता है। यदि ऐसे नाजुक अवसरों पर सत्य बोला जाता है तो उसका फल उल्टा होने से असत्य माना जाता है।

यद् भूतहितमत्यन्तं तत् सत्यमिति धारणा।। वन 209/4

जिस बात के कहने से प्राणियों का भला होता हो वह बात सत्य मानी जाती है।

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यं ज्ञानं हितम् भवेत्। शान्ति 329/13
यद् भूतहितमत्यन्तं तद् वै सत्यं परं मतम्।। वन 213/31

सत्य बोलना सदा कल्याणकारी होता है। यथार्थ ज्ञान ही हितकारक होता है। जिससे प्राणियों का अत्यधिक हित हो वही उत्तम सत्य होता है।

सत्यं सत्येन दृश्यते।। उद्योग 13/27

सत्य को सत्य से ही देखा जा सकता है।

अक्रोधेन जयेत् क्रोधमसाधुं साधुना जयेत्।
जयेत् कदर्यं दानेन जयेत् सत्येन चानृतम्।। उद्योग 39/72

अक्रोध से क्रोध पर, अच्छे आचरण से दुष्ट पुरुष पर, दान से कंजूस पर और सत्य से झूठ पर विजय प्राप्त करनी चाहिये।

सत्ये ह्यमृतमाहितम्।। उद्योग 43/37

सत्य में ही अमृत प्रतिष्ठित है।

सत्यमेव सतां व्रतम्।। उद्योग 43/38

सत्य ही सज्जनों का व्रत है।

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद् विद्यते परम्।
तत्त्वेनैव सुदुर्ज्ञेयं पश्य सत्यमनुष्ठितम्।। कर्ण 69/31

सच बोलना बहुत अच्छा है। सत्य से बढ़कर और कुछ नहीं है। किन्तु यह समझ लेना चाहिये कि सज्जनों द्वारा आचरण में लाये गये सत्य का वास्तविक स्वरूप जान लेना बहुत कठिन है।

भवेत् सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्।
यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत्।। कर्ण 62/32

जब झूठ बोलने से सत्य बोलने जैसा अच्छा फल मिले और सत्य बोलने से झूठ बोलने जैसा बुरा परिणाम हो वहाँ सत्य नहीं कहना चाहिये अपितु झूठ बोलना ही उचित होता है।

विवाहकाले रतिसम्प्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे।
विप्रस्य चार्थे ह्यनृतं वदेत पञ्चानृतान्याहुरपातकानि।। कर्ण 69/33

विवाह के अवसर पर, स्त्री प्रसंग के समय, किसी के प्राणों पर संकट आने पर, अपना सारा धन छिन जाने के समय तथा ब्राह्मण के भले के लिये झूठ बोल देना चाहिये। इन पाँच अवसरों पर झूठ बोलने से पाप नहीं लगता।

येऽन्यायेन जिहीर्षन्तो धर्ममिच्छन्ति कर्हिचित्।
अकूजनेन मोक्षं वा नानुकूजेत् कथंचन।। कर्ण 69/59

जो लोग अन्याय से किसी का धन आदि छीनना चाहते हों और अपना मतलब सिद्ध करने के लिये दूसरों से सत्य बोलने के धर्म का पालन कराना चाहते हों वहां ऐसे लोगों के सामने चुप रहकर अपना पीछा छुड़ाना चाहिये, ऐसी किसी भी परिस्थिति में कुछ नहीं कहना चाहिये।

अवश्यं कूजितव्ये वा शंकेरन्नप्यकूजतः।
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत् सत्यमविचारितम्।। कर्ण 69/60

यदि बोलना ही पड़े या न बोलने से सन्देह पैदा हो तब झूठ बोलना ही ठीक होता है। ऐसे अवसर पर बोला गया झूठ, सत्य ही होता है।

न हिं सत्यादृते किंचित् राज्ञां वै सिद्धिकारकम्।। शान्ति 56/17

सत्य के अतिरिक्त कोई और वस्तु राजाओं के लिये सफलता देने वाली नहीं है।

सत्यं सत्सु सदा धर्मः सत्यं धर्मः सनातनः।
सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमा गतिः।। शान्ति 162/4

सज्जन सत्य रूप धर्म का सदा पालन करते हैं। सत्य ही सनातन धर्म है। सत्य के आगे सदा सिर झुकाना चाहिये। सत्य ही परम गति है।

सत्यं धर्मस्तपो योगः सत्यं ब्रह्म सनातनम्।
सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।। शान्ति 162/5

सत्य ही धर्म, तप और योग है। सत्य ही सनातन ब्रह्म है। सत्य को अत्यन्त श्रेष्ठ यज्ञ कहा गया है। सब कुछ सत्य पर ही टिका हुआ है।

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्।
स्थितिर्हि सत्यं धर्मस्य तस्मात् सत्यं न लोपयेत्।। शान्ति 162/24

सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। झूठ से बड़ा कोई पाप नहीं है। धर्म, सत्य के सहारे ही रहता है इसलिये सत्य का लोप नहीं करना चाहिये।

तुलामारोपितो धर्मः सत्यं चैवेति नः श्रुतम्।
समकक्षां तुलयतो यतः सत्यं ततोऽधिकम्।। शान्ति 199/69

जब धर्म और सत्य को तराजू के पलड़ों पर रखा गया तब सत्य का पलड़ा ही भारी निकला।

न मृत्युसेनामायान्तीं जातु कश्चित् प्रबाधते।
ऋते सत्यमसत् त्याज्यं सत्ये ह्यमृतमाश्रितम्।। शान्ति 175/28

सत्य के बिना कोई भी मनुष्य आती हुई मृत्यु की सेना को नहीं रोक सकता। अतः असत्य को छोड़ देना चाहिये। अमरत्व सत्य से ही मिलता है।

अमृतं चैव मृत्युश्च द्वयं देहे प्रतिष्ठितम्।
मृत्युमापद्यते मोहात् सत्येनापद्यतेऽमृतम्।। शान्ति 175/30

हमारे शरीर में मृत्यु और अमरत्व दोनों ही विद्यमान हैं। मनुष्य मोह के कारण मृत्यु पाता है और सत्य से अमरत्व।

सत्यं ब्रह्म तपः सत्यं सत्यं विसृजते प्रजाः।
सत्येन धार्यते लोकः स्वर्गं सत्येन गच्छति।। शान्ति 190/1

सत्य ही ब्रह्म है। सत्य ही तपस्या है। सत्य ही प्रजाओं को उत्पन्न करता है।

सत्य के आधार पर ही संसार टिका हुआ है। सत्य के आचरण से ही मनुष्य स्वर्ग में जाता है।

न यज्ञाध्ययने दाने नियमास्तारयन्ति हि।
यथा सत्यं परे लोके तथेह पुरुषर्षभ।। शान्ति 199/62

पुरुषश्रेष्ठ! इस लोक में और परलोक में सत्य जिस तरह उद्धार करता है वैसा यज्ञ, स्वाध्याय, दान और शौच, सन्तोष आदि नियम भी नहीं कर सकते।

तपांसि यानि चीर्णानि चरिष्यन्ति च यत् तपः।
शतैः शतसहस्त्रैश्च तैः सत्यान्न विशिष्यते।। शान्ति 199/63

लोगों ने अब तक जितनी तपस्याएँ की हैं या आगे भी जितने तप किये जायेंगे उन सबका सौ गुना या लाख गुना भी सत्य से बढ़कर नहीं होगा।

सत्यमेकाक्षरं ब्रह्म सत्यमेकाक्षरं तपः।
सत्यमेकाक्षरो यज्ञः सत्यमेकाक्षरं श्रुतम्।। शान्ति 199/64

सत्य की एकमात्र अविनाशी ब्रह्म है। सत्य ही एकमात्र अक्षय तपस्या है। सत्य ही एकमात्र नष्ट न होने वाला यज्ञ और नाशरहित वेद है।

न सत्याद् विद्यते परम्।। शान्ति 329/12

सत्य से बढ़कर और कोई वस्तु श्रेष्ठ नहीं है।

सत्यं वेदेषु जागर्ति फलं सत्ये परं स्मृतम्।
सत्याद् धर्मो दमश्चैव सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।। शान्ति 199/65

वेदों में सत्य ही जागता है। अर्थात् वेदों में सत्य की महिमा बताई गई है। सत्य का फल या परिणाम सबसे उच्छ्र होता है। धर्माचरण और इन्द्रिय संयम सत्य से ही हो पाता है। सत्य के कारण सभी कुछ टिका हुआ है।

सत्यं वेदास्तथाङ्गानि सत्यं विद्यास्तथा विधिः।
व्रतचर्या तथा सत्यमोङ्कारः सत्यमेव च।। शान्ति 199/66

सत्य ही वेद और छह वेदांग हैं। सत्य ही विद्या और विधि अनुष्ठान हैं। सत्य से ही व्रतों का पालन किया जाता है। ओंकार भी सत्य ही है।

प्राणिनां जननं सत्यं सत्यं संततिरेव च।
सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः।। शान्ति 199/67

सत्य प्राणियों का पिता है। सत्य ही सन्तान है। सत्य से ही वायु चलती है और सत्य से ही सूर्य गर्मी देता है।

सत्येन चाग्निर्दहति स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः।
सत्यं यज्ञस्तपो वेदाः स्तोभा मन्त्राः सरस्वती।। शान्ति 199/68

सत्य से ही आग जलती है। स्वर्ग भी सत्य पर टिका है। यज्ञ, तप, वेद, स्तोभ, (सामगान के पदपूरक हाई, हावु आदि अक्षर) मन्त्र और सरस्वती ये सब सत्य के स्वरूप ही हैं।

यतो धर्मस्ततः सत्यं सर्वं सत्येन वर्धते।। शान्ति 199/70

जहाँ धर्म है वहां सत्य है। सत्य से ही सब फलते-फूलते हैं।

विवक्षता च सद्वाक्यं धर्मं सूक्ष्ममवेक्षता।
सत्यां वाचमहिंस्त्रां च वदेदनपवादिनीम्।। शान्ति 215/10

कल्कापेतामपरुषामनृशंसामपैशुनाम् ।
ईदृगल्पं च वक्तव्यमविक्षिप्तेन चेतसा।। शान्ति 215/11

जो व्यक्ति सूक्ष्म धर्म को देखता है और अच्छी बात कहना चाहता है उसे ऐसी बात कहनी चाहिये जो सत्य तो हो किन्तु हिँसा और परनिन्दा से रहित हो। जिस वाणी में शठता, कठेरता, क्रूरता और चुगली आदि बुराइयाँ न हों ऐसी बात भी बहुत संक्षेप से और स्थिर चित्त से कहनी चाहिये।

तस्मान्मनोवाक्शरीरै राचरेद् धैर्यमात्मनः।। शा० 215/13

अतः मन, वचन और शरीर से ऐसे काम करे जिनसे धैर्य मिले।

वाक्प्रबद्धो हि संसारो विरागाद् व्याहरेद् यदि।
बुद्ध्याप्यनुगृहीतेन मनसा कर्म तामसम्।। शान्ति 215/12

संसार का सारा व्यवहार ही वाणी से बंधा हुआ है। यदि वैराग्य हो तो बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके अपने हिंसा आदि तामसिक कर्म बता दे।

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद् विद्यते परम्।
सत्येन विधृतं सर्वं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।। शान्ति 259/10

सत्य बोलना अच्छा काम है। सत्य से बढ़कर श्रेष्ठ कार्य कोई नहीं है। सत्य ने ही सबको सम्हाल रखा है। सत्य में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है।

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यज्ञानं तु दुष्करम्।
यद् भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं ब्रवीम्यहम्।। शान्ति 289/20

सत्य बोलना कल्याणकारी है किन्तु सत्य को वास्तविक रूप से जानना कठिन है। मैं उसी को सत्य कहता हूँ जिससे प्राणियों का अत्यधिक भला होता हो।

सत्येन शीलेन सुखं नरेन्द्र।। शान्ति 291/23

राजन्! सत्यभाषण से और सच्चरित्र से ही जीवन में सुख मिलता है।

न पावनतमं किंचित् सत्यादध्यगमं क्वचित्।। शान्ति 299/30

मैंने सत्य से बढ़कर और कोई परम पवित्र वस्तु कहीं भी नहीं पाई है।

सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारवारस्य नौरिव।। शान्ति 299/31

जैसे जहाज से समुद्र पार किया जाता है। वैसे ही सत्य स्वर्ग जाने की सीढ़ी है।

सत्येन सूर्यस्तपति सत्येनाग्निः प्रदीप्यते।
सत्येन मरुतो वान्ति सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।। अनुशासन 75/30

सत्य के प्रभाव से सूर्य तपता है। सत्य से अग्नि प्रज्वलित होती है। सत्य से ही वायु चलती है। संसार का सारा व्यवहार सत्य पर ही आधारित है।

सत्येन देवाः प्रीयन्ते पितरो ब्राह्मणास्तथा।
सत्यमाहुः परो धर्मस्तमात् सत्यं न लङ्घयेत्।। अनु 75/31

सत्य आचरण से देवता, पितर और ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं। सत्य ही श्रेष्ठ धर्म है अतः सत्य को नहीं छोड़ना चाहिये।

मुनयः सत्यनिरता मुनयः सत्यविक्रमाः।
मुनयः सत्यशपथास्तस्मात् सत्यं विशिष्यते।। अनु 75/32

ऋषि-मुनि सत्य परायण होते हैं। मुनिजन सदा सत्य बोलते हैं। वे सच्ची प्रतिज्ञा करते हैं अतः सत्य सर्वश्रेष्ठ है।

सत्यं वदत मासत्यं सत्यं धर्मः सनातनः।
हरिश्चन्द्रश्चरति वै दिवि सत्येन चन्द्रवत्।। अनु 115/62

सत्य बोलो, झूठ मत बोलो। सत्य ही सनातन धर्म है। राजा हरिश्चन्द्र सत्य के प्रभाव से ही चन्द्रमा की तरह आकाश में विचरते हैं।

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्।।
अनु 141/160-61 दा० पा०

सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और झूठ से बढ़कर कोई पाप नहीं है।

नास्ति सत्यात् परं दानं नास्ति सत्यात् परं तपः।। अनु 145 दा० पा०अ०XI

सत्य से बढ़कर कोई दान नहीं है और सत्य से बढ़कर कोई तपस्या नहीं है।

यथा श्रुतं यथा दृष्टमात्मना यद् यथा कृतम्।
तथा तस्याविकारेण वचनं सत्य लक्षणम्।। अनु 145 दा० पा० अ० XI

जैसा सुना हो, जैसा देखा हो और अपने आप जो कुछ किया गया है उसमें कोई बात बदले बिना कह देना सत्य बोलना होता है।

दीर्घायुश्च भवेत् सत्यात् कुलसन्तानपालकः।
लोकसंस्थितिपालश्च भवेत् सत्येन मानवः।। अनु 145 दा० पा०अ० XI

मनुष्य सत्य बोलने से लम्बी आयु पाता है। वह अपनी कुल परम्परा का पालन करता है और लोक मर्यादा की रक्षा करता है।

सत्याद् भूतानि जातानि स्थावराणि चराणि च।
तपसा तानि जीवन्ति इति तद् वित्त सुव्रताः।
स्वां योनिं समतिक्रम्य वर्तन्ते स्वेन कर्मणा।। आश्व 35/32

उत्तम व्रतों का पालन करने वालो! यह जानलो कि संसार के वृक्ष-वनस्पति, पर्वत आदि स्थावर प्राणी और पदार्थ तथा चलने फिरने वाले सभी प्राणी सत्य स्वरूप परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं। ये सभी प्राणी तपरूप कर्म से जीवित रहते हैं। वे अपने कारण, ब्रह्म को भूलकर जन्म-मरण के चक्र में फंसे रहते हैं।

ब्रह्म सत्यं तपः सत्यं सत्यं चैव प्रजापतिः।
सत्याद् भूतानि जातानि सत्यं भूतमयं जगत्।। आश्व 35/34

ब्रह्म सत्यस्वरूप है, तप सत्य है और प्रजापति भी सत्य हैं। सत्य से ही सभी प्राणियों का जन्म हुआ है। यह भौतिक जगत् सत्यस्वरूप ही है।

सन्तोष

अन्तो नास्ति पिपासायाः संतोषः परमं सुखम्। शान्ति 330/21
तस्मात् संतोषमेवेह परं पश्यन्ति पण्डिताः।। वन 2/46

धन की प्यास कभी नहीं मिटती अतः सन्तोष करने से ही अत्यधिक सुख मिलता है। ज्ञानी पुरुष सन्तोष को ही सर्वोत्तम मानते हैं।

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं रत्नसंचयः।
ऐश्वर्यं प्रियसंवासो गृध्येत् तत्र न पण्डितः।। वन 2/47

यौवन, रूप, जीवन, रत्नों का संग्रह, ऐश्वर्य और प्रियजनों का एक साथ रहना ये सभी वस्तुएँ अनित्य हैं अतः विद्वान् इनकी इच्छा न करे।

फलशाकमपि श्रेयो भोक्तुं ह्यकृपणं गृहे।। वन 193/30

दूसरे के सामने गिड़गिड़ाये बिना अपने घर में रहकर रूखा-सूखा खाकर रहना ही अच्छा है।

यो दत्त्वातिथिभूतेभ्यः पितृभ्यश्च द्विजोत्तमः।
शिष्टान्यन्नानि यो भुङ्क्ते किं वै सुखतरं ततः।। वन 173/32

जो ब्राह्मण; अतिथियों, पशु-पक्षियों और वृद्ध पुरुषों को भोजन खिलाकर बचा-खुचा भोजन करता है उससे बढ़कर सुख और क्या हो सकता है।

असन्तोषस्य नास्त्यन्तस्तुष्टिस्तु परमं सुखम्।। वन 216/23

असन्तोष का कोई अन्त नहीं है किन्तु सन्तोष से बहुत सुख मिलता है।

तोष परो हि लाभः।। उद्योग 40/13

सन्तोष सबसे बड़ा लाभ है।

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत्।। द्रोण 63/9

इस पृथ्वी पर जितना भी अन्न, सोना, पशु और स्त्रियाँ हैं वे सब भी एक मनुष्य को सन्तोष कराने के लिये पर्याप्त नहीं है अतः यह बात अच्छी तरह समझकर मन को शान्त रखना चाहिये।

सन्तोषो वै स्वर्गतमः सन्तोषः परमं सुखम्। शान्ति 26/11
तुष्टेर्न किंचित् परतः सा सम्यक् प्रतितिष्ठति।। शान्ति 21/2

मनुष्य के मन में सन्तोष होना स्वर्ग के सुख से भी बढ़कर है। सन्तोष सबसे बड़ा सुख है। यदि मन में सन्तोष भली-भाँति आ जाय तो उससे बढ़कर कुछ भी नहीं है।

तुष्टेर्न किञ्चित् परमं सा सम्यक् प्रतितिष्ठति।
विनीत क्रोधहर्षस्य सततं सिद्धिरुत्तमा।। शान्ति 26/12

यदि मन में भली-भाँति सन्तोष आ जाये तो सन्तोष से बढ़कर कुछ नहीं है।

जिसने गुस्से और प्रसन्नता पर अधिकार कर लिया उसी को वास्तविक सन्तोष प्राप्त होता है।

नृपेणाहूयमानस्य यत् तिष्ठति भयं हृदि।
न तत् तिष्ठति तुष्टानां वने मूलफलाशिनाम्।। शान्ति 111/31

जिसे राजा बुलाता है उसके हृदय में जैसा डर छा जाता है वैसा डर, सन्तुष्ट और वन में फल मूल खाने वालों को नहीं लगता।

न मन्त्रबलवीर्येण प्रज्ञया पौरुषेण च।
न शीलेन न वृत्तेन तथा नैवार्थसम्पदा।
अलभ्यं लभते मर्त्यस्तत्र का परिदेवना।। शान्ति 226/20

जो वस्तु नहीं मिलने वाली होती है उसे मनुष्य, मन्त्र, बल, पराक्रम, बुद्धि, पुरुषार्थ, चरित्र, सदाचार और धन सम्पत्ति से भी नहीं पा सकता। इसलिये रोना-पीटना किसलिये?

लब्धव्यान्येव लभते गन्तव्यान्येव गच्छति।
प्राप्तव्यान्येव चाप्नोति दुःखानि च सुखानि च।। शान्ति 226/22

मनुष्य को जो मिलना होता है वही मिलता है। उसे जहाँ जाना होता है वह वहीं जाता है। उसे जो सुख दुःख मिलने होते हैं वे मिलते हैं।

एतद् विदित्वा कार्त्स्न्येन यो न मुह्यति मानवः।
कुशली सर्वदुःखेषु स वै सर्वधनो नरः।। शान्ति 226/23

यह बात अच्छी तरह समझकर जो मनुष्य अपना विवेक नहीं खोता है और सब तरह के दुखों को सहन करता है वही मनुष्य हर तरह से धनवान होता है।

अध्वक्लान्तस्य शयनं स्थानक्लान्तस्य चासनम्।
तृषितस्य च पानीयं क्षुधार्तस्य च भोजनम्।। शान्ति 356/2

रास्ता चलने से थके हुए मनुष्य को सोने से, एक जगह खड़े रहने से पैरों में दर्द होने पर बैठने से, प्यासे को पानी से और भूखे को भोजन से सन्तोष होता है।

ईप्सितस्येव सम्प्राप्तिरन्नस्य समयेऽतिथेः।
एषितस्यात्मनः काले वृद्धस्यैव सुतो यथा।। शान्ति 356/3

भोजन के समय मनचाहा भोजन मिलने से अतिथि को, समय पर अभीष्ट वस्तु मिलने से मन को और वृद्ध पुरुष को पुत्र प्राप्त होने पर बहुत सन्तोष होता है।

संगति

वस्त्रमापस्तिलान् भूमिं वासयते यथा।
पुष्पाणामधिवासेन तथा संसर्गजा गुणाः।। वन 1/24

जैसे फूलों के साथ रहने से कपड़े, पानी, तिल और भूमि में फूलों की गन्ध आ जाती है। वैसे ही अच्छे या बुरे लोगों की संगति से मनुष्य में गुण दोष आ जाते हैं।

मोहजालस्य योनिर्हि मूढैरेव समागमः।
अहन्यहनि धर्मस्य योनिः साधुसमागमः।। वन 1/25

मूर्खों के साथ रहने से मनुष्य मोहजाल में फंसा रहता है। महापुरुषों और सज्जनों का संग प्रतिदिन धर्म लाभ कराता है।

येषां त्रीण्यवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च।
ते सेव्यास्तैः समास्या हि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी।। वन1/27

जिन पुरुषों के विद्या, जाति और कर्म उत्तम हों उनका संग करना चाहिये क्योंकि ऐसे सन्तों के पास बैठना शास्त्रों के स्वाध्याय से भी कहीं अच्छा होता है।

असतां दर्शनात् स्पर्शात् संजल्पाश्च सहासनात्।
धर्माचाराः प्रहीयन्ते सिद्ध्यन्ति च न मानवाः।। वन 1/29

दुष्ट मनुष्यों को देखने, छूने, उनके साथ बात करने और बैठने से धर्म के व्यवहार नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य को सफलता नहीं मिलती।

बुद्धिश्च हीयते पुंसां नीचैः सह समागमात्।
मध्यमैर्मध्यतां याति श्रेष्ठतां याति चोत्तमैः।। वन 1/30

नीच पुरुषों के साथ रहने से मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। मध्यम श्रेणी के मनुष्यों के साथ रहने से बुद्धि मध्यम बन जाती है किन्तु उत्तम पुरुषों के साथ रहने से बुद्धि श्रेष्ठ बनती है।

तस्य साधुसमारम्भाद् बुद्धिर्धर्मेषु राजते।। वन 210/12

सज्जनों का संग करने से मनुष्य का मन धर्म के कामों में लगता है।

असंत्यागात् पापकृतामपापांस्तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्रभावात्।
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात् तस्मात् पापैः सह सन्धिं न कुर्यात्।।

उद्योग 34/70

पापी दुष्टों का साथ न छोड़ने से निरपराध को भी उन पापियों के जितना ही दण्ड मिलता है। जैसे सूखी लकड़ी में मिलकर गीली लकड़ी भी जल जाती है। अतः पापियों की संगति नहीं करनी चाहिये।

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते।
तदेवापहरत्येनं तस्मात् कल्याणमाचरेत्।। उद्योग 39/55

मनुष्य मन, वचन और कर्म से जो काम निरन्तर करता रहता है वह काम उस पुरुष को अपनी ओर खींच लेता है। अतः कल्याणकारी कार्य करने चाहियें।

येषु येषु नरव्याघ्र यत्र यत्र च वर्तते।
आशु तच्छीलतामेति तदिदं त्वयि दृश्यते।। द्रोण 143/11

नरसिंह! मनुष्य जहाँ जहाँ जिन-जिन लोगों की संगति में रहता है उसमें उन्हीं लोगों का आचार-विचार जल्दी ही आ जाता है। यही बात तुममें भी दीख रही है।

संवासाज्जायते स्नेहो जीवितान्तकरेष्वपि।
अन्योन्यस्य च विश्वासः श्वपचेन शुनो यथा।। शान्ति 139/40

एक-दूसरे को जान से मार डालने वाले भी यदि एक साथ रहने लगते हैं तो उनमें एक-दूसरे के प्रति विश्वास और स्नेह पैदा हो जाता है जैसे चाण्डाल और कुत्ता साथ रहने से आपस में विश्वास और स्नेह करने लगते हैं।

असाधुश्चैव पुरुषो लभते शीलमेकदा।
साधोश्चापि ह्यसाधुभ्यः शोभना जायते प्रजा।। शान्ति 267/11

दुष्ट पुरुष भी सज्जन की संगति से सुशील बन जाता है। दुष्ट पुरुषों की सन्तान भी कभी अच्छी निकल जाती है।

यादृशैः संनिवसति यादृशांश्चोपसेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः।। शान्ति 299/32

मनुष्य जैसे लोगों के साथ रहता है, जैसे लोगों का संग करता है और जैसा बनना चाहता है वह वैसा ही बन जाता है।

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव।
वासो यथा रंगवशं प्रयाति तथा स तेषां वशमभ्युपैति।। शा० 299/33

कपड़े को जिस रंग में रंगा जाता है वह उसी रंग का हो जाता है। इसी प्रकार सज्जन, दुर्जन, तपस्वी या चोर की संगति में रहने वाला उनके जैसा ही बन जाता है।

अज्ञानेनावृतो लोको मात्सर्यान्न प्रकाशते।
लोभात् त्यजति मित्राणि संगात् स्वर्गं न गच्छति।। शान्ति 299/40

अज्ञान से यह संसार ढका हुआ है। आपस में ईर्ष्या होने के कारण इस संसार की वास्तविकता पता नहीं चलती। मनुष्य लोभ के कारण मित्रों को छोड़ देता है और आसक्ति या लगाव के कारण स्वर्ग में नहीं जाने पाता।

सन्मार्ग

नैवाहमेतद् यशसे ददानि न चार्थहेतोर्न च भोगतृष्णया।
पापैरनासेवित एष मार्ग इत्येवमेतत् सकलं करोमि।। वन 198/26

मैं यश पाने के लिये, धन के लिये अथवा भोग ऐश्वर्य पाने के लिये दान नहीं देता। इस मार्ग पर पापी नहीं चल सकते इसीलिये मैं यह सब कुछ करता रहता हूँ।

सद्भिः सदाध्यासितं तु प्रशस्तं तस्मात् प्रशस्तं श्रयते मतिर्मे।।
वन 198/27

सज्जन जिस मार्ग पर सदा चलते हैं वही उत्तम मार्ग होता है इसीलिये मेरी बुद्धि उत्तम मार्ग पर चलती है।

न दृष्टपूर्वं प्रत्यक्षं परलोकं विदुर्बुधाः।
आगमांस्त्वनतिक्रम्य श्रद्धातव्यं बुभूषता।। शान्ति 28/42

विद्वानों ने पहले कभी अपनी आँखों से परलोक को नहीं देखा किन्तु कल्याण चाहने वालों को शास्त्रों की आज्ञा का उल्लंघन न करके शास्त्रों की बातों पर विश्वास करना चाहिये।

न चैव पुरुषो द्रष्टा स्वर्गस्य नरकस्य च।
आगमस्तु सतां चक्षुर्नृपते तमिहाचर।। शान्ति 28/54

राजन्! कोई भी पुरुष स्वर्ग या नरक को नहीं देख सकता। सत्पुरुषों की आँखें शास्त्र ही हैं इसलिये तुम शास्त्रों के अनुसार आचरण करो।

सत्संनिकर्षे परिवर्तितव्यं विद्याधिकाश्चापि निषेवितव्याः।।
अनु 96 दा० पा०

मनुष्यों को सदा सज्जनों के साथ रहना चाहिये और विद्या में बढ़े-चढ़े पुरुषों के पास रहना चाहिये।

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
उत्थायाचम्य तिष्ठेत पूर्वां सन्ध्यां कृताञ्जलिः।। अनु 104/16

प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में (सूर्योदय से काफी पहले) उठना चाहिये। धर्म और अर्थ के बारे में विचार करना चाहिये। शौच और स्नान के बाद आचमन करके हाथ जोड़कर प्रातःकाल की सन्ध्या करनी चाहिये।

एवमेवापरां सन्ध्यां समुपासीत वाग्यतः।
नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं नास्तं यान्तं कदाचन।। अनुशासन 104/17

इसी प्रकार शाम को भी मौन रहकर सन्ध्या करनी चाहिये। उदय होते हुए और अस्त होते हुए सूर्य को कभी नहीं देखना चाहिये।

न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्।। अनुशासन 104/21

इस संसार में पराई स्त्री से समागम के समान पुरुष की आयु नष्ट करने वाला कोई और काम नहीं है।

प्रसाधनं च केशानामञ्जनं दन्तधावनम्।
पूर्वाह्न एव कार्याणि देवतानां च पूजनम्।। अनुशासन 104/23

केशों को संवारना, आँखों में सुरमा लगाना, दाँत साफ करना और देवताओं की पूजा ये सभी कार्य दिन के पहले पहर में करने चाहियें।

पुरीषमूत्रे नोदीक्षेन्नाधितिष्ठेत् कदाचन।
नातिकल्यं नातिसायं नं च मध्यन्दिने स्थिते।। अनु 104/24
नाज्ञातैः सह गच्छेत नैको न वृषलैः सह।

मल-मूत्र को कभी नहीं देखना चाहिये, न ही उन पर पैर रखना चाहिये। बहुत सवेरे, दोपहर में और बहुत रात में बाहर नहीं जाना चाहिये। अपरिचित व्यक्तियों तथा आचारहीन पुरुषों के साथ अकेला न जाय।

पन्था देयो ब्राह्मणाय गोभ्यो राजभ्य एव च।। अनु 104/25
वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च।

ब्राह्मण, गाय, राजा, बूढ़े व्यक्ति, भार ढोने वाले, गर्भवती स्त्री और कमजोर मनुष्य को पहले जाने देना चाहिये।

मध्यन्दिने निशा काले अर्धरात्रे च सर्वदा।। अनु 104/27
चतुष्पथं न सेवेत उभे संध्ये तथैव च।

बहुत सवेरे, दोपहर में, रात में, आधी रात में और शाम को चौराहे पर नहीं रहना चाहिये।

उपानहौ च वस्त्रं च धृतमन्यैर्न धारयेत्।। अनु 104/28

दूसरों के पहिने हुए कपड़ों को और जूतों को नहीं पहनना चाहिये।

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् विगर्हितान्।
रूपद्रविणहीनांश्च सत्त्वहीनांश्च नाक्षिपेत्।। अनुशासन 104/35

अन्धे, काने या छंगे आदि, बिना पढ़े-लिखे, निन्दनीय, कुरूप, निर्धन और निर्बल मनुष्यों पर आक्षेप नहीं करना चाहिये।

नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम्।
द्वेषस्तम्भोऽभिमानं च तैक्ष्यं च परिवर्जयेत्।। अनु 104/36

नास्तिकता, वेद की निन्दा, देवताओं को कोसना, उद्दण्डता, द्वेष, घमण्ड और कठोरता इन बुराइयों को छोड़ देना चाहिये।

परस्य दण्डं नोद्यच्छेत् क्रुद्धो नैनं निपयातयेत्।
अन्यत्र पुत्राच्छिष्याच्च शिक्षार्थं ताडनं स्मृतम्।। अनु 104/37

किसी को डण्डे से नहीं मारना चाहिये। क्रोध में आकर डण्डा नहीं चलाना चाहिये। शिक्षा देने के लिये पुत्र या शिष्य को मारा जा सकता है।

कृत्वा मूत्रपुरीषे तु रथ्यामाक्रम्य वा पुनः।
पादप्रक्षालनं कुर्यात् स्वाध्याये भोजने तथा।। अनु 104/39

मल-मूत्र करने के बाद, रास्ते पर चलने के बाद, पढ़ाई शुरू करने से पहले और भोजन करने से पहले पैर धो लेने चाहियें।

इतिहासपुराणानि दानं वेदं च नित्यशः।
गायत्री मननं नित्यं कुर्यात् संध्यां समाहितः।। अनु 104 दा० पा०

इतिहास, पुराणों और वेदों का स्वाध्याय प्रतिदिन करना चाहिये। सन्ध्योपासना और गायत्री मन्त्र का जप भी प्रतिदिन करना चाहिये।

न संध्यायां स्वपेन्नित्यं स्नायाच्छुद्धः सदा भवेत्।
न चाभ्युदितशायी स्यात् प्रायश्चित्ती तथा भवेत्।
मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत्।। अनु 104/43
आचार्यमथवाप्यन्यं तथायुर्विन्दते महत्।

सायंकाल में नहीं सोना चाहिये। सदा नहाना चाहिये और साफ-सुथरा रहना चाहिये। सूर्य निकलने तक कभी नहीं सोना चाहिये। यदि देर तक सोता रह जाये तो इसके लिए प्रायश्चित्त करना चाहिये। प्रातःकाल उठते ही प्रतिदिन माता-पिता को प्रणाम करना चाहिये। इसके बाद दूसरे बड़े बूढ़ों को नमस्ते करनी चाहिये। ऐसा करने से आयु बढ़ती है।

उदङ्मुखश्च सततं शौचं कुर्यात् समाहितः।। अनु 104/45
अकृत्वा देवपूजां च नाचरेद् दन्तधावनम्।

सदा एकाग्र मन होकर उत्तर दिशा की ओर मुँह करके मल-मूत्र का त्याग करना चाहिये। दाँत साफ किये बिना देवताओं की पूजा नहीं करे।

अवलोक्यो न चादर्शो मलिनो बुद्धिमत्तरैः।
न चाज्ञातां स्त्रियं गच्छेद् गर्भिणीं वा कदाचन।। अनु 104/47

बुद्धिमान पुरुष को मैले दर्पण में अपना मुँह नहीं देखना चाहिये। किसी अपरिचित या गर्भिणी स्त्री के पास नहीं जाना चाहिये।

दारसंग्रहणात् पूर्वं नाचरेन्मैथुनं बुधः।
अन्यथा त्वकीर्णः स्यात् प्रायश्चित्तं समाचरेत्।।
नोदीक्षेत् परदारांश्च रहस्येकासनो भवेत्।
इन्द्रियाणि सदा यच्छेत् स्वप्ने शुद्धमना भवेत्।। अनु 104 दा० पा०

बुद्धिमान पुरुष को विवाह से पहले मैथुन नहीं करना चाहिये। विवाह से पहले मैथुन करने से ब्रह्मचर्य व्रत टूट जाता है। ऐसी अवस्था में प्रायश्चित्त करना चाहिये। परायी स्त्रियों को नहीं देखना चाहिये। न ही उनके साथ एकान्त में एक ही आसन पर बैठना चाहिये। इन्द्रियों को सदा वश में रखना चाहिये और स्वप्न में भी मन शुद्ध रखना चाहिये।

उदक्शिरा न स्वपेत तथा प्रत्यक्शिरा न च।
प्राक्शिरास्तु स्वपेद् विद्वानथवा दक्षिणाशिराः।। अनु 104/48

समझदार व्यक्ति को उत्तर तथा पश्चिम दिशा की ओर सिर करके नहीं सोना चाहिये। पूर्व या दक्षिण दिशा की ओर सिर करके सोना चाहिये।

न भग्ने नावशीर्णे च शयने प्रस्वपीत ।
नान्तर्धाने न संयुक्ते न च तिर्यक् कदाचन।। अनुशासन 104/49

टूटी हुई या ढीली खाट पर नहीं सोना चाहिये। अंधेरे में पड़ी हुई खाट पर एकदम नहीं सो जाना चाहिये। किसी के साथ या तिरछे लेटकर नहीं सोना चाहिये।

न चानुलिम्पेदस्नात्वा स्नात्वा वासो न निर्धुनेत्।
न चैवार्द्राणि वासांसि नित्यं सेवेत मानवः।। अनु 104/52

नहाये बिना चन्दन या अंगराग आदि नहीं लगाना चाहिये। नहाने के बाद गीले कपड़ों को झटकना नहीं चाहिये। न ही गीले कपड़े पहनने चाहियें।

नोत्सृजेत् पुरीषं च क्षेत्रे ग्रामस्य चान्तिके।
उभे मूत्रपुरीषे तु नाप्सु कुर्यात् कदाचन।। अनु 104/54

बोये हुए खेत में और गाँव के पास तथा पानी में कभी भी मल-मूत्र नहीं करना चाहिये।

प्राङ्मुखो नित्यमश्नीयाद् वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्।। अनु 104/56

पूर्व की ओर मुँह करके चुप रहकर भोजन करना चाहिये। भोजन की निन्दा नहीं करनी चाहिये।

निषण्णश्चापि खादेत न तु गच्छन् कदाचन।। अनु 104/60

बैठकर भोजन करना चाहिये। चलते-फिरते कभी भी भोजन नहीं करना चाहिये।

मूत्रं नोत्तिष्ठता कार्यं न भस्मनि न गोव्रजे।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत्।। अनुशासन 104/61

खड़े होकर मूत्र नहीं करना चाहिये। राख पर और गौशाला में मूत्र नहीं करना चाहिये। पैर धोकर भोजन करना चाहिये। गीले पैर होने पर नहीं सोना चाहिये।

आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो वर्षाणां जीवते शतम्।। अनु 104/62

पैर धोकर भोजन करने वाला मनुष्य सौ वर्ष तक जीता है।

स्वप्तव्यं नैव नग्नेन न चोच्छिष्टोऽपि संविशेत्।। अनु 104/67
उच्छिष्टो न स्पृशेच्छीर्षं सर्वे प्राणास्तदाश्रयाः।

नंगा होकर नहीं सोना चाहिये। मुँह साफ किये बिना नहीं सोना चाहिये। झूठे हाथों से सिर नहीं छूना चाहिये क्योंकि सारे प्राण मस्तक में ही रहते हैं।

तिलसृष्टं न चाश्नीयात् तथास्यायुर्न रिष्यते।। अनु 104/70

तिल के बने पदार्थ नहीं खाने चाहियें। इससे मनुष्य की आयु घटती नहीं है।

उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ तथा ह्यायुर्न रिष्यते।। अनु 104/76

दिन में उत्तर की ओर मुँह करके मल-मूत्र करना चाहिये और रात में दक्षिण की ओर मुँह करके। ऐसा करने से आयु कम नहीं होती है।

त्रीन् कृशान् नावजानीयाद् दीर्घमायुर्जिजीविषुः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं सर्पं सर्वे ह्याशीविषास्त्रयः।। अनु 104/77

जो दीर्घ आयु तक जीवित रहना चाहता हो उसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और साँप इन तीनों को इनके कमजोर होने पर भी नहीं छेड़ना चाहिये क्योंकि ये तीनों बड़े जहरीले होते हैं।

गुरुणा चैव निर्बन्धो न कर्त्तव्यः कदाचन।
अनुमान्यः प्रसाद्यश्च गुरुः क्रुद्धो युधिष्ठिर।। अनु 104/80

युधिष्ठिर! गुरु के साथ कभी हठ नहीं करना चाहिये। यदि गुरु को क्रोध आ जाये तो उन्हें सम्मान देकर प्रसन्न करना चाहिये।

सम्यङ्मिथ्याप्रवृत्तेऽपि वर्तितव्यं गुराविह।
गुरुनिन्दा दहत्यायुर्मनुष्याणां न संशयः।। अनु 104/81

यदि गुरु प्रतिकूल आचरण भी करें तो भी उनके प्रति अच्छा व्यवहार ही करना चाहिये। गुरु की निन्दा करने से मनुष्य की आयु अवश्य नष्ट हो जाती है।

न पाणौलवणं विद्वान् प्राश्नीयान्न च रात्रिषु।
दधिसक्तून् न भुञ्जीत वृथा मांसं च वर्जयेत्।। अनु 104/93

हथेली पर नमक रखकर नहीं चाटना चाहिये। रात में दही और सत्तू नहीं खाना चाहिये और मांस कभी नहीं खाना चाहिये। मांस अखाद्य है।

सायंप्रातश्च भुञ्जीत नान्तराले समाहितः।। अनु 104/94

प्रतिदिन सवेरे और शाम को एकाग्र मन से भोजन करे। बीच में कुछ नहीं खाना चाहिये।

दधि चाप्यनुपानं वै न कर्तव्यं भवार्थिना।। अनुशासन 104/99

अपना भला चाहने वाले को भोजन के अन्त में दही नहीं खाना चाहिये।

परापवादं न ब्रूयान्नाप्रियं च कदाचन।
न मन्यु कश्चिदुत्पाद्यः पुरुषेण भवार्थिना।। अनु 104/105

अपनी भलाई चाहने वाले को दूसरों की निन्दा या किसी को बुरा लगने वाली बात नहीं करनी चाहिये। न ही किसी को गुस्सा दिलाना चाहिये।

न दिवा मैथुनं गच्छेन्न कन्यां न बन्धकीम्।
न चास्नातां स्त्रियं गच्छेत् तथायुर्विन्दते महत्।। अनु 104/107

दिन में मैथुन नहीं करना चाहिये। कुमारी कन्या और कुलटा स्त्री के साथ भी कभी समागम नहीं करना चाहिये। अपनी पत्नी भी जब तक ऋतुस्नाता न हो तब तक उससे समागम नहीं करना चाहिये। इससे मनुष्य दीर्घायु होता है।

संध्यायां न स्वपेद् राजन् विद्यां न च समाचरेत्।। अनु 104/118
न भुञ्जीत च मेधावी तथायुर्विन्दते महत्।

राजन्! बुद्धिमान पुरुष को शाम के समय सोना, पढ़ना और भोजन नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से वह दीर्घायु होता है।

सौहित्यं न च कर्तव्यं रात्रौ न च समाचरेत्।। अनु 104/121
द्विजच्छेदं न कुर्वीत भुक्त्वा न च समाचरेत्।

रात में खुब पेटभर कर भोजन नहीं करना चाहिये, न ही किसी को डटकर खिलाना चाहिये। भोजन के बाद दौड़ना नहीं चाहिये। ब्राह्मणों को नहीं मारना चाहिये।

महाकुले प्रसूतां च प्रशस्तां लक्षणैस्तथा।। अनु 104/122
वयःस्थां च महाप्राज्ञः कन्यामावोढुमर्हति।।

श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न, शुभ लक्षणों वाली और विवाह योग्य आयु की कन्या के साथ बुद्धिमान पुरुष को विवाह करना चाहिये।

संध्यायां च न भुञ्जीत न स्नायेन्न तथा पठेत्।
प्रयतश्च भवेत् तस्यां न च किंचित् समाचरेत्।। अनु 104/140

शाम के समय भोजन, स्नान और पढ़ाई नहीं करनी चाहिये। उस समय मन एकाग्र कर प्रभु की उपासना के सिवाय कुछ नहीं करना चाहिये।

अनिमन्त्रितो न गच्छेत यज्ञं गच्छेत दर्शकः।
अनर्चिते ह्यनायुष्यं गमनं तत्र भारत।। अनु 104/142

बिना बुलाये कहीं नहीं जाना चाहिये किन्तु यज्ञ देखने के लिये जाना चाहिये। बिना बुलाये और बिना आदर के कहीं जाने से आयु नष्ट होती है।

न चैकेन परिव्रज्यं न गन्तव्यं तथा निशि।
अनागतायां संध्यायां पश्चिमायां गृहं वसेत्।। अनु 104/143

अकेले परदेश में नहीं जाना चाहिये। रात में भी अकेले कहीं नहीं जाना चाहिये। शाम होने से पहले ही घर लौट आना चाहिये।

मातुः पितुर्गुरूणां च कार्यमेवानुशासनम्।
हितं चाप्यहितं चापि न विचार्यं नरर्षभ।। अनु 104/144

नरश्रेष्ठ! माता-पिता और गुरुजनों की आज्ञा का पालन करना ही चाहिये। उनका आदेश हितकर है या अहितकर इस बारे में नहीं सोचना चाहिये।

सर्वं जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम्।
एतावान् ज्ञानविषयः किं प्रलापः करिष्यति।। आश्व 11/4

कुटिल व्यवहार मृत्यु का स्थान है और सरल व्यवहार (आचरण) से ब्रह्म की प्राप्ति होती है। यही ठीक ज्ञान है इससे उल्टी बात व्यर्थ ही है।

सम्बन्धी

यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम्।। उद्योग 39/17
स पुत्र पशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चात्मानमश्नुते।
ज्ञातयो वर्धनीयास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः सुखम्।। उद्योग 39/18

जो अपने गरीब, दीन' दुःखी और रोगी सम्बन्धी पर कृपा करता है उसके पुत्र और पशु बढ़ते हैं और उसका कल्याण होता है। अतः अपना सुख चाहने वाले को सगे सम्बन्धियों को सहारा देना चाहिये।

विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ।। उद्योग 39/20

भरतश्रेष्ठ! अपने परिवार के गुणहीन सदस्यों की भी रक्षा करनी चाहिये।

ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात न कर्तव्यः शुभार्थिना।
सुखानि सह भोज्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ।। उद्योग 39/23

भरतश्रेष्ठ! सम्बन्धियों के साथ झगड़ा नहीं करना चाहिये।अपना भला चाहने वाले को सम्बन्धियों के साथ मिलकर सुख भोगने चाहियें।

सम्भोजनं संकथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम्।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन।। उद्योग 39/24

सगे-सम्बन्धियों के साथ भोजन, बातचीत और स्नेह करना चाहिये। उनके साथ लड़ाई-झगड़ा कभी नहीं करना चाहिये।

ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च।
सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च।। उद्योग 39/25

संसार में सगे-सम्बन्धी ही तारते या डुबाते हैं। सदाचारी सम्बन्धी तो तार देता है किन्तु दुराचारी सम्बन्धी डुबा देता है।

क्षुद्रं जातिवधं प्राहुः।। भीष्म 3/53

जाति का नाश करना नीच कर्म है।

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेश्वनुभूतानि कस्य ते कस्य वा वयम्।। शान्ति 28/38

हमने अनेक बार जन्म लेकर हजारों माता-पिताओं और सैकड़ों स्त्री पुत्रों के साथ संसार के सुखों का आनन्द लिया है किन्तु आज वे माता-पिता और स्त्री-पुत्र किसके हैं और हम किसके हैं?

सम्मान

यमप्रयतमानं तु मानयन्ति स मानितः।
न मान्यमानो मन्येत न मान्यमभिसंज्वरेत्।। उद्योग 42/41

जो सम्मान के लिये प्रयत्न नहीं करता फिर भी उसका सम्मान किया जाता है वही सच्चा सम्मान होता है। जो सम्मान पाकर अभिमान नहीं करता और सम्मानित पुरुष से ईर्ष्या नहीं करता वही सम्माननीय होता है।

न वै मानं च मौनं च सहितौ वसतः सदा।
अयं लोको मानस्य असौ मौनस्य तद् विदुः।। उद्योग 42/44

मान और मौन सदा एक साथ नहीं रहते। मान से इस लोक में सुख मिलता है और मौन से परलोक में। ज्ञानी पुरुष यह बात जानते हैं।

पिता राजा च वृद्धश्च सर्वथा मानमर्हति।। उद्योग 72/74

पिता, राजा और वृद्ध पुरुष का सदा सम्मान करना चाहिये।

यदा मानं लभते माननार्हस्तदास वै जीवति जीवलोके।
यदावमानं लभते महान्तं तदा जीवन्मृत इत्युच्यते सः।। कर्ण 67/81

इस संसार में माननीय पुरुष का जब तक सम्मान किया जाता है तब तक वह जीवित रहता है। घोर अपमान होने पर उसकी जीते जी ही मौत हो जाती है।

अग्निरात्मा च माता च पिता जनयिता तथा।
गुरुश्च नरशार्दूल परिचर्या यथातथम्।। शान्ति 292/22

हे पुरुषसिंह! अग्नि, आत्मा, माता, जन्म देने वाले पिता तथा गुरु की उचित सेवा अवश्य करनी चाहिये।

सहनशीलता

यः परेषां नरो नित्यमतिवादां स्तितिक्षते।
देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम्।। आदि 79/1

देवयानि! जो व्यक्ति दूसरों की कठोर बात को सदा सहन करता रहता है वह मानो सारे संसार को जीत लेता है।

सदा सुचेताः सहते नरस्येहाल्यमेधसः।। शान्ति 114/2

विशुद्ध चित्त वाला मनुष्य मूर्ख व्यक्ति के कटु शब्दों को सदा सहन करता है।

टिट्टिभं तमुपेक्षेत वाशमानमिवातुरम्।। शान्ति 114/4

सज्जन को टिटिहरी और रोगी पुरुष की भाँति निन्दा करने वाले मनुष्य की उपेक्षा कर देनी चाहिये।

निषेकं विपरीतं स आचष्टे वृत्तचेष्टया।
मयूर इव कौपीनं नृत्यं संदर्शयन्निव।। शान्ति 114/10

अनुचित आचरण करने वाला मूर्ख व्यक्ति अपने दोषों को भी प्रकट कर देता है जैसे नाचता हुआ मोर अपने गुप्त अंगों को दिखा देता है।

यस्यावाच्यं न लोकेऽस्ति नाकार्यं चापि किंचन।
वाचं तेन न संदध्याच्छुचिः संश्लिष्टकर्मणा।। शान्ति 114/11

जो व्यक्ति कुछ भी कह डालता है और कुछ भी कर देता है ऐसे मनुष्य के साथ उस भले मनुष्य को बात भी नहीं करनी चाहिये जो अपने अच्छे कर्मों के कारण सज्जन समझा जाता है।

सांख्य और योगदर्शन

पञ्चविंशति तत्त्वानि तुल्यान्युभयतः समम्।। शान्ति 236/29

सांख्यदर्शन और पातञ्जल योगदर्शन इन दोनों में ही पच्चीस तत्त्वों को माना गया है। सांख्य दर्शन के अनुसारः–

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिर्विकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्नविकृतिः पुरुषः।। सांख्य कारिका 3

मूल प्रकृति अर्थात् बिना विकार वाली माया, **प्रकृति के सात विकार**–महत्तत्त्व, अंहकार और पंचतन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) **सोलह विकार**–पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, नाक, कान, त्वचा और जिह्वा), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (वाणी, हाथ, पैर, गुदा और शिश्न) तथा मन और पाँच महाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी) तथा **पुरुष** जो न प्रकृति है और न ही प्रकृति का विकार है। इस प्रकार सांख्यदर्शन के अनुसार ये पच्चीस तत्त्व हैं। पातञ्जल योगदर्शन में इनका उल्लेख इस प्रकार है–

विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ।। योग सूत्र साधनपाद 19

विशेष–पाँच महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन। **अविशेष**–पाँच तन्मात्राएँ और अहंकार। **लिंगमात्र**–महत्तत्त्व, **अलिंग**–मूल प्रकृति। ये चौबीस तत्त्व और पच्चीसवाँ द्रष्य (पुरुष) है।

प्रोक्तं तद् व्यक्तमित्येव जायते वर्धते च यत्।
जीर्यते म्रियते चैव चतुर्भिर्लक्षणैर्युतम्।। शान्ति 236/20

जन्म, वृद्धि, बुढ़ापा और मृत्यु इन चार लक्षणों से युक्त जो तत्त्व है उसी को व्यक्त कहते हैं।

विपरीतमतो यत् तु तदव्यक्तमुदाहृतम्।
द्वावात्मानौ च वेदेषु सिद्धान्तेष्वप्युदाहृतौ।। शा० 236/21

जो तत्त्व इसके विपरीत है अर्थात् जिसमें जन्म-मरण आदि चारों विकार नहीं हैं उसे अव्यक्त कहा जाता है। वेदों में और शास्त्रों में उस अव्यक्त के दो भेद बताये गये हैं:– **जीवात्मा तथा परमात्मा**

ज्ञानेनैव विमुक्तास्ते सांख्याः संन्यासकोविदाः।
शारीरं तु तपो घोरं सांख्याः प्राहुर्निरर्थकम्।। अनु 145 दा० पा० अ०XV

संसार से विरक्त सांख्यज्ञानी ज्ञान से ही मुक्त हो जाते हैं। वे घोर शारीरिक तपस्या को व्यर्थ बताते हैं।

सांख्य के पच्चीस तत्त्व

मूल प्रकृतिरव्यक्तमव्यक्ताज्जायते महान्।
महतोऽभूदहंकारस्तस्मात् तन्मात्रपञ्चकम्।।
इन्द्रियाणि दशैकं च तन्मात्रेभ्यो भवन्त्युत।
तेभ्यो भूतानि पञ्चभ्यः शरीरं वै प्रवर्तते।।
इति क्षेत्रस्य संक्षेपः चतुर्विंशतिरिष्यते।
पञ्चविंशतिरित्याहुः पुरुषेणेह संख्यया।।

अनु 145 दा० पा० अ० XV

मूल प्रकृति को अव्यक्त कहते हैं। अव्यक्त से महत्तत्व उत्पन्न होता है। महत्तत्व से अहंकार उत्पन्न होता है। अहंकार से पाँच तन्मात्राएं पैदा होती हैं। तन्मात्राओं से पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों और एक मन की उत्पत्ति होती है। इन ग्यारह इन्द्रियों से पाँच महाभूत-पृथ्वी, जल, वायु, तेज और आकाश प्रकट होते हैं। इन पाँच भूतों से शरीर बनता है। इसी को चौबीस तत्त्वों का समुदाय कहा जाता है। इसमें पुरुष को भी शामिल कर लेने से सांख्यशास्त्र में पच्चीस तत्त्व माने जाते हैं जिनसे सृष्टि की रचना होती है और संसार का सारा कार्य व्यापार चलता है।

सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
तैः सृजत्यखिलं लोकं प्रकृति स्त्वात्मजैर्गुणैः।।
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः।
विकाराः प्रकृतेश्चैते वेदितव्या मनीषिभिः।।

अनु 145 दा० पा० अ० XV

सत्त्व, रजस् और तमस् प्रकृति से उत्पन्न हुए ये तीन गुण हैं। प्रकृति अपने इन तीनों गुणों से सारे संसार को बनाती है। इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, शरीर (संघात), चेतना और स्मृति ये प्रकृति के विकार हैं।

अव्यक्त का लक्षण

नित्यमेकमणु व्यापि क्रियाहीनमहेतुकम्।
अग्राह्यमिन्द्रियैः स वैरेतदव्यक्तलक्षणम्।।
अव्यक्तं प्रकृतिर्मूलं प्रधानं योनिरव्ययम्।
अव्यक्तस्यैव नामानि शब्दैःपर्यायवाचकैः।।

अनु 145 दा० पा० अ० XV

अव्यक्त अर्थात् प्रकृति, नित्य है, एक है, अणु अर्थात् बहुत सूक्ष्म है, सर्वत्र व्यापक है, क्रियाहीन है, यह हेतुरहित अर्थात् कारणरहित है। अव्यक्त को ज्ञानेन्द्रियाँ या कर्मेन्द्रियाँ नहीं जान पातीं। अव्यक्त की ये विशेषताएँ या लक्षण हैं। अव्यक्त या प्रकृति के ये नाम या पर्यायवाची शब्द हैं।

तत् सूक्ष्मत्वादनिर्देश्यं तत् सदित्यभिधीयते।
तन्मूलं च जगत् सर्वं तन्मूला सृष्टिरिष्यते।। अनु 145 दा० पा० अ०XV

यह अव्यक्त बहुत सूक्ष्म अर्थात् अणु होने के कारण अनिर्देश्य है यानी वाणी के द्वारा उसे बताया नहीं जा सकता। अव्यक्त को 'सत्' कहा जाता है। सारे संसार का मूल कारण अव्यक्त है। सारी सृष्टि का भी मूल कारण अव्यक्त या प्रकृति ही है।

त्रिगुण

सुखं तुष्टिः प्रकाशश्च त्रयस्ते सात्त्विका गुणाः।
रागद्वेषौ सुखं दुःखं स्तम्भश्च रजसो गुणाः।। अनु 145 दा० पा०अ० XV

सुख, संतोष और प्रकाश, ये तीन सात्त्विक गुण हैं। राग. द्वेष, सुख, दुःख और उद्दण्डता ये राजसिक या रज के गुण हैं।

अप्रकाशो भयं मोहस्तन्द्री च तमसो गुणाः।। अनु 145 दा० पा० अ० XV

अन्धकार, डर, मोह और आलस्य ये तम के गुण हैं।

श्रद्धा प्रहर्षो विज्ञानमसम्मोहो दया धृतिः।
सत्त्वे प्रवृद्धे वर्धन्ते विपरीते विपर्ययः।। अनु 145 दा० पा० अ० XV

श्रद्धा, प्रसन्नता, प्रकृष्ट ज्ञान, मोह का न होना, दया और धैर्य ये भाव शरीर में सत्त्व गुण के बढ़ने पर बढ़ते हैं और तमोगुण के बढ़ने पर इनसे विपरीत अश्रद्धा, अज्ञान, क्रूरता आदि भाव बढ़ जाते हैं।

कामक्रोधौ मनस्तापो लोभो मोहस्तथा मृषा।
प्रवृद्धे परिवर्धन्ते रजस्येतानि सर्वशः।
विषादः संशयो मोहस्तन्द्री निद्रा भयं तथा।
तमस्येतानि वर्धन्ते प्रवृद्धे हेत्वहेतुकम्।। अनु 145 दा० पा० अ० XV

काम, क्रोध, मानसिक संताप, लोभ, मोह (आसक्ति, लगाव) और झूठ बोलना ये सारे दोष रजोगुण के बढ़ने पर बढ़ते हैं। विषाद, सन्देह, मोह, आलस्य, नींद, भय ये सब तमोगुण के बढ़ने पर बढ़ते हैं।

समासात् सात्त्विको धर्मः समासाद् राजसं धनम्।
समासात् तामसः कामस्त्रिवर्गे त्रिगुणाः क्रमात्।।
ब्रह्मादिदेवसृष्टिर्या सात्त्विकीति प्रकीर्त्यते।
राजसी मानुषी सृष्टिः तिर्यग्योनिस्तु तामसी।। अनु 145 दा० पा० अ०XV

धर्म, सात्त्विक है। धन, राजस है, और काम, तामस है। इस प्रकार धर्म, अर्थ और काम क्रमशः सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों में प्रतिष्ठित हैं। ब्रह्मा आदि देवताओं की सृष्टि सात्त्विक बतायी जाती है। मनुष्यों की राजसी सृष्टि है और पशु पक्षी, कीट–पतंग आदि तामसिक योनि के हैं।

महत् का लक्षण

विज्ञानं च विवेकश्च महतो लक्षणं भवेत्।।

अनु 145 दा० पा० अ०XV

बुद्धि के द्वारा जो विवेक और ज्ञान होता है वही शरीर में महत्तत्त्व का लक्षण है अर्थात् महत तत्त्व की उपस्थिति बताता है।

महान् बुद्धिर्मतिः प्रज्ञा नामानि महतो विदुः।। अनु 145 दा० पा० अ०XV

महान्, बुद्धि, मति और प्रज्ञा ये महत्तत्त्व के नाम हैं।

अहंकार का लक्षण

अहंकारेण भूतानां सर्गो नानाविधो भवेत्।
अहंकारनिवृत्तिर्हि निर्वाणायोपपद्यते।। अनु 145 दा० पा० अ०XV

अहंकार से अनेक प्रकार के प्राणी उत्पन्न होते हैं। अहंकार नष्ट हो जाने पर व्यक्ति मोक्ष पा लेता है।

पांच महाभूत

खं वायुरग्निः सलिलं पृथिवी चेति पञ्चमी।
महाभूतानि भूतानां सर्वेषां प्रभवाप्ययौ।

अनु 145 दा० पा० अ०XV

आकाश, वायु, अग्नि, (तेज) जल और पृथिवी इन पाँच महाभूतों से समस्त प्राणी बनते हैं और इन्हीं में समा जाते हैं।

शब्दः श्रोत्रं तथा खानि त्रयमाकाशसम्भवम्।
स्पर्शवत् प्राणिनां चेष्टा पवनस्य गुणाः स्मृताः।।
अनु 145 दा० पा० अ०XV

शब्द, श्रवणेन्द्रिय (कान) और इन्द्रियों के छिद्र ये तीनों आकाश से प्रकट हुए हैं या आकाश के गुण हैं। स्पर्श और प्राणियों की चेष्टा वायु के गुण हैं।

रूपं पाकोऽक्षिणी ज्योतिश्चत्वारस्तेजसो गुणाः।
रसः स्नेहस्तथा जिह्वा शैत्यं च जलजा गुणाः।। अनु 145 दा० पा० अ०XV

रूप, पाक, आँख और ज्योति ये चार तेज के गुण हैं। रस, स्नेह (चिकनापन) जीभ और शीतलता ये चार जल के गुण हैं।

गन्धो घ्राणं शरीरं च पृथिव्यास्ते ग्रुणास्त्रयः।। अनु 145 दा० पा० अ०XV

गन्ध, घ्राणेन्द्रिय (नाक) और शरीर ये तीन पृथ्वी के गुण हैं।

प्राणापानाश्रयो वायुः खेष्वाकाशः शरीरिणाम्।
केशास्थि नख दन्तत्वक्पाणिपादशिरांसि च।
पृष्ठोदरकटिग्रीवाः सर्वं भूम्यात्मकं स्मृतम्।। अनु 145 दा०पा० अ० XV

प्राण और अपान का आश्रय वायु है। शरीर में जितने छिद्र हैं उन में आकाश व्याप्त है। बाल, हड्डी, नाखून, दाँत, त्वचा, हाथ, पैर, सिर, पीठ, पेट, कमर, गर्दन ये सब भूमितत्व से बने हैं।

यत् किंचिदपि कायेऽस्मिन् धातुदोषमलाश्रितम्।
तत् सर्वं भौतिकं विद्धि देहैरेवास्य स्वामिकम्।। अनु 145 दा०पा० अ०XV

इस शरीर में धातु, दोष और मल सम्बन्धी जो भी चीजें हैं उन सबको पाँच महाभूतों से बना हुआ जानो। प्राणियों के शरीरों द्वारा ही इस संसार पर पाँच महाभूतों का स्वामित्व है।

बुद्धीन्द्रियाणि कर्णत्वक्चक्षुर्जिह्वाथ नासिका।
कर्मेन्द्रियाणि वाक्पाणिपादौ मेढ्रं गुदस्तथा।। अनु 145 दा०पा० अ० XV

कान, त्वचा, आँख, जीभ और नाक ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। वाणी, हाथ, पैर, लिंग (मूत्रेन्द्रिय) और गुदा ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं।

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः।
बुद्धीन्द्रियार्थान् जानीयाद् भूतेभ्यस्त्वभिनिःसृतान्।।

अनु 145 दा० पा० अ० XV

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध से पाँच विषय पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं। ये पाँचों विषय पंचमहाभूतों से प्रकट हुए हैं।

वाक्यं क्रिया गतिः प्रीतिरुत्सर्गश्चेति पञ्चधा।
कर्मेन्द्रियार्थान् जानीयात् ते च भूतोद्भवाः मताः।।

अनु 145 दा० पा० अ० XV

बोलना, काम करना, चलना, प्रीति और उत्सर्ग (मल त्याग आदि) ये पांच कर्मेन्द्रियों के विषय हैं। ये भी पांच महाभूतों से पैदा हुए हैं।

इन्द्रियाणां तु सर्वेषामीश्वरं मन उच्यते।
प्रार्थनालक्षणं तच्च इन्द्रियं तु मनः स्मृतम्।। अनु 145 दा० पा० अ०XV

सारी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का स्वामी मन है। मन को भी इन्द्रिय माना गया है। मन का लक्षण है-किसी वस्तु की इच्छा (प्रार्थना) करना।

आत्मा **नियुङ्क्ते च सदा तानि भूतानि मनसा सह।**
नियमे च विसर्गे च मनसः कारणं प्रभुः।।

अनु 145 दा० पा० अ० XV

जो आत्मा (प्रभु) मन को बनाता है और अपने नियन्त्रण में रखता है वही आत्मा; मन सहित सभी प्राणियों को विभिन्न कामों में लगाता है।

शरीर **इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स्वभावश्चेतना धृतिः।**
भूताभूतविकारश्च शरीरमिति संस्थितम्।।

अनु 145 दा० पा० अ० XV

मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषय रूप, रस आदि स्वभाव, चेतना, धारणाशक्ति तथा पंचभूतों के नाना विकार – ये सब मिलकर शरीर बनता है।

शरीराच्च परो देही शरीरं च व्यपाश्रितः।। अनु 145 दा० पा० अ० XV

आत्मा या देही, (देह में रहने वाला) शरीर से अलग है किन्तु वह शरीर में रहता है।

रसः स्पर्शश्च गन्धश्च रूपं शब्दविवर्जितम्।
अशरीरं शरीरेषु दिदृक्षेत निरिन्द्रियम्।। अनु 145 दा० पा० अ० XV

रस, स्पर्श, गन्ध, रूप और शब्द इन पाँचों विषयों से रहित, बिना इन्द्रियों और बिना देह वाले आत्मा को अपने शरीर के अन्दर देखने का प्रयत्न करना चाहिये।

अव्यक्तं सर्वदेहेषु मर्त्येष्वमरमाश्रितम्।
यः पश्येत् परमात्मानं बन्धनैः स विमुच्यते।। अनु 145 दा० पा० अ० XV

जो सभी मरने वाले प्राणियों के शरीरों में अव्यक्त (न दीखने वाले) रूप से स्थित है और अमर है उस परमात्मा को जो मनुष्य देख लेता है वह सभी बन्धनों से छूट जाता है।

इन्द्रियैरिह बुद्ध्या वा न दृश्येत कदाचन।। अनु 145 दा० पा० अ० XV

वह परमात्मा हमारी इन्द्रियों से या बुद्धि से भी कभी नहीं दिखाई देता।

क्षेत्रज्ञमेकतः कृत्वा सर्वं क्षेत्रमथैकतः।
एवं संविमृशेज्ज्ञानी संयतः सततं हृदि।। अनु 145 दा० पा० अ० XV

सारे क्षेत्र को अर्थात् देह आदि जड़ पदार्थों को एक ओर रखकर और क्षेत्रज्ञ अर्थात् देह आदि जड़ वस्तुओं को जानने वाले चेतन परमात्मा को अलग करके ज्ञानी पुरुष को अपने हृदय में निरन्तर विचार करना चाहिये अर्थात् जड़ तत्त्व और चेतन तत्त्व अलग अलग हैं यह समझना चाहिये।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
अकर्तालेपको नित्यो मध्यस्थो सर्वकर्मणाम्।। अनु 145 दा० पा० अ० XV

पुरुष (परमात्मा) सारी प्रकृति में समाकर प्रकृति से उत्पन्न हुए सत्त्व, रजस् और तमस् गुणों वाले पदार्थों को भोगता है। वह कर्त्ता नहीं है, वह किसी काम में लिप्त नहीं है। नित्य है और सभी कर्मों के बीच स्थित है।

ऋषिभिश्चापि देवैश्च व्यक्तमेष न दृश्यते।
दृष्ट्वा तु तं महात्मानं पुनस्तन्न निवर्तते।। अनु 145 दा० पा० अ० XV

ऋषियों और देवताओं को भी यह परमात्मा प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता। जो व्यक्ति परमात्मा को साक्षात् कर लेता है वह संसार में लौटकर नहीं आता।

योग दर्शन **ज्ञानं सर्वस्य योगस्य मूलमित्यवधारय।**
व्रतोपवासनियमैः तत् सर्वं चापि बृंहयेत्।।

अनु145दा०पा० अ० XVI

सारे योग का आधार ज्ञान ही है। साधक को व्रत, उपवास और यम-नियमों का पालन करके उस ज्ञान को बढ़ाते रहना चाहिये।

ऐकाग्र्यं बुद्धिमनसोरिन्द्रियाणां च सर्वशः।
आत्मनोऽव्ययिनः प्राज्ञे ज्ञानमेतत् तु योगिनाम्।।

अनु 145 दा० पा० अ० XVI

बुद्धिमती पार्वती! अविनाशी (अव्यय) आत्मा में; बुद्धि, मन और इन्द्रियों की पूरी तरह एकाग्रता होना ही योगियों का ज्ञान है।

दानमध्ययनं श्रद्धा व्रतानि नियमास्तथा।
सत्यमाहारशुद्धिश्च शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतैश्च वर्धते तेजः पापं चाप्यवधूयते।। अनु 145 दा० पा० अ० XVI

दान, शास्त्रों का पढ़ना, श्रद्धा, व्रत, नियम-नियम का पालन, सत्य व्यवहार, सात्विक भोजन, शरीर और मन की पवित्रता और इन्द्रिय संयम इनके द्वारा योगी तेजस्वी बनता है और उसके पाप नष्ट हो जाते हैं।

मनोऽवस्थापनं देवि योगस्योपनिषद् भवेत्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मनोऽवस्थापयेत् सदा।।
त्वक्छोत्रं च ततो जिह्वां घ्राणं चक्षुश्च संहरेत्।
पञ्चेन्द्रियाणि संधाय मनसि स्थापयेद् बुधः।। अनु 145 दा० पा० अ० XVI

देवि! मन की एकाग्रता ही योग का लक्ष्य है। इसलिये सभी तरह से प्रयत्न करके मन को एकाग्र करना चाहिये। इसके लिये त्वचा, कान, जीभ, नाक और आँख इन पाँचों इन्द्रियों को उनके विषयों से लौटाकर इन इन्द्रियों को मन में लगाना चाहिये।

सर्वं चापोह्य संकल्पमात्मनि स्थापयेन्मनः।
यदैतान्यवतिष्ठन्ते मनः षष्ठानि चात्मनि।।
प्राणापानौ तदा तस्य युगपत् तिष्ठतो वशे।
प्राणे हि वशमापन्ने योगसिद्धिर्ध्रुवा भवेत्।। अनु 154 दा० पा० अ० XVI

फिर सभी तरह के विचारों को छोड़कर मन को आत्मा में लगाना चाहिये। जब मन सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ, आत्मा में लग जाती हैं तब साधक के प्राण और अपान वायु भी एक साथ वश में हो जाते हैं और प्राणों पर वश पा लेने पर योगसिद्धि अटल हो जाती है।

वस्तिमूलं गुदं चैव पावकं समाश्रितः।
वहन् मूत्रं पुरीषं च सदापानः प्रवर्तते।।
अथ प्रवृत्ति र्देहेषु कर्मापानस्य सम्मतम्।

उदीरयन् सर्वधातून् अत ऊर्ध्वं प्रवर्तते।।
उदान इति तं विद्युरध्यात्मकुशला जनाः।। अनु 145 दा० पा० अ० XVI

पेडू या मूत्राशय के नीचे गुदा और जठराग्नि में रहकर अपान वायु मल-मूत्र को शरीर से बाहर निकालता रहता है। शरीरों में चेष्य अपान वायु का कार्य है। जो वायु शरीर के सभी धातुओं को ऊपर उठाती हुई अपान वायु से ऊपर गति करती है उसे अध्यात्म ज्ञान में कुशल व्यक्ति उदान वायु कहते हैं।

संधौ संधौ स निर्विष्टः सर्वचेष्टाप्रवर्तकः।
शरीरेषु मनुष्याणां व्यान इत्युपदिश्यते।।
धातुष्वग्नौ च विततः समानोऽग्निः समीरणः।
स एव सर्वचेष्टानामन्तकाले निवर्तकः।। अनु 145 दा० पा० अ० XVI

मनुष्य के शरीर के प्रत्येक जोड़ में व्याप्त होकर व्यान वायु शरीर की सभी तरह की गतिविधियाँ कराता है। इसे ही मनुष्यों के शरीर में रहने वाला व्यान वायु कहा जाता है। जो वायु शरीर के धातुओं और अग्नि में व्याप्त है उसे अग्निस्वरूप समान वायु कहा जाता है। समान वायु अन्त समय में शरीर की सभी चेष्यओं को बन्द कर देता है।

प्राणानां संनिपातेषु संसर्गाद् यः प्रजायते।
ऊष्मा सोऽग्निरिति ज्ञेयः सोऽन्नं पचति देहिनाम्।।

अनु 145 दा०पा०अ०XVI

शरीर में सभी प्राणों का संयोग होने पर देह में जो गर्मी पैदा होती है उसे ही अग्नि कहते हैं। यह अग्नि शरीर में अन्न पचाती है।

अपानप्राणयोर्मध्ये व्यानोदानावुपाश्रितौ।
समन्वितः समानेन सम्यक् पचति पावकः।। अनु 145 दा० पा० अ० XVI

प्राण और अपान के बीच में व्यान और उदान वायु रहती है। समान वायु से मिलकर अग्नि अन्न को भली-भाँति पचाती है।

शरीरमध्ये नाभिः स्यान्नाभ्यामग्निः प्रतिष्ठितः।
अग्नौ प्राणाश्च संयुक्ता प्राणेष्वात्मा व्यवस्थितः।।

अनु 145 दा० पा० अ० XVI

हमारे शरीर के बीच में नाभि है। नाभि में अग्नि रहती है। अग्नि से प्राण जुड़े हुए हैं और प्राणों में आत्मा रहता है।

पक्वाशयस्त्वधो नाभेरूर्ध्वमामाशयस्तथा।
नाभिर्मध्ये शरीरस्य सर्वप्राणाश्च संश्रिताः।।

अनु 145 दा० पा० अ० XVI

नाभि के नीचे पक्वाशय है और नाभि के ऊपर आमाशय। नाभि में शरीर के सारे प्राण रहते हैं।

स्थिताः प्राणादयः सर्वे तिर्यगूर्ध्वमधश्चराः।
वहन्त्यन्नरसान् नाड्यो दशप्राणाग्निचोदिताः।।

अनु 145 दा० पा० अ० XVI

शरीर में रहने वाले सभी प्राण आदि शरीर में ऊपर, नीचे, अगल-बगल में गति करते रहते हैं। दस प्राणों तथा अग्नि से प्रेरित होकर नाडियां शरीर में अन्न का रस पहुँचाती हैं।

मूर्धन्यात्मानमाधाय भ्रुवोर्मध्ये मनस्तथा।
संनिरुध्य ततः प्राणानात्मानं चिन्तयेत् परम्।।
प्राणे त्वपानं युञ्जीत प्राणांश्चापानकर्मणि।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरो भवेत्।।

अनु 145 दा० पा० अ० XVI

सिर में स्थित सहस्रारचक्र में आत्मा को स्थापित करके भौंहों के बीच में मन एकाग्र करना चाहिये। फिर प्राण रोककर परमात्मा का ध्यान करना चाहिये। अपान वायु को प्राणवायु में और प्राण वायु को अपान वायु में मिला देना चाहिये तथा प्राण और अपान वायुओं की गति रोककर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये।

एवमन्तः प्रयुञ्जीत पञ्च प्राणान् परस्परम्।
विजने सम्मिताहारो मुनिस्तूर्ष्णीं निरुच्छ्वसन्।।
अश्रान्तश्चिन्तयेद् योगी उत्थाय च पुनः पुनः।
तिष्ठन् गच्छन् स्वपन् वापि युञ्जीतैवमतन्द्रितः।।

अनु 145 दा० पा० अ० XVI

योगी एकान्त स्थान में बैठकर, मिताहारी बनकर, मौन रहकर और लम्बा श्वास न भरकर अपने अन्तःकरण में पाँचों प्राण वायुओं को मिलाये। उसे प्रतिदिन उठने के बाद थके बिना ध्यान लगाना चाहिये। उसे उठते-बैठते, सोते-जागते सावधान रहकर और आलस्य त्यागकर परमात्म चिन्तन करते रहना चाहिये।

एवं नियुञ्जतस्तस्य योगिनो युक्तचेतसः।
प्रसीदति मनः क्षिप्रं प्रसन्ने दृश्यते परम्।।
विधूम इव दीप्तोऽग्निरादित्य इव रश्मिमान्।
वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे पुरुषो दृश्यतेऽव्ययः।।

अनु 145 दा० पा० अ० XVI

इस प्रकार ध्यान मग्न योगी का मन जल्दी ही प्रसन्न अर्थात् और अधिक एकाग्र हो जाता है तथा मन की एकाग्रता बढ़ने पर उसे परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है। यह परमात्मतत्त्व धुएँ से रहित प्रदीप्त अग्नि, किरणों से युक्त सूर्य और आकाश में विद्यतु प्रकाश की भाँति अविनाशी पुरुष है।

दृष्ट्वा तदा मनो ज्योतिरैश्वर्याष्टगुणैर्युतः।
प्राप्नोति परमं स्थानं स्पृहणीयं सुरैरपि।। अनु 145 दा० पा० अ० XVI

योगी का मन ज्योतिर्मय परमात्मतत्त्व का दर्शन करके अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, यथाकामावसायित्व और वशित्व इन आठ ऐश्वर्य युक्त सिद्धियों को प्राप्त कर योगी उस परम पद को प्राप्त कर लेता है जिसे देवता भी पाना चाहते हैं।

कामः क्रोधो भयं स्वप्नः स्नेहमत्यशनं तथा।
वैचित्त्यं व्याधिरालस्यं लोभश्च दशमः स्मृतः।।

अनु 145 दा० पा० अ० XVI

काम, क्रोध, डर, स्वप्न, स्नेह, अधिक भोजन, मन की बेचैनी, रोग, आलस्य और लोभ योगमार्ग के दस विघ्न हैं।

अनेनैव विधानेन सायुज्यं तत् प्रकल्पते।। अनु 145 दा० पा० अ० XVI

इस प्रकार के योगाभ्यास से योगी को सायुज्य अर्थात् मुक्ति की चार अवस्थाओं में से पहली अवस्था प्राप्त हो जाती है।

साम

साम्ना जितोऽर्थोऽर्थकरो भवेत्।। उद्योग 2/14

साम अर्थात् शान्ति से और समझा बुझाकर जो काम किया जाता है वह हितकारी होता है।

तरसा ये न शक्यन्ते शस्त्रैः सुनिशितैरपि।
साम्ना तेऽपि निगृह्यन्ते गज इव करेणुभिः।। शान्ति 139/39

जो लोग बल प्रयोग से और तीखे हथियारों से भी वश में नहीं आते उन्हें भी समझा-बुझाकर वश में कर लिया जाता है जैसे हथिनियों की सहायता से हाथी को पकड़ लिया जाता है।

स्त्री

प्राचेतस्य वचनं कीर्तयन्ति पुराविदः।
यस्याः किंचिन्नाददते ज्ञातयो न स विक्रयः।। अनुशासन 46/1
अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यतमं च तत्।
सर्वं च प्रतिदेयं स्यात् कन्यायै तदशेषतः।। अनु 46/2

प्राचीन इतिहास जानने वाले दक्ष प्रजापति के वचनों को इस प्रकार बतलाते हैं कि कन्या के भाई-बन्धु यदि उसके वस्त्र आभूषण के लिये धन लेते हैं और इस धन में से कुछ भी अपने पास नहीं रखते तो वह कन्या की बिक्री नहीं होती। वह तो कन्या का सत्कार ही है। यह परम दयालुता का काम है। जो धन कन्या के लिये मिला हो वह सारा कन्या को ही दे देना चाहिये।

पितृभिर्भ्रातृभिश्चापि श्वशुरैरथ देवरैः।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः।। अनुशासन 46/3

अनेक प्रकार का भला चाहने वाले पिता, भाई, ससुर और देवरों को नववधू का सत्कार वस्त्रों और आभूषणों से करना चाहिये।

यदि वै स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजनो न प्रवर्धते।। अनुशासन 46/4
पूज्या लालयितव्याश्च स्त्रियो नित्यं जनाधिप।

राजन्! यदि स्त्री की इच्छा पूरी नहीं की जाती तो वह अपने पति को प्रसन्न नहीं रख सकती। स्त्री और पति के प्रसन्न न रहने पर सन्तान वृद्धि नहीं हो सकती। इसलिये स्त्रियों का सत्कार और दुलार सदैव करना चाहिये।

स्त्रियो यत्र च पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।। अनुशासन 46/5
अपूजिताश्च यत्रैताः सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।

जहाँ स्त्रियों का आदर-सम्मान किया जाता है वहाँ देवता प्रसन्न होकर निवास करते हैं। जहां स्त्रियों का अपमान किया जाता है वहाँ सभी काम असफल होते हैं।

तदा चैतत् कुलं नास्ति यदा शोचन्ति जामयः।। अनुशासन 46/6

जामीशप्तानि गेहानि निकृत्तानीव कृत्यया।
नैव भान्ति न वर्धन्ते श्रिया हीनानि पार्थिव।। अनुशासन 46/7

जब किसी कुल की बहू-बेटियाँ दुखी रहती हैं तब उस कुल का नाश हो जाता है। वे दु:खी होकर जिन घरों को शाप दे देती हैं वे कृत्या राक्षसी के द्वारा नष्ट घरों के समान उजाड़ हो जाते हैं। राजन्! ऐसे श्रीहीन घरों की न तो शोभा होती है और न ही उनकी वृद्धि होती है।

स्त्रियः पुंसां परिददे मनुर्जिगमिषुर्दिवम्।
अबलाः स्वल्पकौपीनाः सुहृदः सत्यजिष्णवः।। अनुशासन 46/8

ईर्षवो मानकामाश्च चण्डाश्च सुहृदोऽबुधाः।
स्त्रियस्तु मानमर्हन्ति ता मानयत मानवाः।। अनुशासन 46/9

स्त्रीप्रत्ययो हि वै धर्मो रतिभोगाश्च केवलाः।
परिचर्या नमस्कारास्तदायत्ता भवन्तु वः।। अनुशासन 46/10

जब मनु स्वर्ग जाने लगे तब उन्होंने स्त्रियों को मनुष्यों के हाथों में सौंपकर कहा कि स्त्रियाँ अबला, थोड़े से कपड़ों में काम चलाने वाली, मित्र, सत्य आचरण वाली, ईर्ष्यालु, सत्कार चाहने वाली, बहुत क्रोध करने वाली, पुरुष का मित्र भाव से हित करने वाली और भोली-भाली होती हैं। स्त्रियाँ सम्मान पाने योग्य हैं अतः पुरुषों को उनका आदर करना चाहिये। क्योंकि स्त्रियाँ ही धर्म की सफलता की साधन हैं इसलिये पुरुषों के रति, भोग, सेवा और सम्मान स्त्रियों के ही अधीन रहेगा।

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रीत्यर्थं लोकयात्रायाः पश्यत स्त्रीनिबन्धनम्।। अनु 46/11

सम्मान्यमानाश्चैता हि सर्वकार्याण्यवाप्स्यथ।

सन्तान को उत्पन्न करना, उसका पालन-पोषण तथा जीवन यात्रा का सुखपूर्वक निर्वाह यह सब स्त्री के ही अधीन है। यदि पुरुष स्त्री का सम्मान करेगा तो उसके सभी काम सफल होंगे।

धर्मः स्वभर्तृशुश्रूषा तया स्वर्गं जयन्त्युत।। अनु 46/13

स्त्री का धर्म अपने पति की सेवा है। इसी से स्त्रियाँ स्वर्ग प्राप्त कर लेती हैं।

श्रिय एताः स्त्रियो नाम सत्कार्या भूतिमिच्छता।
पालिता निगृहीता च श्रीः स्त्री भवति भारत।। अनुशासन 46/15

भरतनन्दन! स्त्रियाँ ही घर की लक्ष्मी हैं। अपनी उन्नति चाहने वाले पुरुष को स्त्रियों का आदर करना चाहिये। अपने वश में रखकर उनका पालन करने से स्त्री लक्ष्मी का स्वरूप बन जाती है।

स्त्री स्वभाव

ईप्सितश्च गुणः स्त्रीणामेकस्या बहुभर्तृता।। आदि 201/8

प्रायः स्त्रियाँ कई पुरुषों से सम्बन्ध रखना चाहती हैं।

न हि भार्येऽति विश्वासः कार्यः पुंसः कथंचन।
न हि कार्यमनुध्याति नारी पुत्रवती सती।। आदि 232/31

यह मेरी पत्नी है यह मानकर पुरुष को स्त्री पर विश्वास नहीं करना चाहिये क्योंकि पुत्र मिलने के बाद स्त्री, पति का ध्यान नहीं रखती।

सुसान्त्विता ह्यसती स्त्री जहाति।। सभा 64/11

कुलटा स्त्री को चाहे जितना समझाया जाय वह पति को छोड़ ही देती है।

स्त्रीस्वभाश्चलो लोके। वन 71/6

स्त्री का स्वभाव चंचल होता है यह प्रसिद्ध है।

को जातु परभावां हि नारीं व्यालीमिव स्थिताम्।
वासयेत् गृहे जानन् स्त्रीणां दोषो महात्ययः।। उद्योग 178/45

किसी दूसरे पुरुष से प्रेम करने वाली स्त्री सर्पिणी जैसी होती है। ऐसी स्त्री को कौन अपने घर में रखेगा? परपुरुष से प्रेम करना स्त्रियों का बड़ा दोष है।

स्त्रियस्त्वाशङ्किताः पापा नोपगम्या विजानता।
रजसा ता विशुध्यन्ते भस्मनां भाजनं यथा।। शान्ति 35/30

यदि अपनी स्त्री के बारे में पापाचरण का सन्देह हो तो बुद्धिमान पुरुष को रजस्वला होने तक उसके साथ समागम नहीं करना चाहिये। मासिक धर्म के बाद स्त्री उसी तरह शुद्ध हो जाती है जैसे राख से मांजा हुआ बर्तन साफ हो जाता है।

तृष्णाभिभूतस्तैर्बद्धस्तानेवाभिपरिप्लवन् ।
संसारतन्त्रवाहिन्यस्तत्र बुद्ध्येत योषितः।। शान्ति 213/7

तृष्णा में फंसा हुआ, काम, क्रोध आदि में बंधा हुआ तथा इन्हीं दोषों के पीछे भागता हुआ मनुष्य दुख भोगता रहता है। मनुष्य यदि इन दोषों से छूटना चांहे तो उसे स्त्रियों को संसाररूपी वस्त्र बुनने वाली समझना चाहिये और इन से दूर रहना चाहिये।

प्रकृत्या क्षेत्रभूतास्ता नराः क्षेत्रज्ञलक्षणाः।
तस्मादेवाविशेषेण नरोऽतीयाद् विशेषतः।। शान्ति 213/8

स्त्रियाँ प्रकृति जैसी हैं इसलिये वे क्षेत्र (खेत) स्वरूप हैं। पुरुष, क्षेत्रज्ञरूप हैं। इसलिये पुरुष को विशेष प्रयत्नपूर्वक स्त्रियों से दूर रहना चाहिये। जैसे प्रकृति अज्ञानी पुरुष को बांधती है वैसे ही स्त्रियां पुरुष को अपने मोहजाल में बांध लेती हैं।

कृत्या ह्येता घोररूपा मोहयन्त्यविचक्षणान्।
रजस्यन्तर्हिता मूर्तिरिन्द्रियाणां सनातनी।। शान्ति 213/9

ये स्त्रियाँ भयानक राक्षसी जैसी हैं। स्त्रियाँ अज्ञानी पुरुषों को अपने मोह पाश में फंसा लेती हैं। इन्द्रियों में विकार पैदा करने वाली ये सनातन स्त्री मूर्तियां रजोगुण से छिपी हुई हैं।

मृदुत्वं च तनुत्वं च विक्लवत्वं तथैव च।
स्त्रीगुणा ऋषिभिः प्रोक्ता धर्मतत्वार्थदर्शिभिः।। अनुशासन 12/14

धर्म के तत्त्व ज्ञान को देखने वाले ऋषियों ने स्त्री के ये गुण बताये हैं–कोमलता, पतलापन और व्याकुलता या चंचलता।

नातः परं हि नारीणां विद्यते च कदाचन।। अनुशासन 19/86
यथा पुरुषसंसर्गः परमेतद्धि नः फलम्।

स्त्रियों को पुरुष के साथ समागम जितना अच्छा लगता है उससे बढ़कर और कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती। पुरुष समागम ही स्त्रियों का सर्वोत्तम फल है।

आत्मच्छन्देन वर्तन्ते नार्यो मन्मथचोदिताः। अनुशासन 19/87
न च दह्यन्ति गच्छन्त्यः सुतप्तैरपि पांसुभिः।।

कामेच्छा से प्रेरित हुई स्त्रियाँ अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करती हैं। काम वासना से परेशान होने पर वे गर्म रेत में भी चलती हैं किन्तु उनके पैरों में जलन अनुभव नहीं होती।

प्रियाः स्त्रीणां यथा कामो रतिशीला हि योषितः।
सहस्रे किल नारीणां प्राप्येतैका कदाचन।। अनुशासन 19/92

स्त्रियों को काम सुख बहुत अच्छा लगता है। स्त्रियाँ स्वभाव से ही सम्भोग (रति) चाहती हैं। हजारों स्त्रियों में कोई एक ऐसी होती है जिसे सम्भोग करना अच्छा नहीं लगता।

तथा शतसहस्त्रेषु यदि काचित् पतिव्रता।
नैता जानन्ति पितरं न कुलं न च मातरम्।। अनुशासन 19/93
न भ्रातृन् न च भर्तारं न च पुत्रान् न देवरान्।
लीलायन्त्यः कुलं घ्नन्ति कूलानीव सरिद्वराः।। अनुशासन 19/94

लाखों स्त्रियों में शायद ही कोई पतिव्रता हो। स्त्रियाँ अपनी कामवासना शान्त करने के लिये माता-पिता, कुल, भाई, पति, पुत्र और देवर किसी की भी परवाह नहीं करतीं। कामवासना के वश में होकर वे कुलों को वैसे ही नष्ट कर देती हैं जैसे नदी अपने किनारों को तोड़ देती है।

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्राश्च स्थाविरे काले नास्ति स्त्रीणां स्वतन्त्रता।।

अनुशासन 20/21; 46/14

कुमारी अवस्था में स्त्री की रक्षा पिता करता है। युवावस्था में पति उसकी रक्षा करता है और बुढ़ापे में उसके पुत्र। स्त्री कभी स्वतंत्र नहीं रहती।

द्यावापृथिव्योर्यत्रैषा काम्या ब्राह्मणसत्तम।। अनुशासन 21/3

श्रेष्ठ ब्राह्मण अष्यवक्र! पृथिवी लोक हो या स्वर्ग लोक जहाँ भी स्त्री-पुरुष रहते हैं उनमें परस्पर समागम की इच्छा बनी रहती है।

स्थविराणामपि स्त्रीणां बाधते मैथुनज्वरः।। अनु 21/5

बूढ़ी स्त्रियों को भी मैथुन के लिये काम वासना परेशान करती है।

कुलीना रूपवत्यश्च नाथवत्यश्च योषितः।
मर्यादासु न तिष्ठन्ति स दोषः स्त्रीषु नारद।। अनुशासन 38/11

नादर जी! स्त्रियों में यही बुराई है कि कुलीन, सुन्दर और पति वाली स्त्रियाँ भी अपनी मर्यादा में नहीं रहतीं।

समाज्ञातानृद्धिमतः प्रतिरूपान् वशे स्थितान्।
पतीनन्तरमासाद्य नालं नार्यः प्रतीक्षितम्।। अनुशासन 38/12

यदि स्त्रियों को किसी दूसरे पुरुष से मिलने का अवसर मिल जाय तो वे गुणशाली, धनवान, सुन्दर और वश में रहने वाले पतियों की भी प्रतीक्षा नहीं करतीं।

स्त्रियं हि यः प्रार्थयते संनिकर्षं च गच्छति।
ईषच्च कुरुते सेवां तमेवेच्छन्ति योषितः।। अनुशासन 38/15

जो पुरुष किसी स्त्री को चाहता है, उसके पास जाता है और उसकी थोड़ी बहुत सेवा कर देता है तो स्त्री उसी पुरुष को चाहने लगती है।

यदि पुंसां गतिर्ब्रह्मन् कथंचिन्नोपपद्यते।
अप्यन्योन्यं प्रवर्तन्ते न हि तिष्ठन्ति भर्तृषु।। अनुशासन 38/22

ब्रह्मन्! यदि स्त्रियों को किसी भी तरह कोई पुरुष न मिल पाये और पति भी दूर गया हुआ हो तो वे आपस में ही कृत्रिम उपायों से मैथुन करने लगती हैं।

चलस्वभावा दुःसेव्या दुर्ग्राह्या भावतस्तथा।
प्राज्ञस्य पुरुषस्येह यथा वाचस्तथा स्त्रियः।। अनुशासन 38/24

स्त्रियों का स्वभाव चंचल होता है। उनको वश में रखना बहुत कठिन है। उनके मन की बात वैसे ही जल्दी समझ में नहीं आती जैसे किसी विद्वान् पुरुष की बात समझ में नहीं आती।

दृष्ट्वैव पुरुषं हृद्यं योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः।। अनु 38/26

किसी सुन्दर पुरुष को देखते ही स्त्रियों की योनि गीली हो जाती है।

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकःसर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः।। अनुशासन 38/25

आग कितनी भी लकड़ियाँ डालने से सन्तुष्ट नहीं होती। समुद्र भी नदियों से तृप्त नहीं होता। यमराज भी सारे प्राणियों को मारकर भी सन्तुष्ट नहीं होता। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी पुरुषों से कभी तृप्त नहीं होतीं।

न कामभोगान् विपुलान् नालंकारान् न संश्रयान्।
तथैव बहु मन्यन्ते यथा रत्यामनुग्रहम्।। अनुशासन 38/28

स्त्रियाँ न तो भोग ऐश्वर्य की अनेक वस्तुओं को, न गहनों को और न ही अच्छे घरों को उतना महत्व देती हैं जितना कि वे रतिक्रिया से प्रसन्न करने वाले को।

अन्तकः पवनो मृत्युः पातालं वडवामुखम्।
क्षुरधारा विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः।। अनुशासन 38/29

यमराज, वायु, मृत्यु, पाताल, समुद्र की अग्नि, छुरे की धार, विष, साँप और अग्नि-विनाश की ये सारी वस्तुएँ एक तरफ और अकेली स्त्रियाँ एक तरफ बराबर हैं।

यतश्च भूतानि महान्ति पञ्च यतश्च लोका विहिता विधात्रा।
यतः पुमांसः प्रमदाश्च निर्मितास्तदैव दोषाः प्रमदासु नारद।।

अनुशासन 38/30

नारद! जहाँ से पाँचों महाभूत उत्पन्न हुए हैं। जहाँ से विधाता ने सारे लोक बनाये हैं। जहाँ से स्त्री-पुरुष बनाये गये हैं वहीं से स्त्रियों में भी ये दोष रचे गये हैं अर्थात् ये स्त्रियों के स्वाभाविक दोष हैं।

एता हि रममाणास्तु वञ्चयन्तीह मानवान्।
न चासां मुच्यते कश्चित् पुरुषो हस्तमागतः।। अनुशासन 39/5

स्त्रियाँ रमण करते हुए पुरुषों को ठगती रहती हैं। इनके हाथ में आया हुआ कोई भी पुरुष इनसे बचकर नहीं जा सकता।

गावो नवतृणानीव गृह्णन्त्येता नवं नवम्।। अनुशासन 39/6

जैसे गौएं नयी नयी घास चरती हैं वैसे ही स्त्रियाँ नये नये पुरुषों को अपनाती रहती हैं।

हसन्तं प्रहसन्त्येता रुदन्तं प्ररुदन्ति च।। अनुशासन 39/7
अप्रियं प्रियवाक्यैश्च गृह्णते कालयोगतः।

पुरुष को हँसता देखकर ये स्त्रियाँ हंसने लगती हैं। उसे रोता देख रोने लगती हैं और अवसर आने पर अप्रिय पुरुष को भी मीठी बातों से अपना बना लेती हैं।

अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः।
नयन्ति ह्यपथं नार्यः कामक्रोधवशानुगम्।। अनुशासन 48/37

इस संसार में चाहे कोई पुरुष मूर्ख हो या विद्वान, काम और क्रोध के वश में हुए पुरुष को स्त्रियाँ कुमार्ग पर ले जाती हैं।

स्वाभावश्चैव नारीणां नराणामिह दूषणम्।
अत्यर्थं न प्रसज्जन्ते प्रमदासु विपश्चितः।। अनुशासन 48/38

इस जगत् में नारियों का स्वभाव यही है कि वे पुरुषों को कलंकित कर देती हैं इसलिये समझदार पुरुष स्त्रियों में अधिक आसक्त नहीं होते।

स्त्रियश्चैव विशेषेण स्त्रीजनस्य गतिः परा।। अनु 146/10

स्त्रियां ही विशेषरूप से स्त्रियों की बातें समझती हैं।

प्रमदोक्तं तु यत् किंचित् तत् स्त्रीषु बहु मन्यते।। अनु 146/11-12 दा० पा०

स्त्री जो बात कहती है उस पर ही दूसरी स्त्रियाँ बहुत विश्वास करती हैं।

स्त्री च भूतेश सततं स्त्रियमेवानुधावति।। अनु 146/16

हे भूतनाथ! स्त्री सदा ही स्त्री की बात मानती है।

संन्यास आश्रम

अशिल्पजीवी गुणवांश्चैव नित्यं जितेन्द्रियः सर्वतो विप्रयुक्तः।
अनोकशायी लघुरल्पप्रचारश्चरन् देशानेकचरः स भिक्षुः।।

आदि 91/5

संन्यासी को किसी कला-कौशल से जीवन निर्वाह नहीं करना चाहिये। उसे शम, दम आदि गुणों का पालन करना चाहिये। सदा जितेन्द्रिय और विरक्त रहना चाहिये। उसे किसी गृहस्थ के घर में नहीं सोना चाहिये। अपनी जरूरतें कम से कम रखनी चाहियें। अकेले ही अनेक स्थानों पर भ्रमण करते रहना चाहिये। अधिक नहीं चलना चाहिये।

अनग्निरनिकेतश्चाप्यगोत्रचरणो मुनिः।
कौपीनाच्छादनं यावत् तावदिच्छेच्च चीवरम्।। आदि 91/12

जो संन्यासी अग्नि होत्र और गृह को छोड़ चुका है। जिसका अपने गोत्र और वेद के किसी चरण (शाखा) से सम्बन्ध नहीं रहा है और जो उतना ही वस्त्र चाहता है जिससे उसके ओढ़ने और लंगोट का काम चल जाये।

यावत् प्राणाभिसन्धानं तावदिच्छेच्च भोजनम्।
तथास्य वसतो ग्रामेऽरण्यं भवति पृष्ठतः।। आदि 91/13

जो संन्यासी जीवित रहने लायक भोजन करता है वह गाँव में रहता हुआ भी वनवास से भी श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करता है।

यस्तु कामान् परित्यज्य त्यक्तकर्मा जितेन्द्रियः।
आतिष्ठेच्च मुनिर्मौनं स लोके सिद्धिमाप्नुयात्।। आदि 91/14

जो मुनि समस्त इच्छाओं का परित्याग करके कर्मों का त्याग कर चुका है, जितेन्द्रिय है और मौन व्रत का पालन करता है वह संसार में पूजनीय होता है।

धौतदन्तं कृत्तनखं सदा स्नातमलंकृतम्।
असितं सितकर्माणं कस्तमर्हति नार्चितुम्।। आदि 91/15

जिसके दांत साफ रहते हैं, नाखून कटे हुए होते हैं। जो सदा स्नान करता है और यम-नियमों के पालन से अपना जीवन संवारता है। तथा सर्दी गर्मी आदि द्वन्द्व सहने से जिसका शरीर काला हो गया है ऐसा संन्यासी पूजनीय होता है।

साधु क्षमा दमः शौचं वैराग्यं चाप्यमत्सरः।
अहिंसा सत्यवचनं नित्यानि वनचारिणाम्।। शान्ति 7/6

वन में रहने वाले साधु पुरुषों के लिये क्षमा, इन्द्रिय संयम, वैराग्य, शरीर और मन की शुद्धि, ईर्ष्या का न होना, अहिंसा और सत्य बोलना सदा श्रेष्ठ काम हैं।

आपत्काले हि सन्यासः कर्तव्य इति शिष्यते।
जरयाभिपरीतेन शत्रुभिर्व्यंसितेन वा।। शान्ति 10/17

संकट आने पर, बुढ़ापे में या शत्रु द्वारा धन सम्पत्ति हड़प लेने पर संन्यास लेना चाहिये।

संन्यासः परमं तपः।। शान्ति 161/9

संन्यास सबसे बड़ी तपस्या है।

एक एव चरेद् धर्मं सिद्ध्यर्थमसहायवान्।। शान्ति 245/4

संन्यासी को सिद्धि प्राप्त करने के लिये किसी को साथ न लेकर अकेले ही संन्यास धर्म का पालन करना चाहिये।

एकश्चरति यः पश्यन् न जहाति न हीयते।
अनग्निरनिकेतश्च ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्।। शान्ति 245/5

जो आत्मतत्व का साक्षात् करता हुआ अकेले घूमता है वह न तो किसी का त्याग करता है और न ही उसे कोई छोड़ता है। संन्यासी कभी अग्नि स्थापित न करे और न ही घर बनाकर रहे। उसे भिक्षा लेने कि लिए ही गाँव में जाना चाहिये।

अश्वस्तनविधाता स्यान्मुनिर्भावसमाहितः।
लघ्वाशी नियताहारः सकृदन्ननिषेविता।। शान्ति 245/6

वह अगले दिन के लिये अन्न इकट्ठा न करे। मन को एकाग्र कर मौन रहे। हल्का और नियमित भोजन करे। दिन-रात में एक बार ही खाये।

कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता।
उपेक्षा सर्वभूतानामेतावद् भिक्षुलक्षणम्।। शान्ति 245/7

खप्पर या कमण्डलु हाथ में रखे। पेड़ के नीचे सोये। साधारण वस्त्र पहिने। किसी को साथ न रखे। सभी प्राणियों के प्रति उदासीन रहे। ये संन्यासी के लक्षण हैं।

तूष्णीमासीत निन्दायां कुर्वन् भैषज्यमात्मनः।। शान्ति 245/10

अपनी निन्दा सुनकर भी चुप रहे। इस तरह के मौन को संसार रोग से छूटने के लिये दवा समझे।

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्।
कालमेव प्रतीक्षते निदेशं भृतको यथा।। शान्ति 245/15

संन्यासी न तो जीवन का अभिनन्दन करे और न ही मृत्यु का। जैसे सेवक, स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करता है वैसे ही संन्यासी काल की प्रतीक्षा करे।

अनभ्याहतचित्तः स्यादनभ्याहतवाग् भवेत्।
निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो निरमित्रस्य किं भयम्।। शान्ति 245/16

संन्यासी अपने चित्त को राग द्वेषादि दोषों से दूषित न होने दे। वह अपनी वाणी को भी स्तुति-निन्दा के दोषों से बचाये। वह सारे पापों से मुक्त हो जाये। जो किसी का भी मित्र नहीं है उसे क्या डर।

अहिंसकः समः सत्यो धृतिमान् नियतेन्द्रियः।
शरण्यः सर्वभूतानां गतिमाप्नोत्यनुत्तमाम्।। शान्ति 245/20

जो हिंसा न करने वाला, समदर्शी, सत्यवादी, धैर्यशाली, जितेन्द्रिय और सभी प्राणियों की शरण होता है वह अत्यन्त उत्तम गति को प्राप्त होता है।

एवं प्रज्ञानतृप्तस्य निर्भयस्य निराशिषः।
न मृत्युरतिगो भावः स मृत्युमधिगच्छति।। शान्ति 245/21

जो ज्ञान से तृप्त होकर भय और कामनाओं से मुक्त हो गया है उस पर मृत्यु का वश नहीं चलता। वह स्वयं मृत्यु को लांघ जाता है।

सन्तोषमूलस्त्यागात्मा ज्ञानाधिष्ठानमुच्यते।
अपवर्गमतिर्नित्यो यतिधर्मः सनातनः।। शान्ति 270/31

सन्तोष ही जिसके सुख का मूल है। त्याग ही जिसका स्वरूप है। जो ज्ञान का आश्रय कहा जाता है। जिसमें मोक्षदायिनी बुद्धि अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्काररूप वृत्ति नित्य आवश्यक है, वह सन्यास आश्रम रूप सनातन धर्म है।

मध्यस्थ एव तिष्ठेत प्रशंसानिन्दयोः समः।
एतत् पवित्रं परमं परिव्राजक आश्रमे।। शान्ति 278/18

संन्यासी को अपनी प्रशंसा और निन्दा में समान भाव रहकर उदासीन बने रहना चाहिये। संन्यास आश्रम में ऐसा आचरण बहुत पवित्र माना जाता है।

वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां न संसृज्येत कर्हिचित्।
अज्ञातलिप्सं लिप्सेत न चैनं हर्ष आविशेत्।। शा० 278/20

संन्यासी को वानप्रस्थियों और गृहस्थियों के सम्पर्क में नहीं रहना चाहिये। अपनी रुचि या इच्छा बताये बिना उसे जो वस्तु मिल जाये वह ले लेनी चाहिये। उसे कभी बहुत प्रसन्न नहीं होना चाहिये।

विजानतां मोक्ष एष श्रमः स्यादाविजानताम्।। शान्ति 278/21

यह संन्यासाश्रम ज्ञानियों के लिये मोक्षरूप है किन्तु अज्ञानी पुरुषों के लिये परिश्रम ही है।

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यः प्रव्रजेद् गृहात्।
लोकास्तेजोमयास्तस्य तथाऽऽनन्त्याय कल्पते।। शान्ति 278/22

जो पुरुष सभी प्राणियों को अभय दान देकर सन्यास आश्रम में जाता है उसे तेजोमय लोक प्राप्त होते हैं तथा वह अनन्त परमात्मपद प्राप्त कर लेता है।

काषायधारणं मौण्ड्यं त्रिविष्टब्धं कमण्डलुम्।
लिङ्गान्युत्पथभूतानि न मोक्षायेति मे मतिः।। शान्ति 320/47

गेरुआ कपड़ा पहनना, सिर मुंडा लेना, त्रिदण्ड और कमण्डल धारण करना ये उत्कृष्ट संन्यास धर्म के चिह्न हैं। इनसे मोक्ष नहीं मिलता।

यदि सत्यपि लिङ्गेऽस्मिन् ज्ञानमेवात्र कारणम्।
निर्मोक्षायेह दुःखस्य लिङ्गमात्रं निरर्थकम्।। शान्ति 320/48

इन चिह्नों के रहते हुए भी दुःख से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय ज्ञान ही है। संन्यास के जितने भी चिह्न धारण किये जाते हैं वे सब व्यर्थ हैं।

यति धर्मास्तथा देवि गृहांस्त्यक्त्वा यतस्ततः।
आकिञ्चन्यमनारम्भः सर्वतः शौचमार्जवम्।।
सर्वत्र भैक्षचर्या च सर्वत्रैव विवासनम्।
सदा ध्यानपरत्वं च दोषशुद्धिः क्षमा दया ।
तत्त्वानुगतबुद्धित्वं तस्य धर्मविधिर्भवेत्।। अनु 141 दा० पा०

देवि ! संन्यासी के धर्म इस प्रकार हैं:- संन्यासी घर छोड़कर इधर-उधर घूमता रहे। उसे अपने पास कोई चीज इकट्ठी नहीं करनी चाहिये। उसे किसी भी काम को शुरू नहीं करना चाहिये। अपने जीवन में पवित्रता और सरलता लानी चााहिये। भीख मांगकर गुज़ारा करना चाहिये। सभी स्थानों से अलग रहना चाहिये। सदा प्रभु का ध्यान करना चाहिये। अपने सभी दोष दूर करने चाहियें। सब पर क्षमा और दया की दृष्टि रखनी चाहिये और मन को तत्त्व चिन्तन में लगाना चाहिये।

चतुर्विधा भिक्षवस्ते कुटीचकबहूदकौ।
हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात् स उत्तमः।। अनु 141/89

संन्यासी चार तरह के होते हैं-कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। इनमें क्रमशः परमहंस सर्वश्रेष्ठ संन्यासी होता है। कुटीचक वह संन्यासी होता है जो परिवार को अपने पुत्र की देखरेख में छोड़कर अकेला कुटिया में रहकर तपस्या करता है। बहूदक सन्यासी अज्ञात स्थान पर रहकर भिक्षा से निर्वाह करता है। हंस संन्यासी, कुटीचक और बहूदक से श्रेष्ठ होता है। वह परमात्म चिन्तन में लगा रहता है। परमहंस कोटि का संन्यासी अपनी इन्द्रियों को वश में करके समाधि में लीन रहता है।

सुख

सात्त्विक सुख **यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।**
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।। भीष्म 42/37

जो पहले विष और पीछे अमृत जैसा लगे वह सात्त्विक सुख होता है। यह सुख परमात्मा में लगी बुद्धि की निर्मलता या प्रसन्नता से उत्पन्न होता है।

राजसिक सुख **विषयेन्द्रियसंयोगाद् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।**
परिणामे विषमिव तत् सुखं राजसं स्मृतम्।।
भीष्म 42/38

जिसमें इन्द्रियाँ विषयों का भोग करती हुई पहले सुख मानती हैं और बाद में दुख उठाती है वह राजसिक सुख होता है।

तामसिक सुख **यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।**
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्।।
भीष्म 42/39

जिसमें पहले भी और पीछे भी केवल मोह या घबराहट ही हाथ लगे वह तामसिक सुख होता है। ऐसा सुख निद्रा, आलस्य और प्रमाद से होता है।

न ध्रुवं सुखमस्तीति कुतो राष्ट्रं कुतो यशः।। शल्य 5/31

संसार का कोई भी सुख सदा नहीं रहता फिर राज्य (राष्ट्र) और यश सदा कैसे रह सकते हैं?

सुखमेव हि दुःखान्तं कदाचित् दुःखतः सुखम्।
तस्मादेतद् द्वयं जह्याद् य इच्छेच्छाश्वतं सुखम्।। शान्ति 25/24

कभी सुख के बाद दुःख आता है और कभी दुःख के बाद सुख। यदि आप सदा सुखी रहना चाहते हैं तो सुख और दुःख दोनों को छोड़ देना चाहिये।

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाप्रियम्।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः।। शान्ति 25/26

सुख मिले या दुःख, प्रिय हो या अप्रिय। हमें जब भी जो कुछ मिले उसे स्वीकार करना चाहिये और हिम्मत नहीं हारनी चाहिये।

ये च मूढतमा लोके ये च बुद्धेः परं गताः। शान्ति 174/33
त एव सुखमेधन्ते मध्यमः क्लिश्यते जनः।। शान्ति 25/28

संसार में जो बहुत मूर्ख है या तो लोग बुद्धि से परे पहुँच गए हैं वे ही सुखी रहते हैं। साधारण लोग दुःख उठाते हैं।

नालं सुखाय सुहृदो नालं दुःखाय शत्रवः। शान्ति 174/29
न च प्रजालमर्थेभ्यो न सुखेभ्योऽप्यलं धनम्।। शान्ति 27/32

मित्र हमें सुख नहीं दे सकते। शत्रु हमें दुःख नहीं दे सकते। प्रजा, राजा को मनचाहा धन नहीं दे सकती और धन सुख नहीं दे सकता।

छायायामप्सु वायौ च सुखमुष्णेऽधिगच्छति।। शान्ति 72/22
अग्नौ वाससि सूर्ये च सुखं शीतेऽधिगच्छति।

गर्मी के मौसम में छाया, पानी और हवा अच्छी लगती है। सर्दियों में आग, कपड़े और धूप अच्छी लगती है।

पानीयं वा निरायासं स्वाद्वन्नं वा भयोत्तरम्।
विचार्य खलु पश्यामि तत्सुखं यत्र निर्वृत्तिः।। शान्ति 111/32

किसी जगह बिना किसी भय के पानी मिल जाता हो और किसी जगह स्वादिष्ट भोजन हो लेकिन उसे खाकर डर लगता रहे–इन दोनों के बारे में विचार कर मुझे यही लगता है कि जहाँ डर न हो वहीं सुख है।

सर्वस्य दयिताः प्राणाः सर्वस्य दयिताः सुताः।
दुःखादुद्विजते सर्वः सर्वस्य सुखमीप्सितम्।। शान्ति॰ 139/62

सभी को अपने प्राण और पुत्र प्यारे होते हैं। सभी प्राणी दुःख से परेशान हो उठते हैं और सभी प्राणी सुख चाहते हैं।

जात्यैवेके सुखितराः सन्त्यन्ये भृशदुःखिताः।
नैकान्तं सुखमेवेह क्वचित्पश्यामि कस्यचित्।। शान्ति 180/23

देवता आदि कुछ जाति के कारण ही सुखी हैं। कुछ लोग बहुत दुःखी हैं। परन्तु मैं किसी को ऐसा नहीं देखता जो पूरी तरह सदा सुखी हो।

तत्र दुःखविमोक्षार्थं प्रयतेत विचक्षणः।
सुखं ह्यनित्यं भूतानामिहलोके परत्र च।। शान्ति 190/7

बुद्धिमान व्यक्ति को दुःखों से छूटने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। प्राणियों को इहलोक और परलोक में जो सुख मिलता है वह सदा नहीं रहता।

परित्यजति यो दुःखं सुखं वाप्युभयं नरः।
अभ्येति ब्रह्म सोऽत्यन्तं न तं शोचन्ति पण्डिताः।। शान्ति 330/17

जो मनुष्य सुख और दुख दोनों की चिन्ता छोड़ देता है वह अक्षय ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। विद्वान् पुरुष उसके लिये शोक नहीं करते।

शब्दे स्पर्शे च रूपे च गन्धेषु च रसेषु च।
नोपभोगात् परं किंचिद् धनिनो वाधनस्य च।। शा॰ 330/26

कोई धनी हो या निर्धन सबको उपभोग करते समय ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि विषयों में कुछ सुख प्रतीत होता है उसके बाद नहीं।

प्रणयं प्रतिसंहृत्य संस्तुतेष्वितरेषु च।
विचरेदसमुन्नद्धः स सुखी स च पण्डितः।। शान्ति 330/29

जो मुनष्य पूजनीय तथा अन्य व्यक्तियों में आसक्ति हटाकर विनीत भाव से आचरण करता है वही सुखी और विद्वान होता है।

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन यश्चरेत् स सुखी भवेत्।। शा॰ 330/30

जो मनुष्य अध्यात्मज्ञान में लगा रहता है, इच्छाओं से रहित और भोगों से दूर रहता है। अकेला ही विचरण करता है। वही सुखी होता है।

अविश्वासान्न व्यसनी नातिसक्तोऽप्रवासकः।
विद्वान् सुशीलः पुरुषः सदारः सुखमश्नुते।। अनु 21/15-16 दा० पा०

जो किसी का विश्वास न करके किसी व्यसन में नहीं फंसता। कहीं भी अधिक आसक्त नहीं होता। बहुत समय तक विदेश में नहीं रहता। ऐसा विद्वान और सदाचारी पुरुष अपनी पत्नी के साथ रहकर सुख भोगता है।

सुखादेव परं दुःखं दुःखादप्यपरं सुखम्।
दृश्यते हि महाप्राज्ञ नियतं वै स्वभावतः।। अनु 120/22

हे महाप्राज्ञ! विषय भोगों के सुख में पड़े लोग दुःख झेलते हैं और तपस्या आदि दुःख देने वाले काम करने वालों को सुख मिलता है। सुख और दुःख मनुष्य के स्वभाव के अनुसार निश्चित होते हैं।

कुटुम्बपुत्रदाराश्च शरीरं धनसंचयः।
ऐश्वर्यं स्वस्थता चेति न मुह्येत तत्र पण्डितः।।

अनु 145 दा० पा० अ०XI

परिवार, सन्तान, स्त्री, शरीर, धनसम्पत्ति, विलास के साधन और अच्छा स्वास्थ्य पाकर विवेकशील पुरुष को इन वस्तुओं से लगाव नहीं रखना चाहिये।

सृष्टि-उत्पत्ति

अव्यक्त इति विख्यातः शाश्वतोऽथाक्षयोऽव्ययः।
यतः सृष्टानि भूतानि जायन्ते च म्रियन्ति च।। शान्ति 182/12

उस सनातन पुरुष को अव्यक्त (जो नहीं दीखता) कहते हैं। वह सदा रहता है, उसका नाश कभी नहीं होता और उसमें किसी तरह का परिवर्तन नहीं होता। उसी से उत्पन्न हुए सारे प्राणी जीते हैं और मरते हैं।

सोऽसृजत् प्रथमं देवो महान्तं नाम नामतः।
महान् ससर्जाहंकारं स चापि भगवानथ।। शान्ति 182/13

उस स्वयं उत्पन्न देव ने सबसे पहले महत तत्त्व (समष्टि बुद्धि) की अर्थात् सम्पूर्ण विश्व की बुद्धि की रचना की। उस महत्तत्व से अहंकार (समष्टि अहंकार) अर्थात् सारे संसार का अहंभाव (मेरापन) बनाया।

आकाशमिति विख्यातं सर्वभूतधरः प्रभुः।
आकाशादभवत् वारि सलिलादग्निमारुतौ।
अग्नि मारुत संयोगात् ततः समभवन्मही।। शान्ति 182/14

सभी प्राणियों का पालन करने वाले उस समष्टि अहंकार स्वरूप प्रभु ने शब्दतन्मात्रा रूप आकाश को उत्पन्न किया। आकाश से जल और जल से अग्नि तथा वायु बने। अग्नि और वायु के संयोग से पृथ्वी उत्पन्न हुई। वेद के अनुसार, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है।

ततस्तेजोमयं दिव्यं पद्मं सृष्टं स्वयम्भुवा।
तस्मात् पद्मात् समभवद् ब्रह्मा वेदमयोनिधिः।। शान्ति 182/15

फिर स्वयम्भू ने तेजपूर्ण दिव्य कमल उत्पन्न किया। उस कमल से ज्ञान के भण्डार स्वरूप ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

अहंकार इति ख्यातः सर्वभूतात्मभूतकृत्।
ब्रह्मा वै स महातेजा य एते पञ्च धातवः।। शान्ति 182/16

ब्रह्मा को अहंकार भी कहा जाता है। वे सभी प्राणियों के आत्मा हैं और सब प्राणियों को बनाने वाले भी हैं। जो जल, आकाश, आदि पाँच महाभूत हैं इनके रूप में ही महातेजस्वी ब्रह्मा प्रकट हुए।

शैलास्तस्यास्थिसंज्ञास्तु मेदो मांसं च मेदिनी।
समुद्रास्तस्य रुधिरमाकाशमुदरं तथा।। शान्ति 182/17

पर्वत उनकी हड्डियाँ हैं। उनका माँस और चर्बी पृथ्वी है। समुद्र उनके रक्त हैं और आकाश ब्रह्मा का पेट है।

पवनश्चैव निःश्वासस्तेजोऽग्निर्निम्नगाः शिराः।
अग्नीषोमौ तु चन्द्रार्कौ नयने तस्य विश्रुते।। शान्ति182/18

वायु उनका श्वास-प्रश्वास है। अग्नि तेज है। नदियाँ उनकी नस-नाडियाँ हैं। सूर्य और चन्द्रमा अर्थात् अग्नि और सोम उनके नेत्र हैं।

नभश्चोर्ध्वं शिरस्तस्य क्षितिः पादौ भुजौ दिशः।
दुर्विज्ञेयो ह्यचिन्त्यात्मा सिद्धैरपि न संशयः।। शान्ति 182/19

आकाश का ऊपरी भाग (द्युलोक) उनका सिर है। पृथ्वी पैर हैं, और दिशाएँ उनके हाथ हैं। उनका स्वरूप कोई नहीं जान सकता। सिद्ध पुरुष भी ऐसे ब्रह्मा के सम्पूर्ण रूप का चिन्तन नहीं कर पाते।

मानसस्येह या मूर्तिर्ब्रह्मत्वं समुपागता।
तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते।। शान्ति 182/37

प्रभु का जो मानसरूप बताया गया है वही ब्रह्मा के रूप में प्रकट हुआ है। उन ब्रह्मा के आसन के लिये पृथ्वी को ही कमल कहते हैं।

प्रजाविसर्गं विविधं मानसो मनसासृजत्।
संरक्षणार्थं भूतानां सृष्टं प्रथमतो जलम्।। शान्ति 183/2

उन मानसदेव ने अपने मन के संकल्प से ही नाना प्रकार के प्राणी बना दिये। इन प्राणियों की रक्षा के लिये उन्होंने सबसे पहले जल उत्पन्न किया।

यत् प्राणः सर्वभूतानां वर्धन्ते येन च प्रजाः।
परित्यक्ताश्च नश्यन्ति तेनेदं सर्वमावृतम्।। शान्ति 183/3

यह जल सभी प्राणियों का जीवन है। जल से ही सारे प्राणी बढ़ते हैं। जल न मिलने से प्राणी नष्ट हो जाते हैं। सम्पूर्ण जगत जल से घिरा हुआ है।

पृथिवी पर्वता मेघा मूर्तिमन्तश्च ये परे।
सर्वं तद् वारुणं ज्ञेयमापस्तस्तम्भिरे यतः।। शान्ति 183/4

पृथ्वी, पर्वत, बादल तथा दिखाई देने वाली सभी वस्तुओं को जलमय ही समझना चाहिये। क्योंकि जल ने ही इन सबको उनके रूपों में बनाया हुआ है।

पुरा स्तिमितमाकाशमनन्तमचलोपमम्।
नष्टचन्द्रार्कपवनं प्रसुप्तमिव सम्बभौ।। शान्ति 183/9

सृष्टि की उत्पत्ति से पहले अनन्त आकाश, पर्वत की तरह निश्चल था। उसमें सूर्य, चन्द्रमा और वायु भी नहीं दिखाई देती थी। सारा आकाश सोया हुआ सा लगता था।

ततः सलिलमुत्पन्नं तमसीवापरं तमः।
तस्माच्च सलिलोत्पीडादुदतिष्ठत मारुतः।। शान्ति 183/10

बाद में आकाश से जल उत्पन्न हुआ। तब ऐसा लगता था मानो अन्धकार में से दूसरा अन्धकार पैदा हो गया हो। उस जल प्रवाह से वायु उत्पन्न हुआ।

तथा सलिलसंरुद्धे नभसोऽन्ते निरन्तरे।
भित्त्वार्णवतलं वायुः समुत्पतति घोषवान्।। शान्ति 183/12

सारा आकाश, जल से इतना भर गया कि उसमें कहीं भी थोड़ी सी भी जगह

दिखाई नहीं देती थी। तब उस एकार्णव का तल भेद करके बड़ी आवाज के साथ वायु प्रकट हुई।

स एष चरते वायुरर्णवोत्पीडसम्भवः।
आकाशस्थानमासाद्य प्रशान्तिं नाधिगच्छति।। शा० 183/13

आकाशरूपी समुद्र के जल से प्रकट हुई वायु सब जगह फैलने लगी। यह वायु आकाश के किसी भी स्थान में जाकर रुकती नहीं।

तस्मिन् वाय्वम्बुसंघर्षे दीप्ततेजा महाबलः।
प्रादूरभूदूर्ध्वशिखः कृत्वा निस्तिमिरं नभः।। शान्ति 183/14

वायु और जल के संघर्ष (मन्थन) से अत्यन्त तेजोमय शक्तिशाली अग्नि प्रकट हुई जिसकी लपटें ऊपर उठ रहीं थीं। अग्नि ने आकाश का अन्धकार दूर कर दिया।

अग्निः पवनसंयुक्तः खं समाक्षिपते जलम्।
सोऽग्निमारुतसंयोगाद् घनत्वमुपपद्यते।। शान्ति 183/15

वायु और अग्नि मिलकर जल को ऊपर फेंकने लगे अग्नि और वायु के संयोग (सम्पर्क) से जल घना हो गया।

तस्याकाशे निपतितः स्नेहस्तिष्ठति योऽपरः।
स संघातत्वमापन्नो भूमित्वमनुगच्छति।। शान्ति 183/16

आकाश में गिरे हुए जल का गीलापन घना हो गया और जल का यह घना रूप पृथ्वी में बदल गया।

रसानां सर्वगन्धानां स्नेहानां प्राणिनां तथा।
भूमिर्योनिरिह ज्ञेया यस्यां सर्वं प्रसूयते।। शान्ति 183/17

यह पृथ्वी सभी तरह के रसों, गन्धों, चिकनाइयों और प्राणियों की उत्पत्ति का कारण जानना चाहिये। पृथ्वी से ही सब कुछ उत्पन्न होता है।

यथाश्वत्थकणीकायामन्तर्भूतो महाद्रुमः।
निष्पन्नो दृश्यते व्यक्तमव्यक्तात् सम्भवस्तथा।। शान्ति 211/2

जैसे पीपल के छोटे से बीज में बहुत बड़ा वृक्ष अव्यक्त (अप्रकट) रूप से समाया हुआ है जो बीज के उगने पर वृक्ष के रूप में दीखता है। वैसे ही अव्यक्त से व्यक्त जगत् उत्पन्न होता है।

अभिद्रवत्ययस्कान्तमयो निश्चेतनं यथा।
स्वभावहेतुजा भावा यद्वदन्यदपीदृशम्।। शान्ति 211/3

जैसे लोहा अचेतन या जड़ होने पर भी चुम्बक की ओर खिंच जाता है वैसे ही शरीर के उत्पन्न होने पर प्राणी के स्वाभाविक संस्कार तथा अविद्या, काम आदि दूसरे गुण उसकी ओर खिंच आते हैं।

अव्यक्तनाभं व्यक्तारं विकारपरिमण्डलम्।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं चक्रं स्निग्धाक्षं वर्तते ध्रुवम्।। शान्ति 211/8

यह जन्म-मरण का प्रवाहरूप संसार चक्र की तरह घूम रहा है। अव्यक्त उसकी नाभि है। व्यक्त (शरीर और इन्द्रियाँ आदि) उसके अरे हैं। सुख-दुःख, इच्छा-द्वेष, आदि विकार इसका घेरा है। आसक्ति धुरा है। क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) इस चक्र पर बैठ इसे चला रहा है।

स्निग्धत्वात् तिलवत् सर्वं चक्रेऽस्मिन् पीड्यते जगत्।
तिलपीडैरिवाक्रम्य भोगैरज्ञानसम्भवैः।। शान्ति 211/9

आसक्ति में फंसा होने के कारण यह सारा जगत् अज्ञान से उत्पन्न भोगों द्वारा दबोचा हुआ इस संसार चक्र में तिलों की तरह पेरा जा रहा है।

सेना

अल्पायां वा महत्यां वा सेनायामिति निश्चयः।
हर्षो योधगणस्यैको जयलक्षणमुच्यते।। भीष्म 3/75

सेना चाहे छोटी हो या बड़ी। उसके सैनिक यदि हर्ष और उत्साह से युक्त हैं तो उनकी विजय होती है।

एको दीर्णो दारयति सेनां सुमहतीमपि।
तां दीर्णामनुदीर्यन्ते योधा शूरतरा अपि।। भीष्म 3/76

यदि सेना का एक भी सैनिक उत्साहहीन हो तो वह विशाल सेना को भी उत्साह रहित बना देता है। उत्साहहीन सैनिकों को देखकर अत्यधिक वीर सैनिक भी भाग खड़े होते हैं।

दुर्निवर्त्या तदा चैव प्रभग्ना महती चमूः।
अपामिव महावेगास्त्रस्ता मृगगणा इव।। भीष्म 3/77

जब विशाल सेना में भगदड़ मच जाती है तब उसे फिर लौटना उसी प्रकार बड़ा कठिन होता है जैसे पानी की तेज धारा को या डरे हुए हरिणों को रोक पाना कठिन होता है।

उपायविजयं श्रेष्ठमाहुर्भेदेन मध्ययम्।
जघन्य एष विजयो यो युद्धेन विशाम्पते।। भीष्म 3/81

राजन्! साम-दान आदि उपायों से प्राप्त विजय श्रेष्ठ होती है। भेद की नीति से प्राप्त विजय मध्यम होती है किन्तु युद्ध में प्राप्त विजय सबसे बुरी मानी जाती है।

न बाहुल्येन सेनाया जयो भवति नित्यशः।
अध्रुवो हि जयो नाम दैवं चात्र परायणम्।। भीष्म 3/85

बड़ी सेना होने से ही सदा विजय नहीं होती। युद्ध में जीत अनिश्चित होती है। विजय में भाग्य का बहुत बड़ा हाथ होता है।

संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून्।। भीष्म 19/4

यदि शत्रु सेना छोटी हो तो अपनी सेना को छोटे आकार में संगठित करके लड़ना चाहिये। यदि शत्रु सेना बड़ी हो तो अपनी सेना फैलाकर खड़ी करनी चाहिये।

न विना नायकं सेना मुहूर्तमपि तिष्ठति।
आहवेष्वाहवश्रेष्ठ नेतृहीनेव नौर्जले।। द्रोण 5/8

युद्धभूमि के श्रेष्ठवीर! सेनापति के बिना कोई भी सेना युद्ध के मैदान में थोड़ी देर के लिये भी नहीं ठहर सकती जैसे मल्लाह के बिना नाव पानी में नहीं ठहर पाती।

सेवक

यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य।
तस्मिन् भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति न चैनमापत्सु परित्यजन्ति।।

उद्योग 37/22

तात! जो स्वामी सदा हित करने वाले अपने भक्त सेवक पर क्रोध नहीं करता ऐसे मालिक पर नौकर विश्वास करते हैं और मुसीबत में उसका साथ देते हैं।

न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन राज्यं धनं संजिघृक्षेदपूर्वम्।
त्यजन्ति ह्येनं वञ्चिता वै विरुद्धाः स्निग्धा ह्यमात्या परिहीनभोगाः।।

उद्योग 37/23

सेवकों की जीविका बन्द करके राज्य और धन का अपहरण करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये, क्योंकि अपनी जीविका छिन जाने से भोगों से रहित पहले स्नेह करने वाले मंत्री भी राजा के विरोधी हो जाते हैं और उसे छोड़ देते हैं।

अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्री।

वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः।।

उद्योग 37/25

जो सेवक, स्वामी का अभिप्राय समझकर आलस्य छोड़कर सारे काम करता है, हितकारी बात कहता है। स्वामी भक्त तथा सज्जन है और राजा की शक्ति को जानता है। ऐसे सेवक को अपना ही समझकर उस पर कृपा करनी चाहिये।

वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः।

प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी त्याज्यः स तादृक् त्वरयैव भृत्यः।।

उद्योग 37/26

जो स्वामी का कहना नहीं मानता, किसी काम को करने से मना कर देता है, अपनी बुद्धि पर गर्व करता है और पलट कर जवाब देता है ऐसे नौकर को जल्दी से जल्दी छोड़ देना चाहिये।

भृत्येभ्यो विसृजेदर्थान् नैकः सर्वहरो भवेत्।। उद्योग 38/27

सेवकों को पर्याप्त धन देना चाहिये। अकेले ही सारा धन नहीं ले लेना चाहिये।

स्वप्न

इन्द्रियाणां श्रमात् स्वप्नमाहुः सर्वगतं बुधाः।

मनसस्त्वप्रलीनत्वात् तत् तदाहुर्निदर्शनम्।। शान्ति 216/6

बुद्धिमान पुरुषों का कहना है कि जागते हुए आँख, कान आदि इन्द्रियाँ लगातार शब्द, रूप, रस आदि विषयों को ग्रहण करती रहने से जब थक जाती हैं तब सभी प्राणियों को अनुभव होने वाला स्वप्न दिखाई देने लगता है। सोते समय इन्द्रियों के सो जाने पर भी मन का लय नहीं होता अर्थात् मन नहीं सोता। इसलिये वह विषयों का जैसा अनुभव करता है वही स्वप्न कहलाता है।

संस्काराणामसंख्यानां कामात्मा तदवाप्नुयात्।
मनस्यन्तर्हितं सर्वं स वेदोत्तमपूरुषः।। शान्ति 216/8

जिसका मन कामनाओं में लगा रहता है वह अपने मन में पड़े असंख्यों संस्कारों के कारण अनेक दृश्य देखता है। ये सारे संस्कार उसके मन में ही छिपे रहते हैं जिन्हें वह अन्तर्यामी परम पुरुष जानता है।

प्रसन्नैरिन्द्रियैर्यद् यत् संकल्पयति मानसम्।
तत् तत् स्वप्नेऽप्युपगते मनोहृष्यन्निरीक्षते।। शा० 216/12

मनुष्य जागते हुए स्वस्थ इन्द्रियों से अपने मन में जो संकल्प करता है। स्वप्नावस्था में उसका मन उन संकल्पों को पूरा होते हुए प्रसन्नतापूर्वक देखता है।

व्यापकं सर्वभूतेषु वर्ततेऽप्रतिघं मनः।
आत्मप्रभावात् विद्यात् सर्वा ह्यात्मनि देवताः।। शा० 216/13

मन की सब जगह बेरोकटोक गति है। वह अपनी आत्मा के प्रभाव से सम्पूर्ण प्राणियों में व्याप्त हैं। अतः आत्मा को जानना चाहिये क्योंकि आत्मा में सारे देवता प्रतिष्ठित हैं।

इन्द्रियाणां व्युपरमे मनोऽव्युपरतं यदि।
सेवते विषायानेव तं विद्यात् स्वप्नदर्शनम्।। शान्ति 275/24

इन्द्रियों के शान्त हो जाने पर यदि मन विषयों से न हटकर विषयों के बारे में ही सोचता रहता है तो मन की यह अवस्था स्वप्न देखने के समय होती है।

सुप्तानां हि मनश्चेष्टा स्वप्न इत्यभिधीयते।
अनागतमतिक्रान्तं पश्यते संचरन्मनः।। अनु 145 दा० पा० अ०IX

सोये हुए प्राणियों का मन सोते समय भी जागता रहता है सोने के समय होने वाली मन की चेष्ट्या स्वप्न कहलाती है। स्वप्न में विचरता हुआ मन गुजरी हुई और होने वाली घटनाओं को देखता है।

स्वभाव

अथवा जायमानस्य यच्छीलमनुजायते।
श्रूयते तन्महाराज नामृतस्यापसर्पति।। वन 8/11

महाराज! ऐसा सुनते हैं कि जन्म के समय जिसका जैसा स्वभाव बन जाता है वह नहीं बदलता चाहे वह वस्तु अमृत ही क्यों न हो।

यादृशः पुरुषस्यात्मा तादृशं सम्प्रभाषते।। उद्योग 3/1

मनुष्य का जैसा स्वभाव होता है वह वैसी ही बात कहता है।

सम्पन्नं गोषु सम्भाव्यं सम्भाव्यं ब्राह्मणे तपः।
सम्भाव्यं चापलं स्त्रीषु सम्भाव्यं ज्ञातितो भयम्।। उद्योग 36/58

जैसे गोओं में दूध, ब्राह्मणों में तप, युवती स्त्रियों में चपलता होने की सम्भावना है वैसे ही अपने सम्बन्धियों से भय होने की सम्भावना बनी रहती है।

सर्वो विमृशते जन्तुः कृच्छ्रस्थो धर्मदर्शनम्।
पदस्थः पिहितं द्वारं परलोकस्य पश्यति।। शल्य 32/59

सभी प्राणी संकट में पड़ने पर अपने को बचाने के लिये धर्म की दुहाई देने लगते हैं किन्तु ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित होने पर उन्हें परलोक का दरवाजा बन्द दिखाई देता है।

श्रेयसः श्रेयसोऽप्येवं वृत्तं लोकोऽनुवर्तते।
सदैव हि गुरोर्वृत्तमनुवर्तन्ति मानवाः।। शान्ति 267/26

अच्छे राजा के सद्व्यवहार का सब लोग अनुकरण करते हैं। मनुष्य, स्वभाव से ही बड़ों के आचरण का सदा अनुकरण करते हैं।

स्वर्ग

सर्वभूतदयावन्तो विश्वास्याः सर्वजन्तुषु।। अनु 144/9
त्यक्तहिंसासमाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः।

सभी जीव जन्तुओं पर दया करने वाले, सभी प्राणियों के विश्वासपात्र और कभी भी हिंसा न करने वाले लोगों को स्वर्ग मिलता है।

परस्वे निर्ममो नित्यं परदारविवर्जकाः।। अनु 144/10
धर्मलब्धान्नभोक्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः।

दूसरों का धन न चाहने वाले, पराई स्त्रियों से दूर रहने वाले और उचित ढंग से प्राप्त अन्न से पेट भरने वाले लोगों को स्वर्ग मिलता है।

मातृवत् स्वसृवच्चैव नित्यं दुहितृवच्च ये।। अनु 144/11
परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः।

जो लोग पराई स्त्रियों के साथ माता, बहिन या बेटी जैसा बर्ताव करते हैं उन्हें स्वर्ग मिलता है।

स्तैन्यान्निवृत्ताः सततं संतुष्टाः स्वधनेन च।। अनु 144/12
स्वभाग्यान्युपजीवन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः।

कभी भी चोरी न करने वाले, अपने धन से सदा सन्तुष्ट रहने वाले और अपने भाग्य के भरोसे रहने वाले लोगों को स्वर्ग का सुख मिलता है।

दानधर्मतपोयुक्तः शीलशौचदयात्मकः।। अनु 144/16
वृत्यर्थं धर्महेतोर्वा सेवितव्यः सदा नरैः।
स्वर्गवासमभीप्सद्भिर्न सेव्यस्त्वत उत्तरः।। अनु 144/17

मनुष्यों को दान, धर्म, तपस्या से युक्त तथा चरित्र, पवित्रता और दया से पूर्ण इस रास्ते को अपनी जीविका के लिये या धर्म का पालन करने के लिये सदा अपनाना चाहिये। स्वर्ग में निवास करने की इच्छा वाले मनुष्यों के लिये इस से बढ़कर और कोई अच्छा मार्ग नहीं है।

आत्महेतोः परार्थे वा नर्म हास्याश्रयात् तथा।
ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः।। अनु 144/19

जो लोग अपने या किसी और के लिये अथवा हँसी-मजाक में भी कभी झूठ नहीं बोलते उन्हें स्वर्ग प्राप्त होता है।

श्लक्ष्णां वाणीं निराबाधां मधुरां पापवर्जिताम्।
स्वागतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः।। अनु 144/20

जो लोग प्रिय, मधुर, संकोचरहित, पापरहित और स्वागत सत्कार के भाव से युक्त वाणी बोलते हैं उन्हें स्वर्ग मिलता है।

पिशुनां न प्रभाषन्ते मित्रभेदकरीं गिरम्।
ऋतं मैत्रं तु भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः।। अनु 144/23

जो लोग मित्रों में फूट डालने वाली चुगलखोरी नहीं करते अपितु सच्ची और मित्रतापूर्ण बातें कहते हैं उन्हें स्वर्ग मिलता है।

शठप्रलापाद् विरता विरुद्धपरिवर्जकाः।
सौम्यप्रलापिनो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः।। अनु 144/25

जो दुष्टता से भरी बातें और परस्पर विरोधी बातें नहीं बोलते और सदा कोमल वाणी बोलते हैं वे स्वर्ग में जाते हैं।

न कोपाद् व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारणीम्।
सान्त्वं वदन्ति क्रुद्धाऽपि ते नराः स्वर्गगामिनः।। अनु 144/26

जो क्रोध आने पर भी हृदय को चुभने वाली बात नहीं कहते और नाराज होने पर भी शान्तिपूर्ण बात कहते हैं उन्हें स्वर्ग प्राप्त होता है।

ग्रामे गृहे वा ये द्रव्यं पारक्यं विजने स्थितम्।
नाभिनन्दन्ति वै नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः।। अनु 144/32

जो लोग गाँव में, घर में या एकान्त में पड़े पराये धन को देखकर कभी नहीं ललचाते वे स्वर्ग में जाते हैं।

तथैव परदारान् ये कामवृत्तान् रहोगतान्।
मनसापि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः।। अनु 144/33

जो मनुष्य एकान्त में प्राप्त कामासक्त पराई स्त्रियों के साथ मन से भी अन्याय करने की नहीं सोचते वे स्वर्ग में जाते हैं।

श्रद्धावन्तो दयावन्तश्चोक्षाश्चोक्षजनप्रियाः।
धर्माधर्मविदो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः।। अनु 144/37

श्रद्धालु, दयालु, पवित्र आचरण वाले और पवित्र आचार-व्यवहार के लोगों को चाहने वाले तथा धर्म और अधर्म को सदा समझने वाले लोग स्वर्ग में जाते हैं।

न्यायोपेता गुणोपेता देवद्विजपराः सदा।
समुत्थानमनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः।। अनु 144/39

न्यायशील, गुणवान, सज्जनों और ब्राह्मणों के साथी तथा उन्नति करने वाले लोग स्वर्ग में जाते हैं।

निरयं याति हिंसात्मा याति स्वर्गमहिंसकः।। अनु 144/53

हिंसा करने वाला मनुष्य नरक में जाता है और अहिंसक मनुष्य को स्वर्ग मिलता है।

स्वर्गद्वारं सुसूक्ष्मं हि नरैर्मोहान्न दृश्यते।। आश्व 90/94

स्वर्ग का द्वार बहुत संकरा है। मोह में फंसने के कारण मनुष्य उसे नहीं देख पाते हैं।

स्वर्गार्गलं लोभबीजं रागगुप्तं दुरासदम्।
तं तु पश्यन्ति पुरुषा जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।। आश्व 90/95

स्वर्ग के द्वार की सांकल लोभ से बनी हुई है। स्वर्गद्वार, राग के कारण दिखाई नहीं देता। इसमें प्रवेश करना बहुत कठिन है, किन्तु जिन्होंने क्रोध को जीत लिया है और इन्द्रियों को वश में कर लिया है वे स्वर्ग का द्वार देख लेते है।

क्रोधाद् दानफलं हन्ति लोभात् स्वर्गं न गच्छति।। आश्व 90/102
न्यायवृत्तिर्हि तपसा दानवित् स्वर्गमश्नुते।

मनुष्य क्रोध से अपने दान का फल नष्ट कर देता है। वह लोभ के कारण स्वर्ग नहीं जा पाता है। न्यायपूर्वक कमाये हुए धन से निर्वाह करने वाला और दान का महत्त्व जानने वाला मनुष्य तपस्या के द्वारा स्वर्ग को पाता है।

दानेन तपसा चैव सत्येन च दमेन च।
ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः।। आश्व 92 दा० पा० अ XI

दान, तपस्या, सत्य और इन्द्रियसंयम के द्वारा जो लोग धर्म का पालन करते हैं उन्हें स्वर्ग मिलता है।

शुश्रूषयाप्युपाध्यायाच्छ्रुतमादाय पाण्डव।
ये प्रतिग्रहनिस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः।। आश्व 92 दा० पा० अ XI

हे पाण्डव! जो शिष्य, गुरु की सेवा करके उनसे वेद आदि शास्त्र पढ़ते हैं और गुरु की सेवा के बदले कुछ नहीं चाहते उन्हें स्वर्ग मिलता है।

मधुमांसासवेभ्यस्तु निवृत्ता व्रतिनस्तु ये।
परदारनिवृत्ता ये ते नराः स्वर्गगामिनः।। आश्व 92 दा० पा० अ XI

जो लोक मधु, मांस, शराब को हाथ नहीं लगाते। व्रतों का पालन करते हैं और परायी स्त्री के पास नहीं जाते उन्हें स्वर्ग मिलता है।

मातरं पितरं चैव शुश्रूषन्ति च ये नराः।
भ्रातॄणामपि सस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः।। आश्व 92 दा० पा० अ XI

जो लोग माता-पिता की सेवा करते हैं और भाइयों से स्नेह सम्बन्ध बनाये रखते हैं वे स्वर्ग लोक प्राप्त करते हैं।

वैवाहिकं तु कन्यानां दरिद्राणां च ये नराः।
कारयन्ति च कुर्वन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः।। आश्व 92 दा० पा० अ XI

जो लोग गरीब लड़कियों का विवाह कराते हैं या ऐसी लड़कियों से स्वयं विवाह करते हैं वे स्वर्ग जाते हैं।

स्वार्थ

स्वार्थो हि बलवत्तरः।। शान्ति 138/142

स्वार्थ-अपना मतलब-ही सबसे अधिक बलवान है।

अर्थयुक्त्या हि जायन्ते पिता माता सुतस्तथा।। शान्ति 138/145
मातुला भागिनेयाश्च तथा सम्बन्धिबान्धवाः।

माता-पिता, पुत्र, मामा-भानजे तथा बन्धु-बान्धवों में स्वार्थ के कारण ही स्नेह होता है।

पुत्रं हि मातापितरौ त्यजतः पतितं प्रियम्।। शान्ति 138/146
लोको रक्षति चात्मानं पश्य स्वार्थस्य सारताम्।

माता-पिता अपने प्यारे पुत्र को भी छोड़ देते हैं यदि वह पतित हो जाता है। सभी लोग अपने को बचाना चाहते हैं। संसार में स्वार्थ ही चलता है।

कारणात् प्रियतामेति द्वेष्यो भवति कारणात्।। शान्ति 138/151

मनुष्य किसी कारण या स्वार्थ से ही प्रिय या अप्रिय बन जाता है।

अर्थार्थी जीवलोकोऽयं न कश्चित् कस्यचित् प्रियः।
सख्यं सोदर्ययोर्भ्रात्रोर्दम्पत्योर्वा परस्परम्।। शान्ति 138/152
कस्यचिन्नाभिजानामि प्रीतिं निष्कारणमिह।

यह मनुष्य-संसार मतलब का ही साथी है। कोई किसी का प्यारा नहीं है। सगे भाइयों और पति-पत्नी में भी आपस में प्रेम स्वार्थ के कारण ही होता है। किसी के बीच भी प्रेम बिना मतलब नहीं होता।

यद्यपि भ्रातरः क्रुद्धा भार्या वा कारणान्तरे।। शान्ति 138/153
स्वभावतस्ते प्रीयन्ते नेतरः प्रीयते जनः।

कभी-कभी किसी कारण से भाई आपस में नाराज हो जाते है और पत्नी भी रूठ जाती है किन्तु अपने स्वभाव से वे एक दूसरे को जैसा प्रेम करते हैं वैसा प्रेम दूसरा कोई नहीं करता।

प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः।। शान्ति 138/154
मन्त्र होमजपैरन्यः कार्यार्थं प्रीयते जनः।

कोई दान देने से प्रिय लगता है तो कोई मीठा बोलने से। कोई अपना काम सफल बनाने के लिये यज्ञ और जप करने से प्रिय बनता है।

कालो हेतुं विकुरुते स्वार्थस्तमनुवर्तते।। शान्ति 138/157

समय से किसी कारण का स्वरूप बदल जाता है और स्वार्थ, उस समय के और स्वरूप के पीछे चलता है।

संकल्पजो मित्रवर्गो ज्ञातयः कारणात्मकाः।
भार्या पुत्रश्च दासश्च स्वमर्थमनुयुज्यते।। शान्ति 298/38

लोग किसी न किसी काम के लिये ही मित्रता करते हैं। सम्बन्धी भी किसी कारण से सम्बन्ध रखते हैं। स्त्री, पुत्र और सेवक भी अपने-अपने मतलब से सम्बन्ध बनाये रखते हैं।

हाथ

पाणिमद्भ्यः स्पृहास्माकं यथा तव धनस्य वै।
न पाणिलाभादधिको लाभः कश्चन विद्यते।। शान्ति 180/12

जैसे आप धन चाहते हैं वैसे ही पशु हाथ चाहते हैं। हाथ मिलने से बढ़कर और कोई लाभ इस संसार में नहीं है।

अथ येषां पुनः पाणी देवदत्तौ दशाङ्गुली।
उद्धरन्ति कृमीनङ्गाद् दशतो निकषन्ति च।। शान्ति 180/14

जिनके पास भगवान के दिये हुए दस अंगुलियों वाले दो हाथ हैं वे अपने अंगों से उन कीड़ों को हटा देते हैं या नष्ट कर देते हैं जो उन्हें डंसते हैं।

वर्षाहिमातपानां च परित्राणानि कुर्वते।
चैलमन्नं सुखं शय्यां निवातं चोपभुञ्जते।। शान्ति 180/15

दो हाथों वाले वर्षा, सर्दी और गर्मी से अपने को बचा लेते हैं। वे कपड़ा पहनते हैं, अन्न खाते हैं, सुख से सोते हैं और एकान्त में रहते हैं।

अधिष्ठाय च च गां लोके भुञ्जते वाहयन्ति च।
उपायैर्बहुभिश्चैव वश्यानात्मनि कुर्वते।। शान्ति 180/16

हाथों वाले मनुष्य बैलगाड़ी में चढ़कर बैलों को हांकते हैं और उनसे काम लेते हैं। अपने हाथों से तरह-तरह के उपाय करके पशुओं आदि को अपने वश में कर लेते हैं।

ये खल्वजिह्वाः कृपणा अल्प्राणा अपाणयः।
सहन्ते तानि दुःखानि दिष्ट्या त्वं न तथा मुने।। शान्ति 180/17

जो दुःख बिना हाथों वाले बेजुबान, दीन और दुर्बल प्राणी सहते हैं हे मुनि! सौभाग्यवश आपको वे दुःख नहीं झेलने पड़ते।

पाणिमन्तो बलवन्तो धनवन्तो न संशयः।
मनुष्या मानुषैरेव दासत्वमुपादिताः।। शान्ति 180/34

हाथों वाले निःसंदेह बलवान और धनवान हैं। मनुष्यों ने ही मनुष्यों को दास बना रखा है।

हिंसा

नाच्छित्त्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दुष्करम्।
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम्।। शान्ति 15/14

कोई भी व्यक्ति दूसरे लोगों के मर्मस्थलों को चोट पहुँचाये बिना, कठिन काम किये बिना और मछुआरे की तरह किसी को मारे बिना बहुत धन-सम्पत्ति नहीं पा सकता।

न हि पश्यामि जीवन्तं लोके कञ्चिदहिंसया।
सत्त्वैः सत्त्वा हि जीवन्ति दुर्बलैर्बलवत्तराः।। शान्ति 15/20

मैं इस संसार में ऐसे किसी पुरुष को नहीं देखता जो अहिंसा से जीवन बिताता हो। बलवान प्राणी कमजोर प्राणियों को मार कर जीते रहते हैं।

नकुलो मूषिकानत्ति बिडालो नकुलं तथा।
बिडालमत्ति श्वा राजञ्श्वानं व्यालमृगस्तथा।। शान्ति 15/21

राजन्! नेवला, चूहे को खा जाता है। बिल्ली, नेवले को खा जाती है। कुत्ता, बिल्ली को खा जाता है और चीता कुत्ते को खा जाता है।

उदके बहवः प्राणाः पृथिव्यां च फलेषु च।
न च कश्चिन्न तान् हन्ति किमन्यत् प्राणयापनात्।। शान्ति 15/25

पानी में अनेक जीव-जन्तु होते हैं पृथिवी पर और फलों में भी बहुत से कीड़े होते हैं। ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो इन्हें न मारता हो। मनुष्य यह सब जीवित रहने के लिये ही करता है।

सूक्ष्मयोनीनि भूतानि तर्कगम्यानि कानिचित्।
पक्ष्मणोऽपि निपातेन येषां स्यात् स्कन्धपर्ययः।। शान्ति 15/26

संसार में अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीव हैं। इनमें से कुछ के बारे में तो अनुमान से ही पता चलता है। ये जीव इतने छोटे हैं कि हमारी पलक झपकने से भी ये मर जाते हैं।

अन्यत्र राजन् हिंसाया वृत्तिर्नेहास्ति कस्यचित्।
अप्यरण्यसमुत्थस्य एकस्य चरतो मुनेः।। शान्ति 130/28

राजन्! इस संसार में ऐसी कोई भी जीविका नहीं है जो हिंसा से रहित हो। वन में अकेले रहने वाले मुनि की वृत्ति भी हिंसारहित नहीं है।

परासुता क्रोधलोभादभ्यासाच्च प्रवर्तते।। शा० 163/9
दयया सर्वभूतानां निर्वेदात् सा निवर्तते।
अवद्यदर्शनादेति तत्त्व ज्ञानाच्च धीमताम्।। शान्ति 163/10

दूसरों को मारने की इच्छा; क्रोध, लोभ और अभ्यास से पैदा होती है। सभी प्राणियों पर दया करने से और वैराग्य से हिंसा की वृत्ति नष्ट हो जाती है। दूसरों के दोष देखने से हिंसा मन में आती है और बुद्धिमानों के तत्त्वज्ञान से नष्ट हो जाती है।

अव्यवस्थितमर्यादैर्विमूढैर्नास्तिकैर्नरैः ।
संशयात्मभिरव्यक्तैर्हिंसा समनुवर्णिता।। शान्ति 265/4

जो लोग धर्म की मर्यादा से भ्रष्ट हो चुके हैं, मूर्ख हैं, नास्तिक हैं तथा जिन्हें आत्मा के सम्बन्ध में सन्देह हैं उन लोगों ने ही हिंसा का समर्थन किया है।

न हिंस्यात् सर्वभूतानि मैत्रायणगतश्चरेत्।
नेदं जन्म समासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित्।। शान्ति 329/18

किसी भी प्राणी को नहीं मारना चाहिये। सभी के साथ मित्रता की भावना रखनी चाहिये और यह मनुष्य जन्म पाकर किसी से वैर नहीं करना चाहिये।

अहिंसकानि भूतानि दण्डेन विनिहन्ति यः।
आत्मनः सुखमन्विच्छन् स प्रेत्य न सुखी भवेत्।। अनु 113/5

जो मनुष्य अपने सुख के लिये गाय आदि अहिंसक प्राणियों को डण्डे से मारता है वह अगले जन्म में सुख नहीं भोगता।

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति।
नारदः प्राह धर्मात्मा नियतं सोऽवसीदति।। अनु 115/12

धर्मात्मा नारद जी का कहना है कि जो मनुष्य दूसरे प्राणियों के मांस से अपने शरीर का मांस बढ़ाना चाहता है वह दुःख पाता है।

हितकारी बात

लभ्यते खलु पापीयान् नरो नु प्रियवागिह।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।। सभा 64/16

हमें सदा अच्छी लगने वाली बात कहने वाला पापी मनुष्य तो मिल जाता है किन्तु अप्रिय और हितकारी बात बोलने वाला और उसे सुनने वाला नहीं मिलता है।

यस्तु धर्मपरश्च स्याद्धित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान्।। सभा 64/17

जो व्यक्ति धर्म की मर्यादा में रहकर स्वामी को अच्छी या बुरी लगने वाली बात की अनदेखी कर हितकारी किन्तु अप्रिय बात कहता है वही वास्तक में राजा का सच्चा साथी होता है।

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम्।
अपृष्टस्तस्य तद् ब्रूयाद् यस्य नेच्छेत् पराभवम्।। उद्योग 34/4

मनुष्य को चाहिये कि वह जिसकी हार न चाहता हो उसको बिना पूछे भी अच्छी या बुरी, कल्याणकारी या अनिष्टकारी जो भी बात हो बता देनी चाहिये।

सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः।
संचिन्वन् धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा।। उद्योग 34/33

अनाज का सिल्ला बीनकर पेट भरने वाला जैसे अनाज इकट्ठा करता है वैसे ही धीर पुरुष को जहाँ तहाँ से अच्छी बातों और सत्कर्मों का संग्रह करना चाहिये।

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।। उद्योग 37/15

राजन्! सदा प्रिय बोलने वाले व्यक्ति तो आसानी से मिल जाते हैं किन्तु अप्रिय होने पर भी हितकारी बात को कहने वाला और इस सुनने वाला नहीं मिलता।

यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान्।। उद्योग 37/16

जो धर्म का सहारा लेकर और स्वामी को अच्छा या बुरा लगने का विचार छोड़कर अप्रिय किन्तु हितकारी बात कहता है वही राजा का सहायक होता है।

संनियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोध हर्षयोः।
स श्रियो भाजनं राजन् यश्चापत्सु न मुह्यति।। उद्योग 37/51

राजन्! जो क्रोध और प्रसन्नता के वेग को रोक लेता है तथा विपत्तियों में नहीं घबराता है उसे ही लक्ष्मी प्राप्त होती है।

सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः।। उद्योग 37/57

भारत! साँप, आग, शेर और अपने कुल में उत्पन्न व्यक्ति का अनादर या उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ये सब अत्यधिक तेजस्वी होते हैं।

अनीर्षुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः।
श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत्।। उद्योग 38/10

मनुष्य को ईर्ष्यारहित, स्त्रियों का रक्षक, सम्पत्ति का उचित बंटवारा करने वाला, प्रिय बोलने वाला, स्वच्छ, स्त्रियों से मीठा बोलने वाला किन्तु उनके वश में न आने वाला होना चाहिये।

न वृद्धिर्बहु मन्तव्यो या वृद्धिः क्षयमावहेत्।
क्षयोऽपि बहुमन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत्।। उद्योग 39/6

जिस वृद्धि से भविष्य में नाश हो वह वृद्धि नहीं होती। किन्तु जिस नाश से भविष्य में समृद्धि हो वह नाश आदर योग्य होता है।

येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा।
आदावेव न तत् कुर्यादध्रुवे जीविते सति।। उद्योग 39/29

जिस काम से खाट पर बैठकर पीछे पछताना पड़े वैसा काम शुरू में ही नहीं करना चाहिये क्योंकि जीवन का कोई ठिकाना नहीं।

सुव्याहृतानि धीराणां फलतः परिचिन्त्य यः।
अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यशसि तिष्ठति।। उद्योग 39/33

जो धीर मनुष्यों की अच्छी बातों के परिणामों पर अच्छी तरह विचार करके काम शुरू करता है उसे देर तक यश मिलता है।

प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबन्धुं विद्यावृद्धं वयसा चापिवृद्धम्।
कार्याकार्ये पूजयित्वा प्रसाद्य यः सम्पृच्छेन्न स मुह्येत् कदाचित्।।
उद्योग 40/23

जो व्यक्ति बुद्धि, धर्म, विद्या और आयु में बड़े और अपने बन्धु को सत्कार से प्रसन्न करके कर्तव्य या अकर्तव्य के बारे में पूछता है वह भटकता नहीं है।

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा।
चक्षुः श्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा।। उद्योग 40/24

शिश्न और पेट की धैर्य रखकर रक्षा करे अर्थात् काम वेग को और भूख को धैर्यपूर्वक सहे। हाथ-पैर की आँखों से रक्षा करे। आँख और कान पर मन से काबू करे और मन तथा वाणी की सत्कर्मों से रक्षा करे।

यत्र सूक्तं दुरुक्तं च समं स्यान्मधुसूदन।
न तत्र प्रलपेत् प्राज्ञो बधिरेष्विव गायनः।। उद्योग 92/13

मधुसूदन! जहां भली और बुरी बात का एक जैसा परिणाम हो वहाँ बुद्धिमान को कुछ नहीं कहना चाहिये। उसकी बात तो बहरे के आगे गाने की तरह व्यर्थ होगी।

न कर्तव्यश्च निर्बन्धो निर्बन्धो हि सुदारुणः।। उद्योग 106/6

हठ या दुराग्रह नहीं करना चाहिये क्योंकि हठ का परिणाम अच्छा नहीं होता।

य आत्मनो दुश्चरितादशुभं प्राप्नुयान्नरः।
न स कालं न वा देवानेनसा गन्तुमर्हति।। उद्योग 159/9

जो मनुष्य अपने बुरे आचरण से संकट में पड़ता है उसे काल को या देवताओं को दोष नहीं देना चाहिये।

यो यथा वर्तते यस्मिंस्तस्मिन्नेव प्रवर्तयन्।
नधर्मं समवाप्नोति न चाश्रेयश्च विन्दति।। उद्योग 178/53

जो जैसा व्यवहार करता है उसके साथ वैसा ही बर्ताव करने पर अधर्म नहीं होता और न ही इसमें कोई बुराई होती है।

य आत्मनो दुश्चरितादशुभं प्राप्नुयान्नरः।
एनसा तेन नान्यं स उपाशङ्कितुमर्हति।। भीष्म 15/2

जो मनुष्य अपने बुरे आचरण के कारण दुःख भोग रहा हो उसे अपने दुष्कर्मों और पापकर्मों का दोष दूसरे को नहीं देना चाहिये।

योऽवमन्य वचः पथ्यं सुहृदामाप्तकारिणाम्।
स्वमतं कुरुते मूढ स शोच्यो नचिरादिव।। द्रोण 151/14

जो मूर्ख अपने हितैषी मित्रों की हितकारी बात न सुनकर मनमानी करता है वह जल्दी ही पछताता है।

मारुतोदकवेगेन ये नमन्त्युन्नमन्ति च।
ओषध्यः पादपा गुल्मा न ते यान्ति पराभवम्।। शान्ति 113/11

जो ओषधियों के वृक्ष, पौधे और लता-झाड़ियाँ आदि हवा और पानी के वेग से झुक जाते हैं और फिर सीधे हो जाते हैं वे नष्ट नहीं होते।

एवमेव यदा विद्वान् मन्यतेऽतिबलं रिपुम्।
संश्रयेद् वैतसीं वृत्तिमेतत् प्रज्ञान लक्षणम्।। शान्ति 113/14

इसी प्रकार जब बुद्धिमान राजा यह समझे कि उसका शत्रु बहुत बलवान है तब उसे नदी के किनारे खड़े बेंत की तरह झुक जाना चाहिये। इसी में बुद्धिमानी है।

माता पिता बान्धवानां वरिष्ठौ भार्या जरा बीजमात्रं तु पुत्रः।

भ्राता शत्रुः क्लिन्नपाणिर्वयस्यः आत्मा ह्येकः सुखदुःखस्य भोक्ता।।

शा० 139/30

माता-पिता स्वाभाविक स्नेह के कारण सभी सम्बन्धियों से अच्छे हैं। पत्नी वीर्य का नाश करने वाली होती है अतः वह वृद्धावस्था ही है। पुत्र अपना ही अंग है। भाई सम्पत्ति में हिस्सेदार होने के कारण शत्रु माना जाता है। मित्र तभी तक मित्र रहता है जब तक उसे कुछ मिलता रहता है। केवल आत्मा ही सुख और दुःख का भोग करता है।

आशा बलवती राजन् नैराश्यं परमं सुखम्।
आशां निराशां कृत्वा तु सुखं स्वपिति पिङ्गला।। शान्ति 178/8

आशा बड़ी बलवती होती है। मन में किसी तरह की आशा न होने पर बहुत सुख मिलता है। पिंगला वेश्या को जब तक अपने प्रेमी के आने की आशा बनी रही वह दुःखी होती रही। प्रेमी के आने की आशा त्याग कर वह चैन की नींद सो गई।

सामिषं कुररं दृष्ट्वा वध्यमानं निरामिषैः।
आमिषस्य परित्यागात् कुररः सुखमेधते।। शान्ति 178/9

क्रौञ्च पक्षी को चोंच में माँस का टुकड़ा लिये उड़ता देख दूसरे पक्षी उसे मारने लगे, क्योंकि उनके पास माँस नहीं था। यह देख क्रौञ्च ने माँस का टुकड़ा फेंक दिया और मांस त्याग कर वह सुखी हो गया।

गृहारम्भो हि दुःखाय न सुखाय कदाचन।
सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते।। शान्ति 178/10

घर बनाने के झंझट में पड़ने से दुःख ही मिलता है सुख नहीं। इसीलिये साँप दूसरे के बिल में आराम से रहता है।

सुखं जीवन्ति मुनयो भैक्ष्यवृत्तिं समाश्रिताः।
अद्रोहेणैव भूतानां सारङ्गा इव पक्षिणः।। शान्ति 178/11

जैसे पपीहा पक्षी किसी भी प्राणी से वैर न करके मांग कर पेट भरता है वैसे ही भिक्षा से पेट भरने वाले मुनि सुख से जीते हैं।

इषुकारो नरः कश्चिदिष्वासक्त मानसः।
समीपेनापि गच्छन्तं राजानं नावबुद्धवान्।। शान्ति 178/12

कोई बाण बनाने वाला बाण बनाने में इतना दत्तचित्त था कि उसे पास से निकलती राजा की सवारी का भी पता नहीं चला।

बहूनां कलहो नित्यं द्वयोः संकथनं ध्रुवम्।
एकाकी विचरिष्यामि कुमारी शंखको यथा।। शान्ति 178/13

कई मनुष्य साथ रहें तो उनमें रोज लड़ाई झगड़ा होता है। दो के साथ रहने पर भी बातचीत होती ही है। इसलिये मैं शंख की एक चूड़ी पहने हुई कुमारी कन्या की तरह अकेला रहूँगा।

उपरोक्त श्लोकों में पिंगला वेश्या के उदाहरण से किसी से कोई आशा न करने, क्रौञ्च पक्षी से भोगों का त्याग करने, साँप से घर बार के झण्झट में न पड़ने, पपीहे से किसी से वैर न करने, बाण बनाने वाले से एकाग्रचित्त रहने और कुमारी कन्या के उदाहरण से अकेले रहने की शिक्षा दी गई है।

अप्राशनमसंस्पर्शमसंदर्शनमेव च।
पुरुषस्यैष नियमो मन्ये श्रेयो न संशयः।। शान्ति 180/33

किसी वस्तु को न खाने, न छूने और न देखने का नियम बना लेना किसी भी पुरुष के लिये कल्याणकारी है, ऐसी मेरी मान्यता है।

अलमन्यैरुपालम्भैः कीर्तितैश्च व्यतिक्रमैः।
पेशलं चानुरूपं च कर्त्तव्यं हितमात्मनः।। शान्ति 181/20

दूसरों को उलाहना देने से या लोगों की बुरी बातों की चर्चा करने से यही अच्छा है कि मनुष्य ऐसा अच्छा और अनुकूल काम करे जो उसके लिये हितकारी हो।

शौचमावश्यकं कृत्वा देवतानां च तर्पणम्।
धर्ममाहुर्मनुष्याणामुपसपृश्य नदीं तरेत्।। शान्ति 193/4

प्रतिदिन आवश्यक शौच त्याग (मल मूत्र विसर्जन) करके, नदी में नहाकर और आचमन करके देवताओं का तर्पण करना चाहिये। ये काम सभी मनुष्यों को करने चाहियें।

सूर्यं सदोपतिष्ठेत न च सूर्योदये स्वपेत्।
सायं प्रातर्जपेत् सन्ध्यां तिष्ठन् पूर्वां तथेतराम्।। शा० 193/5

सदा सूर्य की उपासना करनी चाहिये। सूर्य निकलने के बाद सोते नहीं रहना चाहिये। सवेरे पूर्व दिशा की ओर मुंह करके और शाम को पश्चिम दिशा की ओर मुख करके सन्ध्या और गायत्री का जाप करना चाहिये।

पञ्चार्द्रो भोजनं भुञ्ज्यात् प्राङ्मुखो मौनमास्थितः।
न निन्द्यादन्नभक्ष्यांश्च स्वाद्वस्वादु च भक्षयेत्।। शान्ति 193/6

हाथ, पैर और मुँह, इन पाँचों अंगों को धोकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके और मौन रहकर भोजन करना चाहिये। परोसे हुए अन्न को बुरा न बताये और भोजन स्वादिष्ट हो या साधारण उसे प्रसन्न मन से खाना चाहिये।

आर्द्रपाणिः समुत्तिष्ठेन्नार्द्रपादः स्वपेन्निशि।। शान्ति 193/7

भोजन करके हाथ धोकर उठे और रात को गीले पैर होने पर न सोये।

अतिथीनां च सर्वेषां प्रेष्याणां स्वजनस्य च।
सामान्यं भोजनं भृत्यैः पुरुषस्य प्रशस्यते।। शान्ति 193/9

गृहस्थ को अतिथियों, अपने परिवार वालों, नौकरों आदि सभी के लिये एक जैसा ही भोजन बनवाना चाहिये। इसी बात की सराहना की जाती है।

सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं वेदनिर्मितम्।
नान्तरा भोजनं दृष्टमुपवासी तथा भवेत्।। शान्ति 193/10

आयुर्वेद के अनुसार मनुष्यों को सवेरे और शाम भोजन करना चाहिये। दिन में किसी और समय बीच में भोजन नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य इस नियम का पालन करता है उसे उपवास करने का लाभ मिलता है।

होमकाले तथा जुह्वनृतुकाले तथा व्रजन्।
अनन्यस्त्रीजनः प्राज्ञो ब्रह्मचारी तथा भवेत्।। शान्ति 193/11

जो मनुष्य यज्ञ के समय प्रतिदिन हवन करता है, ऋतुकाल में पत्नी के पास जाता है और परायी स्त्री पर नजर नहीं डालता है ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति ब्रह्मचारी ही माना जाता है।

लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी तु यो नरः।
नित्योच्छिष्टः शंकुशुको नेहायुर्विन्दते महत्।। शान्ति 193/13

जो मनुष्य ढेले फोड़ता है, तिनके तोड़ता है, नाखून चबाता है, सदा झूठन खाता है और पिंजरे के तोते की तरह पराधीनता का जीवन बिताता है उसकी आयु लम्बी नहीं होती।

गुरुभ्य आसनं देयं कर्त्तव्यं चाभिवादनम्।
गुरूनभ्यर्च्य युज्यन्ते आयुषा यशसा श्रिया।। शान्ति 193/16

गुरुजनों के घर आने पर उन्हें आसन देकर और नमस्ते करके उनका सम्मान करना चाहिये। गुरुजनों का आदर करने वालों को दीर्घ आयु, यश और लक्ष्मी प्राप्त होती है।

नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं न च नग्नां परस्त्रियम्।
मैथुनं सततं धर्म्यं गुह्ये चैव समाचरेत्।। शान्ति 193/17

उदय होते हुए सूर्य को और परायी नंगी स्त्री को नहीं देखना चाहिये। अपनी पत्नी के साथ ऋतुकाल में एकान्त में समागम करना चाहिये।

दर्शने दर्शने नित्यं सुखप्रश्नमुदाहरेत्।
सायं प्रातश्च विप्राणां प्रदिष्टमभिवादनम्।। शान्ति 193/18

परिचित मनुष्य के मिलने पर सदा उसकी कुशल क्षेम पूछनी चाहिये और ब्राह्मणों को सवेरे शाम प्रणाम करना चाहिये।

देवागारे गवां मध्ये ब्राह्मणानां क्रियापथे।
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत्।। शान्ति 193/19

देवमन्दिर में, गौओं के बीच में, ब्राह्मणों के यज्ञ आदि अनुष्ठानों में, शास्त्रों के अध्ययन में और भोजन करने में दायें हाथ से काम लेना चाहिये।

प्रत्यादित्यं न मेहेत न पश्येदात्मनः शकृत्।
सह स्त्रियाथ शयनं सह भोज्यं च वर्जयेत्।। शान्ति 193/24

सूर्य की ओर मुँह करके पेशाब नहीं करना चाहिये और अपना मल नहीं देखना चाहिये। स्त्रियों के साथ एक ही बिस्तरे पर नहीं सोना चाहिये और न ही उनके साथ एक ही थाली में खाना चाहिये।

त्वंकारं नामधेयं च ज्येष्ठानां परिवर्जयेत्।
अवराणां समानानामुभयेषां न दुष्यति।। शान्ति 193/25

अपने बड़ों का नाम लेकर या उन्हें तू कहकर नहीं पुकारना चाहिये। अपने से छोटें या बराबर आयु वालों को नाम लेकर पुकारा जा सकता है।

हृदयं पापवृत्तानां पापमाख्याति वैकृतम्।
ज्ञानपूर्वं विनश्यन्ति गूहमाना महाजने।। शान्ति 193/26

पापियों के हृदय तथा उनके मुख और नेत्र आदि से उनके बुरे काम का पता चल जाता है। जो सत्पुरुषों से पाप छिपाता है वह नष्ट हो जाता है।

ज्ञानपूर्वकृतं पापं छादयत्यबहुश्रुतः।
नैनं मनुष्याः पश्यन्ति पश्यन्त्येव दिवौकसः।। शा० 193/27

मूर्ख व्यक्ति जान-बूझकर किये हुए काम को छुपाता है। यद्यपि मनुष्य उस का यह काम नहीं देख पाते किन्तु देवता देख लेते हैं।

पापं कृतं न स्मरतीह मूढो विवर्तमानस्य तदेति कर्तुः।
राहुर्यथा चन्द्रमुपैति चापि तथाबुधं पापमुपैति कर्म।। शान्ति 193/29

मूर्ख मनुष्य अपने किये हुए पाप को याद नहीं रखता किन्तु उसका पाप उसके साथ लगा रहता है। जैसे राहु स्वयं चन्द्रमा के पास पहुंच जाता है। वैसे ही पापी मनुष्य का पाप अपने आप उसके पीछे लग जाता है।

आशया संचितं द्रव्यं दुःखेनैवोपभुज्यते।
तद् बुधा न प्रशंसन्ति मरणं न प्रतीक्षते।। शान्ति 193/30

किसी विशेष कामना को पूरा करने के लिए जोड़कर रखे हुए धन का प्रयोग कष्ट से ही किया जाता है। बुद्धिमान इस बात की सराहना नहीं करते क्योंकि मृत्यु किसी की इच्छा पूरी होने की प्रतीक्षा नहीं करती।

मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणः।
तस्मात् सर्वेषु भूतेषु मनसा शिवमाचरेत्।। शान्ति 193/31

मनीषी लोगों का कहना है कि सब प्राणियों के प्रति मन से किया गया धर्म ही अच्छा होता है अतः सबके लिए मन से उनका भला सोचना चाहिये।

एक एव चरेद् धर्मं नास्ति धर्मे सहायता।
केवलं विधिमासाद्य सहायः किं करिष्यति।। शान्ति 193/32

केवल वैदिक विधि का सहारा लेकर अकेले ही धर्म का आचरण करना चाहिये। धर्माचरण में किसी की सहायता आवश्यक नहीं होती। इस बारे में कोई सहायक हमारी क्या सहायता करेगा?

धर्मो योनिर्मनुष्याणां देवानाममृतं दिवि।
प्रेत्यभावे सुखं धर्माच्छश्वत्तैरुपभुज्यते।। शान्ति 193/33

धर्म ही मनुष्यों की योनि है। स्वर्ग में धर्म देवताओं का अमृत है। धर्मात्मा पुरुष मरने के बाद धर्म के बल से ही सदा सुख पाते हैं।

नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्नाप्यन्यायेन पृच्छतः।। शान्ति 287/35

बिना पूछे किसी को सलाह नहीं देनी चाहिये। अन्यायपूर्वक पूछने पर कोई उत्तर नहीं देना चाहिये।

ततो वासं परीक्षेत धर्मनित्येषु साधुषु।
मनुष्येषु वदान्येषु स्वधर्मनिरतेषु च।। शान्ति 287/36

मनुष्य को सदा धर्माचरण करने वाले साधु महात्माओं तथा अपने धर्म का पालन करने वाले उदार पुरुषों के पास रहने की इच्छा करनी चाहिये।

प्रकीर्ण

को हि तत्रैव भुक्त्वान्नं भाजनं भेत्तुमर्हति।
मन्यमानः कुले जातमात्मानं पुरुषः क्वचित्।। आदि 219/27

अपने को कुलीन मानने वाला ऐसा कौन पुरुष है जो जिस बर्तन में खाये उसी में छेद कर दे।

कथं हि शिरसो मध्ये कृतं तेन पदं मम।
मर्षयिष्यामि गोविन्द पादस्पर्शमिवोरगः।। आदि 219/30

हे कृष्ण! जैसे साँप पैर की ठोकर सहन नहीं कर पाता उसी तरह मैं अपने सिर पर रखा हुआ पैर कैसे सहन कर सकता हूँ?

सुबद्धस्यापि भारस्य पूर्वबन्धः श्लथायते।। आदि 220/17

अच्छी तरह बांधे हुए भार को फिर बांधने पर पहली गाँठ ढीली पड़ जाती है।

समाकुलेषु ज्ञानेषु न बुद्धिकृतमेव तत्।। आदि 230/12

सन्देहयुक्त कामों को करना बुद्धिमानी नहीं है।

प्राज्ञः शूरो बहूनां हि भवत्येको न संशयः।। आदि 231/3

अनेक लोगों में एक ही व्यक्ति निस्सन्देह बुद्धिमान और वीर होता है।

विजयो मन्त्रमूलो हि राज्ञो भवति भारत।। सभा 5/27

राजा की विजय का प्रधान कारण अच्छी सलाह ही होती है।

पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निश्रेयसं परम्।। सभा 5/35

विद्वान् व्यक्ति ही अर्थ संकट आने पर महान् कल्याण कर सकता है।

षडनर्था महाराज कच्चित् ते पृष्ठतः कृताः।
निद्राऽऽलस्यं भयं क्रोधोऽमार्दवं दीर्घसूत्रता।। सभा 5/126

महाराज! क्या आपने निद्रा, आलस्य, भय, क्रोध, निष्ठुरता और दीर्घसूत्रता इन छह दोषों को त्याग दिया है?

कृष्णो नयो मयि बलं जयः पार्थे धनज्जये।। सभा 15/13

कृष्ण नीतिज्ञ हैं, मैं (भीम) बलवान हूँ और अर्जुन में जीतने का सामर्थ्य है।

नयो जयो बलं चैव त्रिक्रमे सिद्धिमेष्यति।। सभा 20/20

नीति, विजय और बल इन तीनों को मिलाकर पराक्रम करने पर सफलता अवश्य मिलती है।

किं वोऽद्य प्रसमीक्षितम्।। सभा 21/46

आज आपने क्या सोच रखा है?

अद्वारेण रिपोर्गेहं द्वारेण सुहृदो गृहान्।
प्रविशन्ति नरा धीरा द्वाराण्येतानि धर्मतः।। सभा 21/53

धीर पुरुष, शत्रु के घर में बिना दरवाजे के और मित्र के धर्म में दरवाजे से आते हैं। शत्रु और मित्र के लिये ये धर्मसम्मत द्वार होते हैं।

सतां समय एष हि।। सभा 22/2

क्या यही सज्जनों का व्यवहार है?

यस्यां यस्यामवस्थायां यद् यत् कर्म करोति यः।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत् फलं समवाप्नुयात्।। सभा 22/13

जो व्यक्ति जिस-जिस अवस्था में जो कर्म करता है वह उसी उसी अवस्था में उस कर्म का फल पाता है।

अहिंस्यां प्रमदामाहुः सर्वधर्मेषु पार्थिव।। सभा 22/36 दा० पा०

राजन्! सभी धर्मों के अनुसार स्त्रियों को जान से नहीं मारना चाहिये।

श्रेयसा निर्जितं वरम्।। सभा 23/7

श्रेष्ठ पुरुष से हारना भी अच्छा है।

अधर्मश्च परो राजन् पारुष्यं च निरर्थकम्।। सभा 38/2

राजन्! किसी के लिये व्यर्थ ही कठोर बात कहना अधर्म है।

कर्मणां गहनां गतिम्।। सभा 38/29 दा० पा०

कर्मों की गति बहुत गहन है।

स्त्रीषु गोषु न शस्त्राणि पातयेद् ब्राह्मणेषु च।
यस्य चान्नानि भुञ्जीत यत्र च स्यात् प्रतिश्रयः।। सभा 41/13

स्त्रियों, गायों और ब्राह्मणों पर तथा जिसका अन्न खाया हो और जिसके यहाँ शरण मिली हो उन पर हथियार नहीं चलाना चाहिये।

न गाथागाथिनां शास्ति बहु चेदपि गीयते।। सभा 41/18

गीत गाने वाले को कोई भी कुछ नहीं सिखा सकता चाहे वह कितनी बार क्यों न गाये।

आत्मनिन्दाऽऽत्मपूजा च परनिन्दा परस्तवः।
अनाचरितमार्याणां वृत्तमेतच्चतुर्विधम्।। सभा 44/24

अपनी निन्दा और अपनी स्तुति तथा दूसरों की निन्दा या दूसरे की स्तुति ये चार बातें श्रेष्ठ पुरुष नहीं करते।

भेदमूलो हि विग्रहः।। सभा 46/28

लड़ाई-झगड़े की जड़ भेदभाव ही होती है।

सन्तोषो वै श्रियं हन्ति ह्यभिमानं च भारत।
अनुक्रोशभये चोभे यैर्वृतो नाश्नुते महत्।। सभा 89/14

हे भारत! सन्तोष, लक्ष्मी और अभिमान को नष्ट कर देता है। दया और भय भी सन्तोष जैसे हैं अतः इनसे घिरा हुआ व्यक्ति कभी ऊँचा पद नहीं पा सकता।

द्वेष्टा ह्यसुखमादत्ते यथैव निधनं तथा।। सभा 54/1

द्वेष करने वाला मनुष्य मृत्यु के समान दुःख पाता है।

अनार्यचरितं तात परस्वस्पृहणं भृशम्।
स्वसन्तुष्टः स्वधर्मस्थो यः स वै सुखमेधते।। सभा 54/6

पुत्र! दूसरे के धन पर आँख लगाना नीच लोगों का काम है। जो व्यक्ति अपने धन से सन्तुष्ट रहता है और अपना कर्त्तव्य पूरा करता है वही सुखपूर्वक उन्नति करता है।

विपत्तिष्वव्यथो दक्षो नित्यमुत्थानवान् नरः।
अप्रमत्तो विनीतात्मा नित्यं भद्राणि पश्यति।। सभा 54/8

जो संकट में विचलित नहीं होता, बुद्धिमानी से काम करता है, सदा उद्योगशील और सावधान रहता है तथा विनयशील रहता है, उसी का कल्याण होता है।

यस्य नास्ति निजा प्रज्ञा केवलं तु बहुश्रुतः।
स न जानाति शास्त्रार्थं दर्वी सूपरसानिव।। सभा 55/1

जिसकी अपनी बुद्धि न हो और बहुत पढ़ा न हो वह शास्त्रों का तात्पर्य नहीं समझ सकता जैसे करछी दाल का स्वाद नहीं जान सकती।

परनेयोऽग्रणीर्यस्य स मार्गान् प्रति मुह्यति।
पन्थानमनुगच्छेयुः कथं तस्य पदानुगाः।। सभा 55/4

जिस दल का नेता दूसरे के कहने पर चलता हो वह अपने रास्ते से भटक जाता है अतः उसके पीछे चलने वाले अपने रास्ते पर कैसे चल सकते हैं?

वृद्धिर्हि विक्रमः।। सभा 55/19

उन्नति का कारण पराक्रम और प्रयत्न ही होता है।

नारभेतान्यसामर्थ्यात् पुरुषः कार्यमात्मनः।
मतिसाम्यं द्वयोर्नास्ति कार्येषु कुरुनन्दन।। सभा 56/8

मनुष्य को अपना कार्य किसी दूसरे के बल के भरोसे शुरू नहीं करना चाहिये। कुरुश्रेष्ठ! किसी भी काम के बारे में दो पुरुषों की राय एक सी नहीं होती।

यश्चित्तमन्वेति परस्य राजन् वीरः कविः स्वामवमन्य दृष्टिम्।
नावं समुद्रे इव बालनेत्रामारुह्य घोरे व्यसने निमज्जेत्।।
सभा 63/4

राजन्! जो वीर और बुद्धिमान मनुष्य अपनी विवेक दृष्टि की परवाह न करके दूसरे की सलाह पर चलता है वह मूर्ख मल्लाह द्वारा चलाई जाती हुई नाव पर बैठकर समुद्र में भयंकर संकट में पड़ जाता है।

यो बलादनुशास्तीह सोऽमित्रं तेन विन्दति।। सभा 64/9

जो व्यक्ति किसी पर अपनी बात थोपता है वह उसे अपना शत्रु बना लेता है।

सुसान्त्विता ह्यसती स्त्री जहाति।। सभा 64/11

भली-भाँति समझाने पर भी कुलटा स्त्री पति को छोड़ देती है।

न धर्मपर एव स्यान्न चार्थपरमो नरः।
न कामपरमो वा स्यात् सर्वान् सेवेत सर्वदा।। वन 33/39

मनुष्य को केवल धर्म, केवल अर्थ या केवल काम का ही सेवन नहीं करना चाहिये अपितु उसे इन तीनों का उचित प्रकार से सेवन करना चाहिये।

धर्म पूर्वं धनं मध्ये जघन्ये काममाचरेत्।
अहन्यनुचरेदेवमेष शास्त्रकृतो विधिः।। वन 33/40

दिन के प्रारम्भिक भाग में धर्म का, दूसरे भाग में अर्थ का और अन्तिम भाग में काम का सेवन करना चाहिये। यही शास्त्र सम्मत है।

कामं पूर्वे धनं मध्ये जघन्ये धर्ममाचरेत्।
वयस्यनुचरेदेवमेष शास्त्रकृतो मतः।। वन 33/41

अवस्थानुसार शास्त्र का विधान है कि आयु के पूर्व भाग में काम का, मध्य भाग में अर्थ का और अन्तिम भाग में धर्म का सेवन करना चाहिये।

विशिष्टया विशिष्टेन संगमो गुणवान् भवेत्।। वन 53/31

विशिष्ट स्त्री का किसी विशेष पुरुष के साथ संयोग बहुत अच्छा होता है।

सर्वः सर्वं न जानाति सर्वज्ञो नास्ति कश्चन।
नैकत्र परिनिष्ठास्ति ज्ञानस्य पुरुषे क्वचित्।। वन 72/8

सब लोग सभी बातें नहीं जानते। इस संसार में कोई भी व्यक्ति सर्वज्ञ नहीं है। किसी एक ही व्यक्ति में सारा ज्ञान नहीं भरा है।

ये नाथवन्तोऽद्य भवन्ति लोके ते नात्मना कर्म समारभन्ते।। वन 120/2

संसार में जिन लोगों के अनेक सहायक होते हैं वे स्वयं कोई कार्य प्रारम्भ नहीं करते।

उताबलस्य बलवानुत बालस्य पण्डितः।
उत वाविदुषो विद्वान् पुत्रो जनक जायते।। वन 134/34

जनकजी! कभी कभी निर्बल पुरुष के घर बलवान, मूर्ख पुरुष के घर बुद्धिमान और अज्ञानी पुरुष के घर विद्वान् पुत्र उत्पन्न हो जाता है।

प्रियाः प्राणा हि देहिनाम्।। वन 179/10

सभी देहधारियों को अपने प्राण प्रिय होते हैं।

ध्रुवं दिनादौ रजनी प्रणाशस्तथा क्षपादौ च दिन प्रणाशः।। वन 236/25

दिन निकलने पर रात अवश्य बीत जाती है और रात होने पर दिन छिप जाता है।

न हि साहसकर्तारः सुखमेधन्ति भारत।। वन 246/22

भारत! दुःसाहस के काम करने वाले मनुष्य कभी सुखी नहीं होते।

न शोकः शोचमानस्य विनिवर्तेत कर्हिचित्।। वन 249/37

शोक में डूबे रहने से किसी व्यक्ति का शोक समाप्त नहीं हो पाता।

जीवन् भद्राणि पश्यति।। वन 252/39

जीवित रहते हुए मनुष्य सुख के दिन देखता है।

सुखदुःखे हि पुरुषः पर्यायेणोपसेवते।। वन 259/13

पुरुष को बारी-बारी से सुख-दुःख मिलते रहते हैं।

सुखमापतितं सेवेद् दुःखमापतितं वहेत्।। वन 259/15

प्राप्त हुए सुख का भोग करना चाहिये और आ पड़े दुःख को सहना चाहिये।

अप्रदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन् पतिः।
मृते भर्तरि पुत्रश्च वाच्यो मातुररक्षिता।। वन 293/35

कन्या के विवाह योग्य हो जाने पर कन्या का विवाह न करने वाला पिता निन्दनीय होता है। ऋतुकाल में पत्नी से समागम न करने वाला पति निन्दनीय होता है और पति के मर जाने पर विधवा माता की रक्षा न करने वाला पुत्र निन्दनीय होता है।

सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत्।। वन 294/26

भाइयों में धन का बँटवारा एक ही बार होता है। कन्या एक ही बार दी जाती है तथा दानी पुरुष 'मैं दूँगा' यह बात एक बार ही कहता है।

मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचभिधीयते।
क्रियते कर्मणा पश्चात् प्रमाणं मे मनस्ततः।। वन 294/28

सबसे पहिले मन से निश्चय करके फिर कुछ कहा जाता है और इसके बाद कोई काम किया जाता है। अतः मेरा मन ही प्रमाण है।

सुखं च दुःखं च भवाभवात्कम्।। वन 295/10

सुख और दुःख तो आते जाते रहते हैं।

न शक्यते जीवितुमप्यकर्मणा।। विराट 10/6

काम किये बिना जीवित नहीं रहा जा सकता।

अशक्तस्तु पुमाञ्छैलं न लङ्घयितुमर्हति।। विराट 14/50 दा० पा०

असमर्थ व्यक्ति पर्वत को नहीं लांघ सकता।

एकस्तु कुरुते पापं स्वजातिस्तेन हन्यतो।। विराट 15/3 दा० पा०

कुल का एक व्यक्ति बुरा काम करता है किन्तु उस काम से सारा कुल नष्ट हो जाता है।

न तु केनचिदत्यन्तं कस्यचिध्द्रृयं क्वचित्।
वेदितुं शक्यते नूनं तेन मां नावबुध्यसे।। विराट 24/25

कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे के हृदय के भाव अच्छी तरह नहीं समझ सकता है इसीलिये तुम मेरी हालत नहीं समझ पा रहे हो।

सुदुःखा खलु कार्याणां गतिर्विज्ञातुमन्ततः।। विराट 26/2

कार्यों के अन्तिम परिणाम ठीक ठीक समझ लेना बड़ा कठिन है।

न तु नीतिः सुनीतस्य शक्यतेऽन्वेषितुं परैः।। विराट 28/9

उत्तम नीति का पालन करने वाले की नीति को दूसरे लोग नहीं समझ सकते।

पतन्त्यरूपेषु यथा चक्षूंषि न कदाचन।। विराट 55/26

आँख रूपहीन वस्तु पर कभी नहीं पड़ती।

प्रवारणं तु बालानां पूर्वं कार्यमिति श्रुतिः।। उद्योग 7/17

शास्त्रों में कहा गया है कि पहिले बच्चों की इच्छा पूरी करनी चाहिये।

निर्वनो वध्यते व्याघ्रो निर्व्याघ्रं छिद्यते वनम्।
तस्माद् व्याघ्रो वनं रक्षेद् वनं व्याघ्रं च पालयेत्।। उद्योग 29/55

जंगल से बाहर निकला हुआ शेर मारा जाता है और शेर के न रहने पर जंगल कट जाता है। इसलिये शेर को जंगल की और जंगल को शेर की रक्षा करनी चाहिये।

प्रियाप्रिये सुखदुःखे च राजन् निन्दा प्रशंसे च भजन्त एव।
परस्त्वेनं गर्हयतेऽपराधे प्रशंसते साधुवृत्तं तमेव।।

उद्योग 32/27

राजन्! इस संसार में मनुष्य को प्रिय और अप्रिय वस्तुएँ, सुख-दुःख और मान-सम्मान मिलते ही रहते हैं। इसीलिये लोग अपराध करने पर निन्दा करते हैं और अच्छे व्यवहार की प्रशंसा करते हैं।

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।
लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च भारत।। उद्योग 39/2

भारत! यदि बृहस्पति भी अवसर के अनुकूल बात न कहें तो उनका भी अपमान होगा और उनकी बुद्धि पर हँसी आयेगी।

प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः।
मन्त्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः।। उद्योग 39/3

कोई मनुष्य दान देने से प्रिय होता है कोई मीठा बोलने से। कोई मन्त्र तथा औषधि के बल से प्रिय होता है किन्तु जो वास्तव में प्रिय है वह सदा प्रिय ही है।

नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति।
अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमग्निकम्।। उद्योग 39/40

समुद्र में गिरी हुई वस्तु नष्ट हो जाती है। न सुनने वाले से कही गई बात नष्ट हो जाती है। अजितेन्द्रिय पुरुष का शास्त्रज्ञान और बिना अग्नि का यज्ञ नष्ट हो जाता है।

अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम्।। उद्योग 39/42

विनय अपयश को, पराक्रम आपत्ति को, क्षमा क्रोध को और सदाचार बुरे लक्षणों को नष्ट करता है।

परिच्छदेन क्षेत्रेण वेश्मना परिचर्यया।
परीक्षेत् कुलं राजन् भोजनाच्छादनेन च।। उद्योग 39/43

राजन्! नाना प्रकार की सुख सुविधाओं, माता, घर, सेवा-सत्कार, भोजन और वस्त्र को देखकर किसी कुल की परीक्षा करनी चाहिये।

यत् सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत्।। उद्योग 39/60

जिस सुख का भोग करने से धर्म और अर्थ नष्ट नहीं होता उसे इच्छानुसार भोगना चाहिये किन्तु निद्रा-प्रमाद आदि में नहीं पड़ना चाहिये।

दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साह विवर्जिताः।। उद्योग 39/61

दुःखी, प्रमादी, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय और उत्साहहीन पुरुषों के पास लक्ष्मी नहीं रहती।

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्।। उद्योग 39/70

जल, कन्दमूल, फल, दूध, घी, ब्राह्मण की इच्छा पूर्ति, गुरु का आदेश और औषधि इन आठ से व्रत भंग नहीं होता।

अविद्यः पुरुषः शोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम्।
निराहाराः प्रजाः शोच्याः शोच्यं राष्ट्रमराजकम्।। उद्योग 39/76

विद्याहीन पुरुष, सन्तानोत्पत्तिरहित सम्भोग, भूखी प्रजा और बिना राजा वाले राष्ट्र की स्थिति शोचनीय होती है।

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा।
असम्भोगो जरा स्त्रीणां वाक्शल्यं मनसो जरा।। उद्योग 39/77

अधिक रास्ता चलना देहधारियों के लिये कष्टकर होता है, पर्वतों के लिये निरन्तर पानी बरसना। स्त्रियों का सम्भोग से वंचित रहना कष्टदायी होता है और वाणी के बाण मन को दुःख देते हैं।

मलं पृथिव्या बाह्लीकाः पुरुषस्यानृतं मलम्।
कौतूहलमला साध्वी विप्रवासमलाः स्त्रियः।। उद्योग 39/79

यवन लोग पृथ्वी के मैल हैं, झूठ पुरुष का मैल है, पतिव्रता नारी का मल हास परिहास और उत्सुकता है तथा पति के बिना परदेश में रहना स्त्री का मल है।

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत् स्त्रियः।
नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत्।। उद्योग 39/81

बहुत सोकर नींद पर वश पाने का प्रयत्न न करे और बहुत सम्भोग से स्त्रियों पर। बहुत ईन्धन डालकर अग्नि को और बहुत शराब पीकर शराब को वश में नहीं किया जा सकता।

यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः।
अन्नपान जिता दाराः सफलं तस्य जीवितम्।। उद्योग 39/82

जिसने पैसा देकर मित्रों को, युद्ध में शत्रुओं को और भोजन तथा पीने की वस्तुएँ देकर स्त्रियों को जीत लिया उसका जीवन सफल है।

अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया।। उद्योग 40/3

झूठ बोलकर उन्नति करना, राजा से चुगली करना और गुरुजनों पर झूठा दोष लगाना ये तीनों कार्य ब्रह्महत्या जैसे हैं।

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः।। उद्योग 40/7

ईंधन से आग की, नदियों से महासागर की, सारे प्राणियों से मृत्यु की और पुरुषों से कुलटा स्त्रियों की तृप्ति कभी नहीं होती।

आशा धृतिं हन्ति समृद्धिमन्तकः क्रोधः श्रियं हन्ति यशः कदर्यता।
अपालनं हन्ति पशूंश्च राजन्नेकः क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम्।।
उद्योग 40/8

आशा धैर्य को, यमराज समृद्धि को, क्रोध लक्ष्मी को, कंजूसी यश को नष्ट कर देती है। देखभाल न करने से पशु नष्ट हो जाते हैं। अकेला क्रुद्ध ब्राह्मण देश को नष्ट कर देता है।

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः।
तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव।।

उद्योग 40/21

भारत! जीवात्मा नदी है, इसमें पुण्य ही तीर्थ हैं, सत्य इसका जल है, धैर्य इसके किनारे हैं, और दया इसकी लहरें हैं। पुण्यकर्म करने वाला मनुष्य इसमें नहा कर पवित्र हो जाता है क्योंकि लोभरहित आत्मा सदा पवित्र ही है।

कामक्रोधग्राहवतीं पञ्चेन्द्रियजलां नदीम्।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि संतर।। उद्योग 40/22

काम और क्रोधरूपी मगरमच्छों से भरी हुई, पाँच ज्ञानेन्द्रियों के पानी से भरी हुई नदी के जन्म-मृत्यु रूप दुर्गम प्रवाह को धैर्य की नाव से पार कीजिये।

विषमं न हि मन्यन्ते प्रपातं मधुदर्शिनः।। उद्योग 51/26

ऊँचे पेड़ पर लगे शहद के छत्ते को देखने वाले नहीं सोचते कि गिरने का खतरा है।

अनित्यमतयो लोके नराः पुरुषसत्तम।। उद्योग 80/6

हे पुरुषोत्तम! इस संसार में लोगों की बुद्धि स्थिर नहीं रहती।

श्रोता चार्थस्य विदुरस्त्वं च वक्ता जनार्दन।
कमिवार्थं निवर्तन्तं स्थापयेतां न वर्त्मनि।। उद्योग 80/18

जनार्दन! जहाँ विदुर जी कोई महत्त्वपूर्ण बात सुनें और आप वह बात कहें तो आप दोनों मिलकर किस बिगड़ते काम को सफल नहीं बना सकते?

पराश्रया वासुदेव या जीवति धिगस्तु ताम्।। उद्योग 90/74

दूसरों के सहारे रहने वाली स्त्री को धिक्कार है।

काले हि समनुप्राप्ते त्यक्तव्यमपि जीवनम्।। उद्योग 89/77

समय आने पर अपने प्राण छोड़ने के लिये भी तैयार रहना चाहिये।

न हि जातु द्वयोर्बुद्धिः समा भवति कर्हिचित्।। उद्योग 156/3

दो पुरुषों के विचार कभी नहीं मिलते।

दूताः किमपराध्यन्ते यथोक्तस्यानुभाषिणः।। उद्योग 162/39

दूत कोई अपराध नहीं करते वे तो सन्देश को जैसा का तैसा सुना देते हैं।

तैर्दत्तानप्रदायेभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।। भीष्म 27/12; गीता 3/12

विश्व की शक्तियाँ या देवताओं द्वारा दिये गये भोगों को जो पुरुष देवताओं को अर्पित किये बिना स्वयं भोगता है वह चोर ही है।

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।। भीष्म 27/13; गीता 3/13

जो पापी पुरुष केवल अपना पेट पालने के लिये अन्न पकाते हैं वे पाप को ही खाते हैं।

प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किम् करिष्यति।।

भीष्म 27/33; गीता 3/33

सभी प्राणी अपने स्वभाव के अधीन रहकर काम करते हैं इसलिये इसमें किसी प्रकार का हठ काम नहीं देता।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।। भीष्म 27/35; गीता 3/35

अपने धर्म और कर्म का पालन करते हुए असफलता या मृत्यु पाना भी अच्छा है किन्तु अपना धर्म छोड़कर दूसरों का धर्म अपनाना भयावह होता है।

निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।। भीष्म 35/33; गीता 11/33

हे अर्जुन! तुम केवल एक निमित्त(कारण) बन जाओ।

तपोऽभ्युदीर्णं तपसैव बाध्यते बलं बलेनैव तथा मनस्विभिः।।

द्रोण 2/18

मनस्वी पुरुष बढ़े हुए तप का तपस्या से तथा बल का बढ़ी हुई शक्ति से सामना करते हैं।

आशा बलवती राजन्।। द्रोण 101/12; कर्ण 10/38

हे राजा! आशा बहुत बलवान होती है।

पङ्गोरिवाध्वगमनं दरिद्रस्येव कामितम्।। कर्ण 9/19

जैसे लंगड़ा व्यक्ति रास्ते पर नहीं चल सकता है। वैसे ही गरीब मनुष्य की इच्छाएँ पूरी नहीं हो पाती हैं।

सूक्ष्मो विवादो विप्राणां स्थूलौ क्षात्रौ जयाजयौ।। कर्ण 16/28

ब्राह्मणों का विवाद सूक्ष्म अर्थात् बुद्धि के द्वारा होता है किन्तु क्षत्रियों की हार-जीत स्थूल अर्थात् अस्त्रों द्वारा होती है।

ब्रह्मणा ब्राह्मणाः सृष्टा मुखात् क्षत्रं च बाहुतः।। कर्ण 32/43
ऊरुभ्यामसृजद् वैश्याञ्शूद्रान् पद्भ्यामिति श्रुतिः।। कर्ण 32/44

वेद के अनुसार ब्रह्मा ने अपने मुख से ब्राह्मणों को उत्पन्न किया और अपनी भुजाओं से क्षत्रियों को। ब्रह्मा ने अपनी जांघों से वैश्यों को और पैरों से शूद्रों को बनाया।

संहता हि महाबलाः।। कर्ण 34/7

संगठित लोग बहुत बल वाले हो जाते हैं।

सर्वत्र ब्राह्मणाः सन्ति सन्ति सर्वत्र क्षत्रियाः।
वैश्याः शूद्रास्तथा कर्ण स्त्रियः साध्व्यश्च सुव्रताः।। कर्ण 54/42

कर्ण! ब्राह्मण सभी जगह हैं। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी सभी जगह हैं। सभी देशों में उत्तम व्रत का पालन करने वाली सच्चरित्र स्त्रियाँ भी होती हैं।

न कर्ण देशसामान्यात् सर्वः पापं निषेवते।
यादृशः स्वस्वभावेन देवा अपि न तादृशाः।। कर्ण 45/46

कर्ण! किसी देश में रहने से वहाँ के सारे लोग पापी नहीं हो जाते। उसी देश में ऐसे सच्चरित्र लोग भी रहते हैं जिनकी बराबरी देवता भी नहीं कर सकते।

धिगस्तु खलु मानुष्यं मानुषेषु परिग्रहे।
यतो मूलानि दुःखानि सम्भवन्ति मुहुर्मुहुः।। स्त्री 8/6

मनुष्य जन्म को धिक्कार है। मनुष्य जन्म में विवाह आदि करके परिवार को बढ़ाना तो और भी बुरा है क्योंकि परिवार के कारण तरह-तरह के दुःख बार-बार होते हैं।

तपोर्थीयं ब्राह्मणी धत्त गर्भं गौर्वोढारं धावितारं तुरङ्गी।
शूद्रा दासं पशुपालं च वैश्या वधार्थीयं त्वद्विधा राजपुत्री।। स्त्री 26/5

ब्राह्मणी तपस्या के लिये, गाय बोझ ढोने के लिये, घोड़ी तेज दौड़ने के लिये, शूद्रा सेवा करने के लिये, वैश्य कन्या पशुपालन के लिये और तुम जैसी राजपुत्री युद्ध में लड़कर मरने के लिये पुत्र पैदा करती हैं।

तपसा महदाप्नोति बुद्ध्या वै विन्दते महत्।
त्यागेन सुखमाप्नोति सदा कौन्तेय तत्ववित्।। शान्ति 19/26

कुन्तीपुत्र! तत्त्ववेत्ता पुरुष तपस्या द्वारा महान पद प्राप्त करता है। पुरुष, ज्ञानयोग से परमपद को पा जाता है और स्वार्थ त्याग से सदा नित्यसुख का अनुभव करता है।

एकं हत्वा यदि कुले शिष्टानां स्यादनामयम्।
कुलं हत्वा च राष्ट्रं च न तद् वृत्तोपघातकम्।। शान्ति 33/31

यदि एक व्यक्ति को मार देने से परिवार के शेष लोगों का कष्ट दूर हो जाय और यदि एक कुटुम्ब का नाश कर देने से सारे देश में सुख शान्ति छा जाये तो वैसा करने से धर्म या सदाचार का नाश नहीं होता।

असंख्याता भविष्यन्ति भिक्षवो लिङ्गिनस्तथा।
आश्रमाणां विकल्पाश्च निवृत्तेऽस्मिन् कृते युगे।। शान्ति 65/25

सतयुग के समाप्त हो जाने पर नाना वेशधारी असंख्य भिक्षु प्रकट हो जायेंगे और लोग आश्रमों के विभिन्न स्वरूपों की मनमानी कल्पना करने लगेंगे।

अश्रृण्वाणाः पुराणानां धर्माणां परमा गतीः।
उत्पथं प्रतिपत्स्यन्ते काममन्युसमीरिताः।। शान्ति 65/26

लोग काम और क्रोध से प्रेरित होकर कुमार्ग पर चलने लगेंगे। वे पुराणों में लिखे प्राचीन धर्मों के पालन का जो उत्तम फल है उसे नहीं सुनेंगे।

पिबन्त्येवोदकं गावो मण्डूकेषु रुवत्स्वपि।। शान्ति 141/82

मेंढकों के टर्र-टर्र करने पर भी गायें तालाबों में पानी पीती रहती हैं।

छेत्तुमप्यागते छायां नोपसंहरते द्रुमः।। शान्ति 146/5

पेड़ काटने वाले के ऊपर से भी पेड़ अपनी छाया नहीं हटाता है।

अज्ञानप्रभवो मोहः पापाभ्यासात् प्रवर्तते।
यदा प्राज्ञेषु रमते तदा सद्यः प्रणश्यति।। शान्ति 163/11

मोह, अज्ञान से पैदा होता है और बार-बार पाप कर्म करने से बढ़ता है। जब मनुष्य बुद्धिमानों के साथ रहता है तब उसका मोह नष्ट हो जाता है।

विरुद्धानि हि शास्त्राणि ये पश्यन्ति कुरुद्वह।
विधित्सा जायते तेषां तत्त्वज्ञान्निवर्तते।। शान्ति 163/12

जो लोग धर्म के विरोधी ग्रन्थ पढ़ते हैं उनके मन में गलत काम करने की इच्छा पैदा हो जाती है। तत्त्व ज्ञान होने पर यह प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है।

कुलाज्ज्ञानात् तथैश्वर्यान्मदो भवति देहिनाम्।
एभिरेव तु विज्ञातैः स च सद्यः प्रणश्यति।। शान्ति 163/16

अपने उत्तम कुल, उत्कृष्ट ज्ञान और धन सम्पत्ति के कारण मद पैदा हो जाता है। किन्तु यथार्थ ज्ञान हो जाने पर इन तीनों का मद नष्ट हो जाता है।

प्रतिकर्तुं न शक्ता ये बलस्थायापकारिणे।
असूया जायते तीव्रा कारुण्याद् विनिवर्तते।। शान्ति 163/19

जो लोग अपना बुरा करने वाले बलवान पुरुष से बदला नहीं ले सकते उनके मन में दोष देखने की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है परन्तु दया की भावना आने पर यह असूया नष्ट हो जाती है।

कृपणान् सततं दृष्ट्वा ततः संजायते कृपा।
धर्मनिष्ठां यदा वेत्ति तदा शाम्यति सा कृपा।। शान्ति 163/20

सदा कंजूस मनुष्यों को देखते रहने से मन में कंजूसी की भावना पैदा हो जाती है। धर्मनिष्ठ लोगों की उदारता देखकर कंजूसी नष्ट हो जाती हैं।

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः।। शान्ति 165/20
धनैर्वैश्यश्च शूद्रश्च मन्त्रैर्होमैश्च वै द्विजः।

क्षत्रिय को अपने शरीर के बल से संकट से पार पाना चाहिये। वैश्य और शूद्र को धन से तथा ब्राह्मण को मन्त्रों और यज्ञों से आपत्ति टलनी चाहिये।

व्यवसायं समाश्रित्य सहायान् योऽधिगच्छति।
न तस्य कश्चिदारम्भः कदाचिदवसीदति।। शान्ति 298/42

जो व्यक्ति दृढ़ निश्चय करके काम के अनुकूल सहायकों की सहायता लेता है। उसका कोई भी काम कभी भी असफल नहीं होता।

संशयात्मा विनश्यति।। भीष्म 28/40; गीता 4/40

हर बात में सन्देह करने वाला पुरुष नष्ट हो जाता है।

एता हि मनुजव्याघ्र तीक्ष्णास्तीक्ष्णपराक्रमाः।
नासामस्ति प्रियो नाम मैथुने सङ्गमेति यः।। अनु 43/23

हे पुरुषसिंह! स्त्रियाँ तीखे स्वभाववाली और अत्यन्त शक्तिशालिनी होती हैं।

कोई भी पुरुष उनका प्रिय नहीं होता। मैथुन के समय उनका जो साथी होता है वही मैथुन के समय तक स्त्री को अच्छा लगता है।

नान्यः शक्ति स्त्रिलोकेऽस्मिन् रक्षितुं नृपयोषिताम्।। अनु 43/27

राजन्! तीनों लोकों में ऐसी कोई ताकत नहीं है जो युवती स्त्री की रक्षा कर सके।

न हि तेजस्विनां शापास्तेजःसु प्रभवन्ति वै।
बलान्यतिबलं प्राप्य दुर्बलानि भवन्ति वै।। अनु 85/15

तेजस्वी पुरुषों के शाप तेजस्वियों पर प्रभाव नहीं डालते क्योंकि बलवान व्यक्ति अपने से अधिक बलशाली के सामने कमजोर पड़ जाता है।

राजन् प्रतिग्रहो राज्ञां मध्वासादो विषोपमः।। अनु 93/31

राजन्! राजा का दान ऊपर से मधु के समान मीठा दिखाई देता है किन्तु इसका परिणाम विष की तरह भयंकर होता है।

अमृतं मनसः प्रीतिं सद्यस्तृप्तिं ददाति च।
मनो ग्लापयते तीव्रं विषं गन्धेन सर्वशः।। अनुशासन 98/18

अमृत वह वस्तु होती है जिसे देखते ही मन प्रसन्न हो उठता है तथा जो पदार्थ तत्काल तृप्ति प्रदान करता है। विष वह पदार्थ है जो अपनी तेज दुर्गन्धि से मन में ग्लानि पैदा कर देता है।

ओषध्यो ह्यमृतं सर्वा विषं तेजोऽग्निसम्भवम्।। अनु 98/19

सभी औषधियाँ अमृत हैं और विष अग्नि से उत्पन्न तेज हैं।

बुद्धिर्व्यावर्तते चास्य विनाशे प्रत्युपस्थिते।। आश्व 17/7

विनाश का समय आने पर मनुष्य की बुद्धि उलट जानी है।

बलवन्तो ह्यनियमा नियमा दुर्बलीयसाम्।। आश्व 22/23

बलवान लोग नियमों के बन्धन में नहीं रहते। नियम तो कमजोर लोगों के लिये होते हैं।

श्लोकानुक्रमणिका

आ

म

सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः।
संचिन्वन् धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा।।

उद्योग पर्व 34/33

धैर्यशाली व्यक्ति को अनेक शास्त्रों और ग्रन्थों से उसी प्रकार सुभाषित इकट्ठे करके अपना जीवन संवारना चाहिये जैसे कटे हुए खेतों में बिखरा अन्न एकत्र करके कोई तपस्वी अपना जीवन निर्वाह करता है।

ISBN : 978-81-7702-193-1(सेट)

ISBN 817702193-1

9 788177 021936

PRATIBHA

प्रतिभा प्रकाशन

(प्राच्यविद्या प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता)

7259/20 अजेन्द्र मार्केट,

प्रेमनगर, शक्तिनगर, दिल्ली-110007